ॐ

नमः सिद्धेभ्य

'श्रीमद् राजचंद्र'
पत्रांक - १४७

ववाणीया, आसोज सुदी ६, रवि, १९४६

सुज्ञ भाई खीमजी,

आज्ञाके प्रति अनुग्रहदर्शक संतोषप्रद पत्र मिला।

आज्ञामें ही एकतान हुए बिना परमार्थके मार्गकी प्राप्ति बहुत ही असुलभ है। एकतान होना भी बहुत ही असुलभ है।

इसके लिये आप क्या उपाय करेंगे ? अथवा क्या सोचा है ? अधिक क्या ? अभी इतना भी बहुत है।

वि. रायचन्दके यथायोग्य।

प्रवचन - १

'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-१४७

दि. २४-०९-१९९५ - मुंबई

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत। पत्रांक - १४७, पन्ना - २३३ एक पोस्टकार्डके अंदर मुमुक्षु खीमजीभाईको लिखा हुआ यह पत्र है। पत्रमें दो वचनामृत - दो पंक्तियाँ अत्यंत मार्मिक (लिखी) हैं।

`**सुज्ञ भाई खीमजी, आज्ञाके प्रति अनुग्रहदर्शक संतोषप्रद पत्र मिला।**' खीमजीभाईका एक पत्र, (कृपालुदेवको मिला है) कि जिसमें उन्होंने कृपालुदेवकी आज्ञा व कृपा संबंधित उल्लेख किया है। और उस पत्रके मिलनेपर कृपालुदेवको संतोष हुआ है। इस वचनमें पत्रकी पहुँच (लिखी) है। और पत्र लिखनेवालेने जो विषय दिया है उसका संक्षेपमें निर्देश (किया) है। और स्वयंको (पत्र पढ़कर) जो भाव चले उसका (भी) उल्लेख (किया) है।

पत्रका विषय है जो कि स्वाध्याय करने योग्य है, उसमें दो वचन लिखे हैं। `**आज्ञामें ही एकतान हुए बिना परमार्थके मार्गकी प्राप्ति बहुत ही असुलभ है।**' क्या कहते हैं ? कि (जब तक) मुमुक्षुजीव ज्ञानीपुरुषकी आज्ञामें एकतान नहीं होता, तब तक आत्मकल्याणका जो पारमार्थिक मार्ग है उसकी प्राप्ति बहुत ही कठिन है - असुलभ है माने बहुत ही कठिन है। विषय ऐसा है कि, इसी जगह जीव भूला है। धर्मके क्षेत्रमें आकर अनेक प्रकारके धर्मसाधन किये हैं, फिर भी जो करने योग्य है वह नहीं किया है, इसलिये परमार्थमार्गकी प्राप्ति नहीं हुई है।

`**यमनियम संजम आप कियो...**' वह पद कृपालुदेवने लिखा है। `**वह साधन बार अनंत कियो**' - ऐसे दूर्धर साधन अनंतबार

करने पर भी `**तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो**' - (अर्थात्) कुछ भी हाथ नहीं लगा। उसका कारण क्या ? कि जीव ज्ञानीपुरुषकी आज्ञामें नहीं आया। थोड़ा - बहुत आया हो तो (भी) एकतान होकर नहीं आया। इस विषयका परमार्थमार्गमें बहुत बड़ा महत्व है।

सिद्धालयमें जो सिद्धपद है उसकी नीव, उसका Foundation यहाँ पर (इस) एक ही वाक्यके अंदर है। कृपालुदेवने जो ७५१ नंबरका पत्र लिखा है उसमें आप्तपुरुषके वचनकी प्रतीति, आज्ञारुचि व स्वच्छंदनिरोध भक्तिको प्रथम समकित कहा है। मोक्षका मूल सम्यक्‌दर्शन है - यह जैनदर्शनकी प्रसिद्ध बात है। संप्रदायमें यह बात प्रचलित है कि `मोक्षका मूल सम्यक्‌दर्शन है' परंतु यह मूल कौनसे बीजमेंसे उत्पन्न हुआ है - यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। अथवा सम्यक्‌दर्शनरूपी मोक्षके मूलका बीज कहाँ पड़ा है ? कैसा है ? यह बात कृपालुदेवने अपने वचनोंमें जगह-जगह पर की है। यहाँ पर भी ऐसी बात की है।

उन्होंने मुमुक्षुजीवके लिये परमार्थमार्गकी सुलभता हो ऐसी परमकृपा की है। और यह कृपा हम लोगों पर की है - ऐसा हमें लगना चाहिये, ऐसा हमें भासित होना चाहिये। ज्ञानीपुरुषकी आज्ञामें एकतान होना, सर्वार्पणबुद्धिसे सर्वभाव अर्पण करके यदि सत्पुरुषकी आज्ञामें रहना होवे, तो इस जीवको मोक्षमार्गकी प्राप्ति अत्यंत सुलभ है, वरना बहुत ही असुलभ है - बहुत ही दुर्लभ है। यह बात भले ही संक्षेपमें की हो, थोड़ेमें की हो परंतु इस बातका महत्व बहुत है। अनंतकालमें इसी जगह जीव भूला है, इसी स्थानमें भूला है।

तीर्थंकरदेवकी दिव्यध्वनिमें यह बात बहुत ज़ोरशोरसे आयी थी, और कृपालुदेवकी दिव्यध्वनिमें भी यह बात बहुत ज़ोरशोरसे आयी है। गुरुआज्ञा, गुरुपूजा व गुरुका महत्व दूसरे अनेक संप्रदायोंमें है, जैनशास्त्रोंमें भी है, जैन संप्रदायमें भी है। परंतु इसका कारण क्या ? इसका महत्त्व क्यों है ? किस लिये है ? यह बात जब तक इस

मार्गमें पुरुषार्थ करनेवालेको अनुभवगोचर नहीं हो, तब तक ओघसंज्ञासे समझमें आती है।

बात समझने जैसी है। समझने जैसी है मतलब किस तरह समझने जैसी है ? यह विषय महत्त्वका है। बुद्धिगोचरपनेसे बातको समझना इतना कठिन नहीं है, क्योंकि इतनी बुद्धि हम सबमें है। इतनी बुद्धि हमलोगोंके पास है कि, बौद्धिकस्तर पर यह बात हम नहीं समझ सके ऐसा नहीं है, परंतु अनुभवगोचरपने समझना, वह समझ करनेकी यथार्थ पद्धति है। परमार्थका मार्ग माने आत्मकल्याणका मार्ग - मोक्षका मार्ग अनुभवप्रधान है। जब मार्ग ही अनुभव प्रधान है तब उसकी समझ भी अनुभवपद्धतिसे होनी चाहिये - होने योग्य है, तो ही उसका रहस्य समझमें आयेगा अथवा उसका सही महत्व समझमें आयेगा। वरना यह बात बुद्धिके स्तर पर तो बराबर लगती है फिर भी उसमें `यथार्थता'का अभाव होता है।

शास्त्रकी कोई भी बात हो और सत्पुरुषके कोई भी वचन हो - उन वचनोंको बुद्धिगोचरपने समझना इतना मुश्किल नहीं है, इतना कठिन नहीं है परंतु अनुभवगोचरपने समझनेमें मार्गप्रप्ति है। मार्ग तक पहुँच सकते हैं। अतः उस पद्धतिसे समझने योग्य है। अतः इस वचनामृतको समझनेके लिये हम सिर्फ बुद्धिको लागू करें, बुद्धिको Apply करें, इतना पर्याप्त नहीं है - इतना काफी नहीं है। उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये, कि गुरुआज्ञामें रहना माने क्या ? और गुरुआज्ञासे बाहर जाना माने क्या ? यह (बात) उस मार्ग पर चलनेके प्रयत्न बिना कैसे समझमें आये ? व गुरुचरणके सानिध्य बिना कैसे समझमें आये ? दोनों बात साथमें होनी चाहिये। गुरुचरणका सानिध्य संप्राप्त होना चाहिये व उनकी आज्ञाकी उपासना (ये बात भी होनी चाहिये)।

वास्तवमें तो उनकी आज्ञाकी उपासना करना - वह (सिर्फ) उनकी आज्ञाकी उपासना नहीं है परंतु इस भूमिकामें वह आत्माकी ही उपासना

है। मुमुक्षुकी भूमिकामें गुरुआज्ञाकी उपासना, वह उस भूमिकाकी आत्मउपासना है। यह तो निमित्तप्रधान कथन है (परंतु) विषय तो उपादानप्रधान है। क्योंकि उपादानमें ऐसी योग्यता चाहिये। निमित्तपरक वचन है, इसलिये निमित्ताधिन बात है, ऐसी समझकी भूल करने जैसी नहीं है।

यहाँ एक प्रसंगचित्र खड़ा करके देखे कि - कोई एक महापुरुषकी, कृपालुदेव जैसे सद्‌गुरुकी, सत्पुरुषकी समीपमें, उनके चरणसानिध्यमें रहनेका कोई महापुण्यका योग हो, जब खीमजीभाई पर यह पत्र लिखा गया है, तब ये भाग्यशाली मुमुक्षुको धन्यवाद देना चाहिये। (कृपालुदेवने) ऐसी एक बहुमूल्य बात सिर्फ एक पोस्टकार्डमें लिख दी है। उस जमानेमें पोस्टकार्ड कीमत एक पैसा थी। एक आनाका चौथा भाग - Quarter ana। कृपालुदेवके हस्ताक्षरमें Original पोस्टकार्ड देखे होंगे। अपने इडरके आश्रममें बहुतसे पोस्टकार्ड हैं। एक पैसेके पोस्टकार्डमें करोड़ों - अरबों क्या ? जिसका कोई मूल्य ही नहीं हो सकता, जिसकी कीमत करनेके लिये कोई Term नहीं है, कोई Terminology नहीं है - ऐसी बात लिख दी है। सत्पुरुषकी आज्ञामें कोई जीव एकतान होकर रहे तो वह अंतमें सिद्धपदको प्राप्त होवे। (जीव) सिद्धपदको प्राप्त हो जाये माने कितने दुःखोंके नुकसानसे बचे, इसका अगर विस्तार करें तो, चारों गतिके जन्म-मरणके, अनंत जन्मके - अनंत मरणके दुःखोंसे छूट जाये। एवं चारों गतिमें पापके उदयसे जितने-जितने दुःख उत्पन्न होते हैं उन (सभी) दुःखोंसे बच जाये। तदुपरांत अज्ञान व असमाधानको लेकर जो असमंजस खड़ी होती है - हम जिसे Tension (टेन्शन) कहते हैं - खिँचाव कहते हैं, जो कि सबसे बड़ा दुःख है, जिसके कारण आदमी आत्महत्या कर बैठता है। उन सभी प्रकारके सर्व दुःख व सर्व क्लेशसे छूट जाये व सादि अनंत-अनंत समाधिसुखमें, अनंतज्ञान - अनंतदर्शन सहित सिद्धपदमें बिराजमान हो जाये - इसका मूल्य जगतमें किस पदार्थसे हो सकता

है ? कि कोई पदार्थसे नहीं हो सकता। ऐसे सिद्धपदका मूल और उस मूलका बीज (जो है), उस बीजभूत बातको कृपालुदेवने इस जगह कही है।

वास्तवमें तो कोई मुमुक्षुजीव जब आत्मकल्याणके पुरुषार्थमें, आत्मकल्याणके प्रयत्नमें - प्रयासमें लगता है, तब उस मार्ग पर चढ़नेसे पहले उसे कितनी-कितनी कठिनाईयाँ खड़ी होती हैं ! कठिनाई अर्थात् यहाँ कोई संयोगोंकी प्रतिकूलता बताना नहीं चाहते, परंतु मार्ग हाथमें नहीं आये और मार्ग समझमें आये तो भी पुरुषार्थ उठे नहीं, पुरुषार्थ उठे तो प्रकृतिके उदयमें परिणाम पछाड़ खा जाये, उस पछाड़का मार लगे, परिणामकी चढ़-उतरमें समय व आयुष्य - मनुष्य आयुष्यका कीमती समय व्यतीत हो जाये, खो जाये, खो बैठना पड़े - इन सभी प्रकारोंसे बचनेका कोई एक उपाय है, कोई एक उत्तम उपाय है, कोई एक अति सुगम उपाय है तो, वह एक यही है कि, '**आज्ञामें एकतान होना।**'

मुमुक्षु :- भाईश्री ! आज्ञा शब्दका स्पष्टीकरण किजीये। आज्ञाका आराधन सहीरूपसे किस भूमिकामें होता है ?

पूज्य भाईश्री :- ठीक है, बहुत अच्छा प्रश्न है। एक तो ! सर्वप्रथम ज्ञानीपुरुषके समागमके योगमें इस जीवको अपनी योग्यताको समझ लेना आवश्यक है। अगर जीवको अपनी योग्यता ही नहीं समझमें आये यानी कि खुद कहाँ खड़ा है ? यही उसे पता न हो, तो उसे अपने कर्तव्यकी समझ कैसे आयेगी ? कि मुझे पहला कदम कौनसी दिशामें, किस जगह रखना है ? जब इस बातकी समझ आये तब सत्समागमके योगमें, ज्ञानीपुरुषके जो-जो उपदेशरूप दिव्यध्वनिका श्रवणयोग प्राप्त हो, तब मुझे प्रयोजनभूत (अर्थात्) वर्तमान भूमिकाको प्रयोजनभूत ऐसी बात मुझे कौनसी कही ? ऐसा उसे भास्यमान होता हैं कि यह बात श्रीगुरु मुझे कह रहे हैं - यह बात मुझे लागू होती है, अगर यह बात मेरी समझमें नहीं आती

तो इस जगह मैं भूल कर बैठता। यह बात स्पष्ट समझमें आती है। खुदकी भूल हो जाती, कैसे होती, किस तरह होती, यह भी समझमें आता है व (साथमें) श्रीगुरुका अनंत उपकार भी समझमें आता है कि, मुझे मेरी भूमिकामें ये उपदेश देते हैं, और उनका यह वचन - यह उनका विकल्प कोई साधारण बात नहीं है, बल्कि मेरे लिये शिरोधार्य करने योग्य एक आज्ञा है।

कृपालुदेव पत्रांक - २०० वचनावलीमें लिखते हैं। `**संतका अद्‌भुत मार्ग हमने उसमें प्रगट किया है।**' ऐसा पत्रांक - २०१में उन्होंने कहा। २०० (वचनावली) पाँचवाँ वचन है `**जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार, अर्थात् आज्ञानुसार न चला जाये, तब तक अज्ञानकी निवृत्ति होना संभव नहीं है।**' (उसके) ऊपर ही (चौथे वचनमें) एक वचन ऐसा लिखा गया है कि `**अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है।**' (आगे - १२ वें वचनमें लिखते हैं) `**शास्त्रमें कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष हैं और वे जीवको अधिकारी होनेके लिये कही हैं; मोक्षप्राप्तिके लिये ज्ञानीकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करना चाहिये।**' और प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करनेके लिये ज्ञानी प्रत्यक्ष चाहिये। प्रत्यक्ष (ज्ञानी) नहीं हो तो आश्रयभावना चाहिये। (अगर) आश्रयभावना होगी तो भावना फलीभूत होकर आगे, काल क्रममें आश्रय प्राप्त होगा।

उस जीवको तब (और तभी) समझमें आता है कि मेरे प्रयासमें - मेरे प्रयत्नमें परिणामोंमें उतार-चढ़ाव हो रहा है, उसका कारण क्या है ? मुमुक्षुजीव है - आत्मकल्याणकी भावनावाला जीव है; परिणाम कभी ठीक काम करते हैं, कभी तो आत्मरुचि अच्छी काम करती है, (तो) कभी परिणाम बराबर काम नहीं करते हैं। ऐसा सर्वसाधारणरूपसे सभी मुमुक्षुको अनुभव वर्तता है। ऐसा होनेका कारण क्या ? ऐसा क्यों होता है ? यह एक उलझन है। और इस उलझनका उकेल (उपाय) इस जगह कृपालुदेवने दिया है, कि तुम आज्ञामें एकतान

हो जाओ, कोई परेशानी नहीं रहेगी। तुम्हारे परिणामोंका उतार-चढ़ाव बंद हो जायेगा। अरे ! इतना ही नहीं, कोई मुमुक्षुजीव, कोई आत्मार्थी जीव (अगर) ऐसा एक दृढ़ निर्धार करें कि `**आजसे गुरुआज्ञामें जीवन समर्पित करना है, गुरुआज्ञामें ही रहना है व अंशमात्र भी आज्ञा बाहर कदम नहीं रखना है। अगर आज्ञा बाहर कदम रखूँ तो बहुत बड़ा अपराध है अथवा कृतघ्नताका महापाप है।**' ऐसी गंभीरतासे आज्ञामें एकतान होनेका निश्चय करें - निर्धार करें, तो इस निर्धार व निश्चयमात्रमें उस भूमिकाकी निर्मलता प्रगटे बिना नहीं रहती; तत्काल निर्मलता प्रगट होगी। पात्रताकी भूमिकाका यह एक सुख है, एक सहूलियत है, एक सुविधा है, कि पात्रता-निर्मलता आनेमें देर नहीं लगती। और इसके आनेके लिये कोई Pre-condition नहीं है - कोई पूर्वशर्त नहीं है।

मोक्षमार्ग व मोक्षमार्गकी ऊपर-ऊपरकी सभी दशाओंमें पूर्वशर्त रही है। जैसे कि सिद्धपद है, वह अरिहंतपदकी प्राप्तिके बिना नहीं आता। (उसमें) शर्त यह है कि पहले अरिहंतपद आये तो ही सिद्धपदकी प्राप्ति होती है। और जो अरिहंतपद है - केवलज्ञान आदिकी उत्पत्ति है, वह क्षपकश्रेणीके परिणाम हुए बिना कभी उत्पन्न नहीं हो सकती। क्षपकश्रेणीमें शुक्लध्यान तभी उत्पन्न होता है कि जब छठें-सातवें गुणस्थानमें अंतरबाह्य निर्ग्रंथदशा प्रगट हुई हो, भावलिंगी मुनिदशा प्रगट हो, तभी उन्हें क्षपकश्रेणीका एकाग्रतारूप शुक्लध्यान लगता है - इसके पहले गृहस्थदशामें ज्ञानीपुरुषको धर्मध्यान हो सकता (है) लेकिन शुक्लध्यान नहीं हो सकता - और ऐसी निर्ग्रंथदशा - भावलिंगी मुनिदशा भी बिना सम्यक्‌दर्शन किसीको उत्पन्न नहीं होती। इसमें सम्यक्‌दर्शनकी पूर्वशर्त है। ऐसा जो सम्यक्‌दर्शन है, जो कि मुनिदशाका मूल कारण है - अनन्य कारण है - अंगभूत कारण है, वह स्वरूपकी पहचान हुए बिना - स्वरूपका निश्चय हुए बिना, स्वरूपका भावभासन हुए बिना, स्वरूपलक्ष्य हुए बिना किसीको उत्पन्न नहीं होता। ऐसा जो स्वरूपकी

पहचानरूप दूसरा समकित, जिसे ७५१ पत्रांकमें कहा; वह सत्पुरुषकी पहचानके बिना नहीं होता - ७५१ (पत्र)में जिसे पहला समकित कहा है। ये सभी पूर्वशर्त हैं। ऊपर-ऊपरकी दशाके लिये नीचेकी दशा प्राप्त होनी ही चाहिये तो ही (ऊपरकी दशा) प्राप्त होती है। और यह सत्पुरुषकी पहचान आज्ञामें एकतान होनेके निर्धार बिना - निश्चय बिना नहीं होती। क्यों ? (क्योंकि) ज्ञानीपुरुष हैं - सत्पुरुष हैं, वे निर्मोहीपुरुष हैं। `**दर्शनमोह व्यतित थई उपज्यो बोध जे**' दर्शनमोहका जिन्होंने अभाव किया है। अनंत जन्म-मरणके कारणभूत संसारके मूलका जिन्होंने छेद कर दिया है - ऐसा आत्मज्ञान जिन्हें प्राप्त हुआ है, जिनका आत्मा दर्शनमोहके अभावसे निर्मल हुआ है; ऐसे पुरुषकी पहचान आत्माकी निर्मलतामें आये बिना नहीं होती।

हीरेको बराबर देखनेके लिये, हीराका बराबर मूल्यांकन करनेके लिये आँख भी साफ चाहिये; आँखके रोगवालेका उसमें काम नहीं है कि उसका वह मूल्यांकन कर सके। उसकी आँख भी साफ चाहिये। वैसे ज्ञानीपुरुषकी पहचान होनेरूप जो प्रथम समकित है कि, जिस पहचानसे आज्ञारुचि प्रगट होती है, इसके लिये जो निर्मलता चाहिये, उसमें पहले आज्ञामें एकतान होनेके निर्धारकी अपेक्षा है - ऐसा निर्णय होना चाहिए, ऐसा निश्चय चाहिये क्योंकि इसके अलवा परमार्थमार्गकी प्राप्ति दूसरे किसी भी प्रकारसे, कोई भी कालमें, किसीको हुई नहीं है (व) होनेकी शक्यता भी नहीं है, असुलभ है। अतः दूसरा चाहे कुछ भी करे (मार्गप्राप्ति नहीं होगी।)

कृपालुदेवने १९४ वे पत्रमें तो इस बातकी साक्षी अपने आत्मसाक्षात्कारसे दी है। लिखते हैं कि `**जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुए बिना और सम्यक्प्रतीति आये बिना सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती... ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी।**' भूतकालमें पीछले भवमें स्वयंको ज्ञानप्राप्ति हुई थी, उसका जातिस्मरणज्ञान

वर्तमानमें स्वयंको वर्तता था। `**वर्तमानमें इसी मार्गसे होती है और अनागतकालमें भी ज्ञानप्राप्तिका यही मार्ग है। सर्व शास्त्रोंका बोध लक्ष्य देखा जाये तो यही है।**' सभी शास्त्र इसी बातको Point out करते हैं, ऐसा कहते हैं। `बोध लक्ष्य है' ऐसा कहकर (कहना चाहते हैं कि) इस बात पर सभी शास्त्रोंका वज़न है; क्योंकि तीर्थंकरदेवकी दिव्यध्वनिमेंसे शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है और वहाँ भी यही बात आयी थी।

कुछएक अन्यमतोंने (यह) बात बहुत ज़ोरसे पकड़ी है। खास करके पंजाब व सिंधकी ओर गुरुआज्ञाका बहुत महत्व है। `वाहे गुरु!' वे लोग गुरुको भगवानसे भी विशेष महत्व देते हैं और उसका कारण यह है कि, दिव्यध्वनिमें वह बात आयी थी, (और वह बात) उनके संप्रदायमें मुख्य हो गई। परंतु यह बात यथार्थ है, इसके बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अपने स्वाध्यायका (जो) मूल विषय चलता था उस पर आये तो, मुमुक्षुकी पात्रता अर्थात् निर्मलता - वह निर्मलता सहजमात्रमें - बिना किसी शर्त सीधी प्राप्त (करनी) हो, तो वह कहाँसे हो ? कि गुरुआज्ञामें रहनेकी खुदकी तैयारी हो तो (इससे आती है।) आगे एक १०५ नंबरका पत्र पात्रता संबंधित आ गया। (उस पत्रमें) पात्रताके जितने वचन कहे हैं उसमें मुख्य व पहला वचन यह लिया है - `**सत्पुरुषके चरणोंका इच्छुक**' उसमें पहले जैसा एक भी नहीं है, दसमेंसे पहले जैसा एक भी साधन नहीं है, (ऐसा कहा है)। उन्होंने जगह-जगह पर यह बात की है। इतना-इतना महत्व देकर बात की है, फिर भी यदि ध्यान न खींचे या जीव उस प्रकारकी तैयारीमें न आये (तो इसका तो कोई दूसरा उपाय नहीं है।) सिर्फ परिणामसे तैयार होना है, निर्णयसे तैयार होना है, लेकिन वहाँ भी अगर जीव दिशामूढ़ रहना चाहे तो दूसरा कोई उपाय नहीं है। फिर तो दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।

`**आज्ञामें ही एकतान हुए बिना परमार्थके मार्गकी प्राप्ति बहुत ही असुलभ है।**' ये बात प्रयत्न करनेवालेको समझमें आये, ऐसी है। यदि प्रयत्न न करे तो सिर्फ बुद्धिगोचर(रूपसे) समझमें आती है और प्रयत्न करने पर अनुभवगोचररूपसे समझमें आती है कि, कहाँ कितनी आँट-साँट है ? परमार्थमार्ग - `सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणी मोक्षमार्गः' - यहाँ तक पहुँचनेमें कठिनाइयाँ बहुत हैं। मार्गप्राप्त ऐसे ज्ञानीपुरुषको ऊपरी-ऊपरी गुणस्थानमें चढ़नेके लिये इतनी दिक्कत नहीं होती, क्योंकि उन्होंने अपना निजस्वरूप देखा है - अनुभवमें आया है और निज स्वरूपकी प्राप्तिका उपाय भी अनुभवगोचर हुआ है, यानी कि मार्ग भी देखा है। उन्हें इतनी दिक्कत नहीं है। उस स्थितिमें आनेके पश्चात् असंख्य समयमें सिद्धपदकी - मोक्षपदकी प्राप्ति हो जाती है। ऐसा नियम है। परंतु इसके पहले अनंतकाल संसारमें जाता है।

एकबार भी यथार्थ मुमुक्षुता नहीं आयी - सच्ची मुमुक्षुता नहीं आयी। कृपालुदेवने ऐसा उल्लेख अन्य वचनामृतोंमें किया है। ये (मुमुक्षुतामें) आनेमें कठिनाइयाँ बहुत हैं। उन सभी कठिनाइयोंका उपाय इस एक वचनामृतमें है कि, आज्ञामें एकतान होना।

यद्यपि, `**एकतान होना भी बहुत ही असुलभ है।**' दूसरा वचनामृत ये प्रकाशित किया है। एकतान होना बहुत ही असुलभ है - ऐसा क्यों कहा ? ऊपरीदृष्टिसे जैसे ये तो सीधा-सादा छोटासा काम हो ऐसा लगता है, इसमें क्या है ? हम सत्पुरुषके समागमयोगमें उनकी आज्ञामें रह जाये, इसमें कहाँ दिक्कत है ? दिक्कत तो ये आती है कि, इस जीवको कितने प्रतिबंध और कितना स्वच्छंद है - यह जो आज्ञामें आनेका प्रयास करता है, आज्ञामें रहनेकी तैयारी करता है, वैसे परिणमनमें आना चाहता है, तब उसकी समझमें आता है। वहाँ तक समझमें नहीं आता।

कृपालुदेवने संसार परिभ्रमणके मुख्य दो कारण प्रकाशित किये हैं। स्वच्छंद और प्रतिबंध। स्वच्छंद अर्थात् अपनी मतिकल्पनासे चलना।

स्वच्छंद शब्दके दो प्रकारसे अर्थ देखे जाते हैं। एक तो स्वच्छंद वह है कि, विषय-कषायकी निरर्गल प्रवृत्ति करनेमें आये, तीव्र रसपूर्वक प्रवृत्ति होना उसे भी ज्ञानियोंने स्वच्छंद कहा है। और (दूसरा) अपनी मतिकल्पनासे धर्मसाधन करना वह भी स्वच्छंद है। जीव करता तो है धर्मसाधन - मानता है धर्मसाधन और संप्रदायमें हर कोई करते भी हैं, परंतु वह ज्ञानीकी आज्ञा अनुसार नहीं करते हैं इसलिये उसे स्वच्छंदप्रवृत्ति कही है। स्वयं (मार्गसे) अनभिज्ञ है। मार्गसे अनभिज्ञ होनेके बावजूद भी धर्मसाधनका निर्णय खुद अपनी मतिकल्पनासे करता है, और ज्ञानीकी आज्ञाका अनुसरण नहीं करता, ज्ञानीकी आज्ञामें नहीं रहता, यही जीवका स्वच्छंद है। यह स्वच्छंद जब जीव निष्पक्षरूपसे अपने दोषोंके अवलोकनमें आता है, तब उसे समझमें आता है और यह स्वच्छंद हानिको प्राप्त हो, ऐसी एक परिस्थिति खड़ी होती है। यह परिभ्रमणके मुख्य एक कारणकी बात हुई।

दूसरा कारण है - प्रतिबंध। कृपालुदेवने चार प्रकारके प्रतिबंध कहे (हैं।) १. समाज प्रतिबंध २. कुटुंब प्रतिबंध ३. शरीर प्रतिबंध और ४. संकल्प-विकल्प प्रतिबंध। (कोई भी) जीव जब ज्ञानीकी आज्ञामें रहने जाता है तब समाज प्रतिबंध आड़े आता है। उस जमानेमें भी कृपालुदेवके पास जो भी मुमुक्षु - सुपात्र जीव आये थे, उन्हें समाजमें तकलीफ़ उठानी पड़ी थी। समाजमें विरोध होता था। संप्रदायका अनुसरण करनेवाले ऐसा कहते थे कि, आप क्यों वहाँ जाते हो ? वे तो ऐसे हैं और वैसे हैं, (इस तरह) अनेक प्रकारसे ज्ञानीपुरुषकी नींदा भी करते थे। ऐसे वचन भी सहन करने पड़े, सुनने पड़े, परंतु जिसको आत्मकल्याण करना ही है, वह दृढ़ निर्धारपूर्वक सत्पुरुषके चरणमें बराबर लगा रहता है। किसी भी परिस्थितिमें वह (सत्पुरुषको) छोड़ना नहीं चाहता। कभी-कभी तो बड़ा सामाजिक विरोध भी सामने आता है। ये सब प्रकारकी सम्भावनाएँ रहती हैं। इसके लिये तैयार रहता है कि चाहे कैसी भी परिस्थितिमें (क्यों न रहना पड़े) ? परिभ्रमणके

दुःखोंसे कोई समाज छुड़ाने नहीं आयेगा और मुझे यदि परिभ्रमणके मुक्त होना है तो ज्ञानीपुरुषकी आज्ञामें रहनेके अलावा कोई दूसरा उपाय नहीं है। जिन्होंने मार्ग देखा है वे मार्ग दिखा सकेंगे; कल्पना प्राप्त पुरुष मार्ग नहीं दिखा सकता। क्योंकि जो मार्गको प्राप्त नहीं हुए हैं, वे मार्गको कैसे दिखा सकते हैं ? अतः समाजकी दरकार किये बिना; वह दरकार छोडनेमें सबसे पहले बल चाहिये - परिणाममें बल चाहिये। इतना बड़ा समाज, और उस संप्रदायमें त्यागी वर्ग भी होता है, उन सबका त्याग करके, सबसे विरुद्ध जाकर ज्ञानीपुरुषके चरणमें जाना होता है। अभी तो इतनी तकलीफ़ नहीं है, जितनी सौ साल पहले तकलीफ़ थी। क्योंकि अभी धर्म-चुस्तता पहलेके मुकाबलेमें कम हुई है और Rigidity भी कम हुई है। समाज-व्यवस्थामें भी काफ़ी फ़र्क आया है। Intercast marriage होने लगे हैं, अतः सामाजिक बंधन बहुत ही ढ़ीले हो गये हैं, वरना जीवको समाज प्रतिबंध बहुत आड़े आता है। धर्मके क्षेत्रमें इसका सामना करना पड़ता है।

बादमें आता है कुटुंब प्रतिबंध। कुटुंबमें सब एक अभिप्रायवाले नहीं होते। इसलिये परमार्थमार्ग प्रति जब कोई जीव झुकना चाहता है, संसारसे छूटनेका प्रथम प्रयत्न करता है, ज्ञानीकी आज्ञामें रहनेका (प्रयत्न करता है), तब उसके ही किये हुए पूर्वकर्म सामने आकर खड़े हो जाते हैं और उसका नजदीकी निमित्त अगर कोई है - तो वे हैं कुटुंबके सद्स्य। वे लोग नाराज़ होते हैं। वे लोग संसारसे बाहर निकलनेवालेको संसारमें खींचनेका प्रयत्न करते हैं। (वे कुटुंबके सभ्य ऐसा कहते हैं कि) `अभी अपने बहुतसे काम बाकी हैं, और अभी तेरी उम्र ही कहाँ है।' छोटी उम्र होगी तो उम्रका बाध आयेगा। और प्रायः सबको (सब) काम बाकी ही होते हैं। किसीको कोई भी काम बाकी न हो, ऐसा कोई संसारी गृहस्थ नहीं है। सबको सब काम बाकी ही दिखते हैं। इसलिये (ऐसा कहेंगे) `पहले ये करो,

पहले ये करो, बादमें (आत्मकल्याण) जरूर करना, परंतु पहले ये करना है। (संसारके काम करते-करते) साथ-साथ तू कर तो इतनी दिक्कत नहीं है, परंतु पहले तू ये कर।' (इसतरह) संसार जो है वह Top priority में रह जाता है और आत्मकल्याण Last priority में रहता है। और अभी तक ऐसा ही होता आया है। आत्मकल्याणको Top priority में रखे बिना और संसारके कार्योंको और पूरे संसारको Last priority में रखे बिना, कभी आत्मकल्याणकी दिशामें प्रगतिका एक कदम भी रखा जा सके, ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है। क्योंकि वह (आत्मकल्याण) इतना मूल्यवान है, (उसका) इतना मूल्यांकन आना चाहिये, इतना मूल्यांकन आये बिना कभी उस दिशामें पदार्पण नहीं हो सकता। इस तरह एकतान होना भी सुलभ नहीं है - बहुत दुर्लभ है। प्रायः ऐसा बनता है। शायद ही किसीके कुटुंबमें सब एक अभिप्रायवाले होते हैं कि, जिसके कारण जब कोई धर्मसाधन (आत्मकल्याण) करनेके लिये तैयार हो, तब सब अनुकूल हो जाते हैं कि, `कोई बात नहीं - तुझे जो करना है सो कर, शेष बातें हमलोग सँभाल लेंगे। तू अगर आत्मकल्याण कर लेता है तो हमारी सबकी इसमें अनुमोदना है।' हजारों कुटुंबमेंसे कोई एक ऐसा कुटुंब निकल भी जाता है। फिर भी यहाँ एक लालबत्ती रखना आवश्यक है और वह ये कि, अनुकूलता है इसलिये मैं धर्मसाधन कर सकुंगा - ऐसा जो अभिप्राय है वह प्रतिकूलता हो तो मैं धर्मसाधन नहीं कर सकता - ऐसे अभिप्रायके सिक्केकी दूसरी Side है। जो प्रतिकूलतासे घबराता है और आत्मकल्याणके मार्गमें उसे अवरोध समझता है, वह अनुकूलतामें फँसे बिना नहीं रहता। जो अनुकूलतामें फँस जाये, वह आत्मकल्याण नहीं कर सकता। क्योंकि वह प्रतिकूलतासे घबराया हुआ ही है। वह भय उसे भीतरमें मौजूद ही है। उस भयसे वह ग्रसित ही है। जब कि आत्मकल्याणका मार्ग अनुकूलता-प्रतिकूलतासे पर है। उसका Level अलग है और आत्मकल्याणके परिणामका Level अलग

है । अनुकूलता और प्रतिकूलताकी परवा किये बिना जो आगे बढ़ना चाहता है, उसका कार्यक्षेत्र है - आत्मकल्याण। यहाँ प्रतिबंध जो है वह खुदके परिणाम हैं, कुटुंब नहीं। कहा जाता है कुटुंब प्रतिबंध, परंतु कुटुंबके प्रति जो खुदके लगावके (अपनत्वके) परिणाम हैं, उसका नाम कुटुंब प्रतिबंध है। फिर चाहे कुटुंबके सभ्य नाराज़ हो तो भी बात इनके प्रतिके लगावको स्पर्श करती है और चाहे राज़ी हो तो भी बात इनके प्रतिके लगावको ही स्पर्श करती है। दोनोंमें बात तो एक ही है। उस लगावसे पर होना पड़ता है, तभी जीव कुटुंब प्रतिबंधसे छूटता है। 'वे मेरे नहीं हैं' (ऐसा लगना चाहिये)

कृपालुदेवने पत्रांक - ५३७में ये मूलमें बात की है। ५३७ पत्र देखें हम ! कृपालुदेवके खुदके शब्दोंमें देखें तो, पन्ना है ४४२, नीचेसे पाँचवीं पंक्ति है। '**अज्ञानदशारूप स्वप्नरूप योग से यह जीव अपनेको, जो अपने नहीं हैं ऐसे दूसरे द्रव्योंमें...**' यानी कि कुटुंबआदिमें रहे दूसरे आत्माओंमें '**निजरूपसे मानता है; और यही मान्यता संसार है, यही अज्ञान है, नरकादि गतिका हेतु यही है, यही जन्म है, मरण है, और यही देह है, देहका विकार है, यही पुत्र है, यही पिता, यही शत्रु, यही मित्रादि भावकल्पनाका हेतु है;...**' पिता-पुत्र कहकर कुटुंबकी बात ले ली है। जैसे ही दूसरे आत्माओंके साथ किसीभी संबंधको सही संबंध है ऐसा माना; सिर्फ कहने मात्र व्यावहारिक संबंधकी बात दूसरी है, परंतु अगर सच्चा संबंध है ऐसा माना, तो समझ लेना कि, वही नरक, निगोदादि गतिका हेतु है। उसे प्रतिबंधरूप संसारका कारण कहा। ऐसे (परिणाम होते हैं तब) गुरुआज्ञाकी उपासनामें, उसमें एकतान होनेमें तकलीफ़ होती है। क्योंकि एक जगह एकतान होना हो, तो दूसरी सब जगहसे उठ जाना पड़े, तब एकतान हो सकता है। सब जगहसे उठ जाना मतलब सबसे लगाव छूट जाये।

(कृपालुदेव) सोभागभाईको लिखते हैं कि, 'आप अपने कुटुंबके

प्रति निस्नेह हो जाओ' ऐसी पागल शिक्षा इस जगह हमने लिखी है। पागल शिक्षा क्यों कहा ? क्योंकि जगतमें तो यह बात पागलपन जैसी ही लगे ! 'अपने कुटुंबके प्रति स्नेह छोड़ देना ये तो कोई बात हुई ? फिर तो हमें किसके साथ स्नेह करना ? (तो यहाँ तो कहते हैं कि) अगर स्नेह करना हो तो श्रीगुरुके साथ करना, ज्ञानीपुरुषके प्रति करना, तो संसारसे छूट जाओगे। वह स्नेह ऐसा करना कि उसमें एकतान हो जाना ! वरना दूसरा स्नेह तो चारगतिमें भटकनेके लिये अभी तक अनंतबार किया ही है और अभी भी चालू रखेगा तो ऐसी ही परिस्थिति है, ऐसी ही कठिनाइयाँ (खड़ी) हैं, ऐसे ही दुःख और दुःखके कारण खड़े हैं। अतः आज्ञामें एकतान होना सुलभ नहीं है। बहुत ही कठिन है (और) उसमें अनेक दिक्कत आती हैं। उस लगावसे - (ममत्वसे) पर होना इसमें बल चाहिये, इसकी बलवत्तरता चाहिये, वास्तवमें जिसको आत्मकल्याण करना हो, उसको ही इतना बल आता है, दूसरोंको ऐसा बल नहीं आता।

यहाँ पर भी एक मूलभूत बात, एक जाँच करने जैसी बात यह है कि, जीवको अपने आत्माको एक प्रश्न पूछने जैसा है कि, क्या वास्तवमें तुझे आत्मकल्याण करे लेना है ? ये बात शुद्ध अंतःकरणपूर्वक है ? क्या पूरी ईमानदारी से ये बात है ? कि अभी भी भीतरके किसी कोनेमें संसारकी उपासना भी करनी है ? या इस जगतके सुखकी अल्प भी इच्छा अभिप्रायबुद्धिपूर्वक पड़ी है ? क्योंकि चारित्र मोहकी बात दूसरी है। तो तब तक आत्माकी उपासना करनी है या गुरुआज्ञामें एकतान होना है, यह बात संभवित नहीं है, (यह बात) बन नहीं सकती। इसलिये यहाँ ऐसा कहा कि, असुलभ है, (आज्ञामें) एकतान होना भी असुलभ है। क्योंकि जीव आत्मकल्याणकी भावना रखता है और इस भावनाके क्षेत्रमें आये हुए संख्याबंध जीवोंमेंसे कोई एक विरल जीव ऐसा होता है कि जिसे इस जगतमेंसे आबरू, कीर्ति, मान-सन्मान, या किसी भी पदार्थ, कोई भी संयोगकी बिलकुल

इच्छा नहीं होती है; बल्कि सिर्फ एक आत्मकल्याण ही पूरी प्रामाणिकतासे, पूरी ईमानदारीसे करना चाहता है। ऐसे शुद्ध अंतःकरणवाले जीवके लिये आज्ञामें एकतान होना सुलभ है।

किसी एक अपेक्षासे, जो बहुत ही असुलभ है वह सुलभ भी है। 'बहुत ही असुलभ है' ऐसा कहकर कोई निराश होनेकी बात नहीं करते हैं, या कोई Depression में आनेकी बात नहीं हैं। सुलभ भी है और वह सुलभ कब है ? कि शुद्ध अंतःकरणसे आत्मकल्याणकी भावना हो, जिज्ञासा हो, तो सुलभ भी है। लेकिन प्रायः ऐसा देखा नहीं जाता, इसलिये ऐसा लिखा कि, बहुत ही असुलभ है। क्योंकि जीव खास करके प्रकृतिके उदयमें बह जाता है, जुड़ जाता है और वहाँ मार खाता है - पछाड़ खाता है। आज्ञामें कोई जीव एकतान हो गया हो तो, उस एकतान हुए जीवको प्रकृतिके उदयमें भी विजय पाना सुलभ हो जाता है। क्योंकि उसके लिये मार्गप्राप्ति सुलभ है। जब एकतान हुए बिना असुलभ है तो एकतान होनेवालेके लिये सुलभ है, यह बात उसमेंसे अनर्पितरूपसे निकलती है।

कुटुंब प्रतिबंधके बाद शरीर प्रतिबंधमें - शरीरकी अनुकूल संयोगकी परिस्थिति, प्रतिकूल संयोगकी परिस्थिति, शाता-अशाताकी मुख्यता - इसकी मुख्यतामें आत्मकल्याणको गौण करना या आत्मकल्याणके निमित्तभूत ऐसे यथार्थ सत्संगको और सत्पुरुषके योगको - समागमको गौण करना, तब उसे शरीरप्रतिबंध कहते हैं। - शरीर प्रत्ययी लगाव आड़े आता है और (आज्ञामें) एकतान होने नहीं देता। कृपालुदेवने पत्रांक - ६०९में बहुत स्पष्ट कहा है कि, देहत्यागका प्रसंग आ जाये तो भी सत्संगको गौण नहीं करना। क्योंकि आत्मकल्याणके हेतुभूत ऐसा 'सत्संग' जैसा दूसरा कोई साधन नहीं है। प्राणसे भी अधिक सत्संगका मूल्यांकन होना चाहिये। मुझे खाना खाये बिना चलेगा, पानी पिये बिना चलेगा, अरे...! श्वासोच्छ्श्वास बिना भी चलेगा, परंतु सत्संग बिना नहीं चलेगा। श्वासोच्छ्श्वास है सो प्राण है लेकिन

शरीरका प्राण है। जब कि सत्संग मेरे आत्माका प्राण है। वैसे तो ज्ञान और दर्शन आत्माके प्राण हैं।

श्री समयसारजीकी ४७ शक्तिमें - जीवत्वशक्तिमें ऐसा शब्द इस्तेमाल किया गया है कि, ज्ञान और दर्शन आत्माके प्राण हैं लेकिन मुमुक्षुकी भूमिकामें 'सत्संग' उसका प्राण है और वह शरीरके प्राणसे (भी) अधिक मूल्यवान है। इतना जब तक समझमें नहीं आयेगा तब तक आज्ञामें एकतान होनेकी बातको भूल जाना ही बेहतर होगा। क्योंकि यह गुरुआज्ञा है। 'देहत्यागके प्रसंगका स्वीकार कर लेना' ऐसे शब्द (पत्रांक-६०९) में लिखे हैं, जो कि आज्ञा है। सर्व मुमुक्षुजीवके लिये यह आज्ञा है।

पत्रांक - १९५में कहा कि, परिभ्रमणकी वेदनामें आना, इसके लिये तरसना, (उस चिंतनामें) दृढ़ होकर तरसे बिना मार्गकी दिशाका अल्प भी भान होना, यह संभवित नहीं है - यह आज्ञा है। 'आप सबको यही खोजना है' (ऐसा लिखकर) सब मुमुक्षुको आज्ञा की है। अगर इस परिभ्रमणकी वेदनामें नहीं आ रहा है तो इसका अर्थ यह हुआ कि, (यह जीव) संसारकी - जड़की - अनात्माकी चिंतामें घिरा हुआ है। वहाँसे अभी बाहर नहीं निकला और आज्ञामें नहीं आया।

यह आज्ञामें एकतान होनेके लिये एक सर्व सामान्य नियम - Rule १९५ पत्रांकमें है कि, 'आप सबको' (ऐसा कहकर) सबको आज्ञा की है। 'आप सबको यही खोजना है।' खुदकी जाँच कर लेना कि, इस वेदनामें और इसकी तड़पनमें जीव कब आया ? कितना आया ? और इसके फलस्वरूप निर्मलता कितनी आयी ? क्योंकि इसके बाद ही दूसरा क्या करना, इसकी समझ आती है, तो समझमें (आया क्या ?) वेदनामें आये बिना वह समझमें नहीं आता।

इस तरह अनेक प्रकारकी ज्ञानीपुरुषकी जो आज्ञा हैं, उसमेंसे खुदको कौनसी आज्ञा अभी लागू पड़ती है - यह बात जब तक समझमें नहीं आयेगी, और उसमें पूरे प्रयत्नसे जीव एकतान होकर

लग नहीं जायेगा, तब तक यह जीव ज्ञानीकी आज्ञाका अनुसरण करना नहीं चाहता बल्कि स्वच्छंदसे चलना चाहता है, और तब तक किसी भी कालमें आत्मकल्याणके मार्गकी प्राप्ति नहीं है।

कृपालुदेवने तो यहाँ खीमजीभाईको प्रश्न पूछा है कि, `**इसके लिये आप क्या उपाय करेंगे।**' एकतान होनेके लिये क्या उपाय करेंगे ? `**अथवा क्या सोचा है ?**' इससे ज्यादा क्या ? `**अधिक क्या ? अभी इतना भी बहुत है।**' ऐसा कहकर पत्र समाप्त किया है। परंतु अनंत कालमें हुई अनंत भूलें, इसी जगह हुई हैं, इसको सुधारनेके लिये एक Highlight इस पत्रमें रख दी है। यह बात अगर हमारी समझमें आ गयी तो काम होना सुलभ है। समय (पूरा) हुआ है।

मुमुक्षुजीवके आत्मकल्याणकी योजना सत्पुरुषके अंतरमें रही है। इस बाबतसे अनजान होने पर भी जो जीव आज्ञाकारितामें रहता है, वह जीव गिरते हुए बच जाता है, और अंततः मार्गको प्राप्त कर लेता है। - यह जिसकी समझमें नहीं आता, वह प्रायः स्वच्छंदमें चढ़ जाता है और सन्मार्गसे दूर हो जाता है।

-पूज्य भाईश्री

(अनुभव संजीवनी-१५२०)

ॐ

'श्रीमद् राजचंद्र'

पत्रांक - १९४

बंबई, पौष, १९४७

जीवको मार्ग मिला नहीं है, इसका क्या कारण ?

इसका वारंवार विचार कर, योग्य लगे तब साथका पत्र पढ़ें।

अभी विशेष लिख सकनेकी या बतलानेकी दशा नहीं है, तो भी एक मात्र आपकी मनोवृत्ति कुछ दुःखित होनेसे रुके इसलिये यथावसर जो कुछ योग्य लगा सो लिखा है।

हमें लगता है कि मार्ग सरल है, परंतु प्राप्तिका योग मिलना दुर्लभ है।

सत्स्वरूपको अभेदभावसे और अनन्य भक्तिसे नमोनमः

जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुए बिना और सम्यक्प्रतीति आये बिना सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, और आने पर अवश्य वह मुमुक्षु, जिसके चरणारविंदकी उसने सेवा की है, उसकी दशाको पाता है। सर्व ज्ञानियोंने इस मार्गका सेवन किया है, सेवन करते हैं और सेवन करेंगे। ज्ञानप्राप्ति इससे हमें

हुई थी, वर्तमानमें इसी मार्गसे होती है और अनागतकालमें भी ज्ञानप्राप्तिका यही मार्ग है। सर्व शास्त्रोंका बोध-लक्ष्य देखा जाये तो यही है। और जो कोई प्राणी छूटना चाहता है उसे अखंड वृत्तिसे इसी मार्गका आराधन करना चाहिये। इस मार्गका आराधन किये बिना जीवने अनादि कालसे परिभ्रमण किया है। जब तक जीवको स्वच्छंदरूपी अंधत्व है, तब तक इस मार्गका दर्शन नहीं होता। (अंधत्व दूर होनेके लिये) जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये, दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये; इस विचारमें अप्रमत्त रहना चाहिये, तो मार्गकी प्राप्ति होकर अंधत्व दूर होता है, यह निःशंक मानें। अनादिकालसे जीव उलटे मार्गपर चला है। यद्यपि उसने जप, तप, शास्त्राध्ययन इत्यादि अनंत बार किया है; तथापि जो कुछ भी अवश्य करने योग्य था, वह उसने किया नहीं है; जो हमने पहले ही बताया है।

सूयगडांगसूत्रमें ऋषभदेवजी भगवानने जहाँ अट्ठानवें पुत्रोंको उपदेश दिया है, मोक्षमार्गपर चढ़ाया है वहाँ यही उपदेश दिया है -

`हे आयुष्यमानों ! इस जीवने सब कुछ किया है एक इसके सिवा, वह क्या ? तो कि निश्चयपूर्वक कहते हैं कि सत्पुरुषका कहा हुआ वचन, उसका उपदेश सुना नहीं है, अथवा सम्यक्प्रकारसे उसका पालन नहीं किया है। और इसे ही हमने मुनियोंकी सामायिक (आत्मस्वरूपकी प्राप्ति) कहा है।'

सुधर्मास्वामी जंबुस्वामीको उपदेश देते हैं कि सारे जगतका

जिन्होंने दर्शन किया है, ऐसे महावीर भगवानने हमें इस प्रकार कहा है - `गुरुके अधीन होकर आचर करनेवाले अनन्त पुरुषोंने मार्ग पाकर मोक्ष प्राप्त किया है।'

एक इस स्थलमें नहीं, परन्तु सर्व स्थलों और सर्व शास्त्रोंमें यही बात कहनेका लक्ष्य है।

आणाए धम्मो आणाए तवो।

आज्ञाका आराधन ही धर्म और आज्ञाका आराधन ही तप है। (आचारांग सूत्र)

इस जगह यही महापुरुषोंके कहनेका लक्ष्य है। यह लक्ष्य जीवकी समझमें नहीं आया। इसके कारणोंमें सबसे प्रधान कारण स्वच्छंद है और जिसने स्वच्छंदको मंद किया है, ऐसे पुरुषके लिये प्रतिबद्धता (लोकसम्बन्धी बंधन, स्वजनकुटुम्ब बंधन, देहाभिमानरूप बंधन, संकल्प-विकल्परूप बंधन) इत्यादि बन्धनको दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय जो कोई हो उसका इसपरसे आप विचार कीजिये; और इसे विचारते हुए जो कुछ योग्य लगे वह हमें पूछिये; और इस मार्गसे यदि कुछ योग्यता प्राप्त करेंगे तो चाहे जहाँसे भी उपशम मिल जायेगा। उपशम मिले और जिसकी आज्ञाका आराधन करें ऐसे पुरुषकी खोजमें रहिये।

बाकी दूसरे सभी साधन बादमें करने योग्य हैं। इसके सिवाय दूसरा कोई मोक्षमार्ग विचारने पर प्रतीत नहीं होगा। (विकल्पसे) प्रतीत हो तो बताइयेगा ताकि जो कुछ योग्य हो वह बताया जा सकें।

प्रवचन - २

'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-१९४

दि. ०८-०६-१९९४ - भावनगर

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत। पत्रांक - १९४, पन्ना - २६२, लल्लुजी मुनिको लिखा हुआ पत्र है। पत्रका मुख्य विषय नीचेवाले पेरेग्राफसे शुरू होता है। इसके पहले थोड़ी सूचना की है। पहला वचन ही प्रश्नार्थमें रखा है।

`**जीवको मार्ग मिला नहीं है, इसका क्या कारण ?**' क्या प्रश्न किया है ? कि इस जीवने अनंतकालमें संसारसे मुक्त होनेके लिये धर्मके क्षेत्रमें बहुतसी प्रवृत्ति की हैं। धर्मके क्षेत्रमें जो-जो प्रवृत्ति की हैं, वह संसार हेतु की हैं। वास्तवमें मुक्त होनेके लिये प्रवृत्ति नहीं की है। कभी-कभी (कहो) या अनेकबार तो स्पष्टरूपसे संसारके पदार्थोंकी वांछा रखी है, जब कि कभी मोक्षकी वांछा भी रखी है, लेकिन ऊपर-ऊपरसे। यथार्थरूपसे ध्येय बदलकर नहीं रखी, ध्येयको बदले बिना रखी है। अतः मोक्ष पानेके बज़ाय संसार फलीभूत हुआ है।

जन्म-मरणसे मुक्त होनेरूप जो मोक्ष है या निष्कर्मदशारूप जो मोक्ष है, शास्त्रभाषामें उसे निष्कर्मदशारूप मोक्ष कहा जाता है। अर्थात् कर्मका फल जन्म-मरण है और उसका नाश होनेरूप जो मोक्ष है, इसके उपायको यहाँ मार्ग कहा है। ऐसी दशा तक पहुँचनेका जो उपाय है उसे यहाँ मार्ग कहते हैं। यह उपाय नहीं मिलनेका कारण क्या है ? उन्होंने प्रयोजनभूत प्रश्न उठाया है।

लल्लुजी मुनि तो दीक्षाधारी थे। तीन पत्नीयोंका त्याग करके दीक्षा ली थी। उस जमानेसे क्या था कि, अगर किसी स्त्रीको संतान

न होता हो तो, वह स्त्री (अपने पतिको) दूसरी स्त्रीसे शादी करनेकी छूट दे देती थी। कायदे-कानून भी इतने नहीं थे। दूसरी (स्त्रीको पुत्र) नहीं होता हो तो, तीसरी शादी करनेकी छूट दी जाती थी। इस तरह उन्हें तीन स्त्रीयोंका योग था, लेकिन वे एक गंभीर बीमारीमें आ गये थे बादमें हलुकर्मी आत्मा थे, इसलिये विचार आया कि, अगर इस बिमारीसे बच जाऊँ, तो संसारका त्याग कर देना है अर्थात् गृहस्थीका त्याग कर देना है। अतः स्थानकवासी संप्रदायमें - मुहपत्तिमें दीक्षा ले ली थी। फिर भी मार्ग नहीं मिला इसका क्या कारण ? घर तो छोड़ा, व्यापार या जो भी व्यवसाय था वह भी छोड़ दिया। यहाँ अपने रास्तेमें आता है न ? वटामण, वटामण नामसे एक गाँव आता है। यहाँसे खँभातकी ओर जाते वक्त तारापुरके पहले वटामण चौकड़ी आती है न ! वे वहाँके थे। वहाँ कृपालुदेवका आश्रम जैसा स्थान बनाया है।

(मार्ग नहीं मिला, उसका) क्या कारण है ? शास्त्र पढ़ें, यम-नियम-संयम पालन किये, बहुत किया (लेकिन) मार्ग नहीं मिलनेके पीछे कारण क्या है ? उपाय हाथमें नहीं आया इसका क्या कारण है ? इस एक मुद्दे पर ही पूरा पत्र है कि, मार्ग नहीं मिलनेका क्या कारण ? जीवको मार्ग नहीं मिला है, इस वाक्यमें `अनंतकाल' (शब्द) अध्याहार है। अनंतकालमें अनंत प्रकारके प्रयत्न करने पर भी, अनंतबार, अनंत प्रकारसे, अनंतकाल तक प्रयत्न करनेके बावजूद भी मोक्षका उपाय नहीं मिला इसका क्या कारण है ? उन्होंने ये प्रश्न किया है।

`**इसका वारंवार विचार कर, योग्य लगे तब साथका पत्र पढ़ें।**' इसका उत्तर यहाँ साथके पत्रमें है। नीचे पेरेग्राफसे शुरू होता है, उसमें इसका उत्तर है। `**इसका वारंवार विचार कर, योग्य लगे...**' योग्य लगे अर्थात् जिज्ञासा बराबर परिपक्व हो, तब साथका पत्र पढ़ें।

`**अभी विशेष लिख सकनेकी या बतलानेकी दशा नहीं है,...**' २४वाँ वर्ष है। अभी तो सम्यक्‌दर्शनको हुए करीब तीन महिने हुए हैं। पौष महिनेका (पत्र है)। अपनी दशाका उल्लेख करते हैं कि, लंबा-लंबा लिख सकनेकी या बतलानेकी दशा हमारी नहीं है। यानी कि इतने विकल्प ही नहीं चलते हैं। `**तो भी एकमात्र आपकी मनोवृत्ति कुछ दुःखित होनेसे रुके इसलिये यथावसर जो कुछ...**' यथावसर माने इस वक्तके प्रसंग पर `**योग्य लगा सो लिखा है।** लिखते हैं तो भी, वक्त देखकर लिखते हैं, कि इस जीवकी योग्यता अभी कैसी है ? यह बराबर नाप लेते हैं, फिर लिखते हैं। यानी कि `यथावसर' लिखा है (ऐसा इसका अर्थ है।) `**लिख सकनेकी या बतलानेकी दशा नहीं है।**' यानी कि बतलानेकी परिस्थिति नहीं है `**तो भी एकमात्र आपकी मनोवृत्ति कुछ दुःखित होनेसे रुके...**' अर्थात् आपकी जो माँग है कि, कुछ इस पामरको मार्गदर्शन देवे, इस पामरको कुछ बोध देवे; (क्योंकि) वे बहुत नम्रतावान थे। एकदम भक्तिवान और नम्रतावान थे, इसलिये उन्हें कहते हैं कि, एकमात्र आपकी मनोवृत्ति दुःखित होनेसे रुके, इसलिये ये लिखा है। फिर पूरा पत्र लिखा है।

(आगे लिखते हैं) `**हमें लगता है कि मार्ग सरल है,...**' मोक्ष पानेका उपाय सरल है - कठिन नहीं, ऐसा कहते हैं। ठीक ! सरल है मतलब कठिन नहीं है, इसका नाम यहाँ सरल है। `**परंतु प्राप्तिका योग मिलना दुर्लभ है।**' यहाँ `योग' शब्द लिया है वह गंभीर है। मार्ग प्राप्तिका योग मिलना, यानी कि प्रत्यक्ष सत्पुरुषका योग मिलना दुर्लभ है, और प्रत्यक्ष सत्पुरुष मिले तब तथाप्रकारकी अपनी योग्यता होना दुर्लभ है। वरना (वैसे तो) अनंतकालमें अनंतबार सत्पुरुष (भी) मिले हैं, नहीं मिले हैं सो बात नहीं है, परंतु यहाँ योग मिलना दुर्लभ है इसका मतलब योगानुयोग हो जाना, एक तरफ योग्यता तैयार हो जाये और दूसरी ओर उसी वक्त सत्पुरुष मिल जाये, ऐसा यदि

मेल बैठ जाये, (तो) उसका छूटकारा हो जाये। दोनों एक साथ होना (अर्थात्) उपादान और निमित्त - दोनों साथ होने पर कार्यसिद्धि न हो, ऐसा नहीं बनता। वरना निमित्त, निमित्त नहीं रहता वास्तवमें। वरना उसको जो निमित्त मिला है वह वास्तवमें उसके लिये निमित्त नहीं है। आत्मकल्याणका निमित्त उसके लिये निमित्त न रहा परंतु थोड़ा पुण्यबंध किया था वह तो (उसके लिये) चुटकी भर राख जैसी बात है, जो (पुण्य) आगे जाकर जल जायेंगे। `**हमें लगता है कि मार्ग सरल है, परंतु प्राप्तिका योग मिलना दुर्लभ है।**'

`**सत्स्वरूपको अभेदभावसे और अनन्य भक्तिसे नमोनमः**' अब जो पत्र शुरू किया है उसका ये शीर्षक लिखा है। `**सत्स्वरूप**' ऐसा जो अपना आत्मस्वरूप, उसे `**अभेदभावसे**' यानी निर्विकल्प अभेद अनुभवसे `**अनन्य भक्तिसे**' (माने) बहुमानसे। ऐसा बहुमान आये बिना तो वैसी दशा आती नहीं। (स्वरूपकी) अपूर्व महिमा आये तब इसके फलस्वरूप, निर्विकल्प स्वरूपके आश्रयसे निर्विकल्प दशा आती है। उसे यहाँ अनन्य भक्ति कही है। अन्य परिणाम न रहे ऐसी भक्ति (उसे अनन्य भक्ति कही जाती है।) विकल्पमें - विकल्परूप परिणाम - भक्तिके विकल्परूप परिणाम अन्य रहते हैं और आत्मा अन्य रहता है। क्योंकि विकल्पमें राग है जब कि आत्मा वीतराग स्वरूप है। राग और वीतरागता साथमें नहीं रहते, अन्य-अन्य रहते हैं, भिन्न-भिन्न रहते हैं। जब वीतराग स्वरूप और वीतराग भाव अनन्य हो जाते हैं। वीतराग स्वरूपके अवलंबनसे अभेदभाव होने पर भक्ति भी अनन्य हो जाती है, इसलिये अभेदभाव लिया। भक्ति अन्य विकल्परूप नहीं रहती।

इस प्रकारसे हमारे आत्माको हमारा नमस्कार है। ठीक ! हमारे आत्माको हमारा नमस्कार है। एक ज़गह ऐसा लिया है, `नमस्कार करने योग्य ऐसा मैं।' कौन ? नमस्कार करने योग्य ऐसा मैं स्वयंको ही नमस्कार करता हूँ। ऐसा मेरा स्वरूप है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीने नियमसारके प्रवचनमें सत्पुरुषको अंतरंग निमित्त कहा है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सत्पुरुषको अंतरंग निमित्त कहै हैं, बराबर है। वह बात बहुत गूढ़ है। वे (सत्पुरुष) अंतरंग तक पहुँचते हैं - मुमुक्षुके अंतरंग तक पहुँच जाते हैं। उसकी दशाको नापते हैं कि, इस जीवको अभी कौनसी बात करनी चाहिये ! उसे जो भी दवाई देनी है, औषधि देनी है, वह कितनी मात्रामें और कब देना ? कितनी मात्रामें देना ? और कब देना ? कितना देना ? इसतरह उसके अंतरंग तक पहुँचते हैं, इतना ही नहीं योग्यतावान मुमुक्षु भी सत्पुरुषके अंतर तक पहुँच जाता है। यह तो अभी हमने २१३ पत्रमें लिया था। देखो ! भूल गये हो तो, फिरसे पक्का हो जायेगा। चौथा पेराग्राफ है।

`**एक समय भी सर्वथा असंगतासे रहना त्रिलोकको वश करनेकी अपेक्षा भी विकट कार्य है, ऐसी असंगतासे जो त्रिकाल रहा है, उस सत्पुरुषके अंतःकरणको..**' यहाँ अंतःकरण तक कौन पहुँचा ? मुमुक्षु पहुँचा। `**उस सत्पुरुषके अंतःकरणको देखकर हम परमाश्चर्य पाकर नमन करते हैं।**' इसलिये वे अंतरंग निमित्त हैं। एक दूसरेके अंतरंग तक पहुँचते हैं। परिणाममें अंतरंग परिणति जो है, वह अंतरंग तक पहुँचती है इसलिये परस्पर अंतरंग निमित्त कहनेमें आया है।

कृपालुदेव सोभागभाईका सत्समागम क्यों चाहते थे ? क्योंकि वे उनके अंतरंग निमित्त थे। ठीक ! वे उनके अंतरंग निमित्त थे। उनके समागममें खुदका आत्मा अंदरसे खिल उठता था, प्रफुल्लित हो उठता था। भीतरसे रहस्यमय तत्त्व बाहर आता था। (कृपालुदेव) उनके (सोभागभाईके) अंतरंग तक पहुँचते थे और सोभागभाई कृपालुदेवके अंतरंग तक पहुँचते थे। इसलिये उन्हें अंतरंग निमित्त कहा गया है, वरना निमित्त तो बाहर है। स्थूल दृष्टिसे विचार करें तो - निमित्त

तो बाह्य पदार्थ है। यहाँ निमित्तको बाह्य पदार्थ नहीं कहते, अथवा ऐसे निमित्तको बाह्य निमित्त कहा जाये तो, वह उसका सरासर अपमान है। वह निमित्तका अपमान है। ठीक ! और वह सरासर अन्याय है।

मुमुक्षु :- ऐसा जो भेद करता है उसके लिये मार्ग विकट है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उसके लिये मार्ग विकट है। उसने बाह्य निमित्त कहा, इसलिये ऐक्यता न रही। जो बात पत्रांक - २२३ में हमने पढ़ी थी - (सत्पुरुषको) बाह्य निमित्त गिने तो ऐक्यता न रही और यदि ऐक्यता न रही तो उसे तो मार्गकी प्राप्ति अति विकट है। उसे तो बहुत विकट है।

`**जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुष...**' कैसे ज्ञानीपुरुष यहाँ लिये ? कि जिन्हें किसी भी प्रकारसे `भाव'में प्रतिबंध नहीं है। क्षेत्रसे भले ही हो, द्रव्यसे भले ही हो, द्रव्यसे अभी अविरत होनेसे सब प्रकारके प्रतिबंध (भी) दिखते हैं। कपड़े पहनते हैं, कुटुंब-परीवार है, व्यवसाय आदि करते हैं। (फिर भी) भावसे प्रतिबंध नहीं है। अंदरमें भावसे भिन्न रहते हैं। वे सर्व संयोगोंके बीच अंदरमें भावसे अप्रतिबद्ध - भिन्न हैं। अप्रतिबद्ध हैं मतलब भिन्न हैं।

`निरंतर विचरते हैं' इसका मतलब ध्यान लगाकर नहीं बैठे हैं। `**निरंतर (भाव-अप्रतिबद्धतासे) विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुए बिना...**' पहला शब्द प्रेम लिया है। एक सत्पुरुषको खोज ले, ऐसा आगे कह गये न ! ऐसे कोई (सत्पुरुषकी) खोज करे और उसे मिल जाये तो अनन्य प्रेम आये बिना नहीं रहता। अनन्य कहो चाहे अचल कहो। अचल इसलिये कहा क्योंकि किसी भी संयोगमें विचलित न हो ऐसा (अचल)। किसी भी प्रसंगमें विचलित न हो वैसा। `**अचल प्रेम हुए बिना और सम्यक्प्रतीति आये बिना...**' ये पहचानका स्वरूप है। प्रतीति अर्थात् विश्वास। ये सत्पुरुष ही हैं, ऐसा पहचानपूर्वकका विश्वास आना वह।

`**आये बिना सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती।**' यानीकि अपने आत्मस्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती। प्राप्ति अर्थात् अनुभव नहीं होता। लिजीये ! ये अनुभव होनेके लिये कौनसे मार्गको प्राप्त करना ? किस मार्ग पर जाना ? इसका स्पष्ट उल्लेख है।

मंदिरमें प्रवेश करते वक्त ऐसा विचार आया था कि इस (ग्रंथमेंसे) प्रत्यक्ष सत्पुरुषके विषयमें कैसे-कैसे वचन उन्होंने लिखे हैं ? इस एक ही Subject को छाँटना, जैसे कि दृष्टांतरूपसे १९८ पत्रमेंसे हम एक पेरेग्राफ ले सकते हैं कि, `**जीव अपनी कल्पनासे किसी भी प्रकारसे सत्‌को प्राप्त नहीं कर सकता। सजीवनमूर्तिके प्राप्त होने पर ही सत् प्राप्त होता है,...**' सजीवनमूर्ति अर्थात् प्रत्यक्ष ! परोक्षको सजीवनमूर्ति कहनेमें नहीं आता। `**सत् समझमें आता है, सत्‌का मार्ग मिलता है, और सत् पर ध्यान आता है। सजीवनमूर्तिके लक्षके बिना...**' यानी कि पहले सजीवनमूर्ति चाहिये, बादमें आगे क्या करना ? नहीं करना ? कर्तव्य-अकर्तव्यकी समझ आती है। ऐसे लक्षके बिना `**जो कुछ भी किया जाता है, वह सब जीवके लिये बंधन है।**' छूटनेका उपाय नहीं बल्कि `बंधन है।' बंधन है माने छूटनेका उपाय नहीं है। चाहे कुछ भी न कर ले। उससे बंधन होता है। वह छूटनेका उपाय नहीं है। `**यह मेरा हार्दिक अभिमत** (हृदय) **है।**' हमारे हृदयमें छूटनेके विषयमें, जीवको मुक्त होनेके विषयमें मुख्यरूपसे कोई बात है तो, वह एक ही है। अलग-अलग ढंगसे कितनी-कितनी ज़गह कैसी-कैसी शैलीसे यही बात की है ! यह एक छाँटने जैसा (विषय) है।

उस निमित्तसे इस विषयका स्वाध्याय भी हो जायेगा। खुदका भी स्वाध्याय होगा और इस निमित्तसे दूसरेका भी (स्वाध्याय) हो जायेगा। क्योंकि अब तो `आत्मजागृतिका' साधन हो चुका है। इसलिये समाजके सामने कोई भी बात, संकलित करके, किसी भी शैलीमें रखनी हो तो रख सकते हैं।

(यहाँ) कहते हैं कि, ऐसा (अचल प्रेम आये) बिना सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, तीनोंकालमें (नहीं हो सकती) ! `**और आने पर...**' ऐसा अचल प्रेम और ऐसी सम्यक्‌प्रतीति आने पर `**अवश्य वह मुमुक्षु, जिसके चरणारविंदकी उसने सेवा की है, उसकी दशाको पाता है।**' (अर्थात्) ऐसी ही दशाको प्राप्त होता है, ऐसा कहना चाहते हैं। लिजीये ! ये ज्ञानी होनेका सरलसे सरल उपाय ! ऐसा नहीं कहा कि, फलाना शास्त्र पढ़िये, तो आपको ज्ञान होगा। क्योंकि (वैसे तो) ज्ञान होनेके लिये ज्ञानाभ्यास चाहिये न ! ज्ञान होनेके लिये क्या चाहिये ? ज्ञानाभ्यास करना चाहिये न ! ये तो किसी सामान्य मनुष्यको भी खयालमें आता है, इसलिये पूछेगा, मैं कौनसी पुस्तक पढ़ूँ ? अभी मुझे कौनसी पुस्तक पढ़नी चाहिये ? मुझे ज्ञान प्राप्ति करनी है तो, (कौनसी पुस्तक पढ़ूँ ?) तो यहाँ ऐसी कोई बात नहीं की। न तो उपवास करनेकी बात की है, न तो पूजा करनेकी बात की है, न तो दान देनेकी बात की है, न तो शास्त्र पढ़नेकी बात की है। देखो ! क्या बात किया ? कि ऐसी (सम्यक्) प्रतीति और (अचल) प्रेम आने पर, जिस मुमुक्षुने ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदका सेवन किया है, उसकी दशाको प्राप्त होता है। उस दशाको वह पाता है। उस दशा तक वह पहुँच जाता है। फिर वह पूर्णता तक पहुँच जायेगा यह कहनेकी जरूरत नहीं है। `गुरु रह्यां छद्मस्थ' गुरु कभी छद्मस्थ रह जाये और शिष्य आगे भी निकल जाये ! बादमें कोई बाधा नहीं है। फिर उसे गुरुके लिये रूकना नहीं पड़ता। एक बार इस दशाको प्राप्त होनेके बाद आगे भी निकल सकता है।

(अब कहते हैं) `**सर्व ज्ञानीयोंने इस मार्गका सेवन किया है, सेवन करते हैं और सेवन करेंगे।**' तीनों कालमें जो-जो ज्ञानी हुए, वे इसी मार्गसे हुए हैं। भूतकालमें हुए, अभी हो रहे हैं, और भविष्यमें भी इसी मार्ग पर होंगे। `**एक होय त्रण काळमां परमारथनो पंथ**' दूसरे मार्गसे (ज्ञानी) नहीं होंगे। ऐसा कहते हैं। क्योंकि पहला

प्रश्न उठाया है कि, `**जीवको मार्ग मिला नहीं है, इसका क्या कारण** ?' (तो कहते हैं) कि, उसे सत्पुरुषके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुआ नहीं और सत्पुरुषकी सम्यक् प्रतीति आयी नहीं। इसलिये ये मार्ग नहीं मिला। दूसरी कोई दिक्कत नहीं है। इतना कर ले तो दूसरा कोई शास्त्र पढ़नेकी उसे जरूरत नहीं होगी, जाईये !

क्योंकि सत्पुरुष स्वयं ही साक्षात् जीवंत आगम हैं। कैसे हैं ? सत्पुरुष स्वयं ही साक्षात् जीवंत आगम हैं। शास्त्र पढ़कर जो ज्ञान नहीं होता, वह ज्ञान सत्पुरुषकी अंतर परिणतिसे हो जाता है। वह (ज्ञान) तो सीधा ही होता है। वही बात - सत्पुरुषकी परिणतिकी बात शास्त्रमें लिखी हो, (अर्थात्) जैसी सत्पुरुषकी अंतरंग परिणति हो, उस दशाकी बात शास्त्रमें लिखी हो, उसे पढ़नेसे ज्ञान नहीं होता, परंतु यदि उनकी परिणति देख ले तो, ज्ञान हो जाये। लिजीये ठीक ! क्यों ऐसा होता है ? चलिये, ये प्रश्न (उठाते) हैं।

फिरसे, सत्पुरुषकी अंतरंग शुद्धदशा - आत्मदशाको पढ़कर शायद ज्ञान न भी हो; (क्योंकि) हो ही नहीं सकता, सो बात नहीं है, लेकिन नहीं भी होता है। किसी योग्यतावानको संस्कारीजीवको हो जाये, यह दूसरी बात है। योग्यतावानको मतलब (सिर्फ) संस्कारी जीवको, दूसरेको नहीं होता। और अभी जो वंचित रह गये हैं, उनके लिये संस्कारका विचार करनेकी जरूरत नहीं है। अतः ये बात तो वर्तमानकी अपेक्षासे है कि, (शास्त्र) पढ़कर (आत्मज्ञान) नहीं हो सकता। मगर परिणति देखे तो, हुए बिना नहीं रहता। कारण क्या ? चलिये (बताईये) ? कि, प्रत्यक्षता - ये मुद्दा है। शास्त्रमें जो दशा लिखी है, उसमें इस दशाका वर्णन परोक्षरूपसे चल रहा है, जब कि, जो दशा दिखती है, वह प्रत्यक्ष दिखनेमें आती है। (और यदि) पहचान हुई तो ऐक्यता हो जायेगी। अचल प्रेम आया तो ऐक्यता हो जायेगी। बस ! ऐसा है। तो ऐक्यता हो जायेगी।

गुरुदेवश्री बिराजमान थे, तब यह विचार आता था कि, उनके

अंतेवासी होकर रहना चाहिये। मुमुक्षुको तो, ऐसे ज्ञानीपुरुषके अंतेवासी होकर रहना चाहिये। दूर नहीं रहना चाहिये, इतनी दूर नहीं रहना चाहिये, कि जैसे ठीक है ! हम व्याख्यान सुनके चले जायें, बहुत अच्छा व्याख्यान देते हैं ! बहुत अच्छा व्याख्यान आता है ! ऐसी दूरी रखकर बातको नहीं लेनी है। अंतेवासी होना चाहिये - उनके समीपवासी, अंतेवासी माने समीपवासी (होकर) रहना चाहिये। उस वक्त सब ऐसे विचार आते थे।

(यहाँ कहते हैं) `**ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी,...**' हमें भी ज्ञानप्राप्ति इसीसे हुई थी। तो (किसीने) कहा, कि लेकिन आपको तो गुरु मिले हो ऐसा हमारी जानकारीमें नहीं है ! (क्योंकि) कृपालुदेवको इस भवमें तो कोई गुरु मिले हो, ऐसा देखनेमें नहीं आता, और यदि मिले होते तो उनका उल्लेख किये बिना (नहीं रहते)। (उनके कथनमें) गुरुभक्ति आये बिना नहीं रहती। और गुरुभक्ति कैसी आती है ! यह यदि देखना हो तो `गुरु-गुण संभारणां' देख लेना। महिने - दो महिनेमें प्रकाशित हो जायेगा। सबके हाथमें आ जायेगा। (पुस्तक) बहुत छूटसे मिल सकेगी। ५,००० प्रति छपवानेका निर्णय लिया है, इसलिये आसानीसे मिलेगी। १५ रू. की पुस्तक ५ रू. में छूटसे मिलती रहेगी, और हमारे मंडलमें तो सबको भेंट मिलनेवाली है ही, इसमें तो कोई सवाल ही नहीं है।

क्या कहते हैं ? कि `**ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी,...**' खुदको जातिस्मरण ज्ञान है। पूर्वभवमें भी एक दफ़ा ज्ञानप्राप्ति हो चुकी है, और वह भी समीपके भवमें ही हुई है। ज्यादा दूरवर्ती भवमें नहीं हुई। समीपके भवमें अर्थात् शायद इसके पहलेवाले भवमें ही हुई हो तो कुछ कह नहीं सकते। लेकिन कोई ज्ञानीपुरुष उनको ज़रूर मिले हैं, कि जिनके चरणारविंदके प्रति उनको अचल प्रेम हुआ था, उनकी सम्यक्प्रतीति आयी थी और खुदको भी इससे ज्ञानप्राप्ति हुई थी।

यद्यपि कृपालुदेवने तो पूर्व भवमें द्रव्यश्रुतकी उपासना भी बहुत की होगी, ऐसा लगता है। छोटी उम्रसे उनका जो उघाड़ है, जिस प्रकारका और जितना उनका उघाड़ है, वह (पूर्वभवमें) श्रुतकी उपासनाको सूचित करता है। द्रव्यश्रुतकी, ज्ञानीपुरुषोंके वचनोंकी, शास्त्रोंकी, आगमकी उपासना बहुत जिसने की हो, वे नये भवमें भी कुछ उस प्रकारकी क्षयोपशमकी पूँजी लेकर आते हैं। दूसरे प्रकारका उघाड़ तो बहुतोंको होता है, परंतु इस प्रकारका पारमार्थिक उघाड़ लेकर (आनेवाला शायद ही कोई होता है।) (अभी तो) ज्ञान नहीं हुआ, फिर भी कहते हैं '**स्वद्रव्यके रक्षक शीघ्र हो, स्वद्रव्यके ग्राहक त्वरासे हो**' - १७ सालकी उम्रके पहले ऐसा लिखते हैं। कहाँसे लाये यह बात ? वे (पूर्वभवकी) पूँजी लेकर आये थे। (कोई अभी ऐसा तर्क करते हैं कि) वे तो (२४ वें वर्ष पूर्व) ज्ञानी नहीं थे बल्कि अज्ञानी थे न ! तो (उसे) कहते हैं कि, चल, चल तेरा काम नहीं है इस चीज़को समझना ! कोई लोग चर्चा करते हैं न ! कि २४ वें वर्ष पहलेके वचन तो अज्ञानतामें हुए न ! तो कहते हैं, वह Judjement लेनेका तेरा कोई अधिकार नहीं है। वह अधिकार ज्ञानियोंका है, और पूज्य गुरुदेवश्री (कानजीस्वामीने) उन दस वचनों पर प्रवचन करते हुए ऐसा कहा कि, ये बारह अंगका सार है ! ये वचन हैं, सो बारह अंगका सार है ! यानी कि बारह अंगके साररूप पूँजी लेकर वे आये थे। इसलिये उनकी अज्ञानदशाकी बराबरी / नाप दूसरे अज्ञानियोंके साथ नहीं कर सकते हैं, और वैसे नापने जायेगा तो खुद भूला पड़ जायेगा। भूला पड़ जायेगा मतलब विराधनामें आ जायेगा ! भूला पड़ जायेगा मतलब कोई थोड़ा नुकसान नहीं है, सीधी सत्‌की विराधनामें आता है ! और इसका फल बहुत भयंकर है। इसका फल बहुत ही भयंकर है ! इसलिये बिलकुल होशियारी करने जैसी नहीं है।

क्या कहते हैं यहाँ पर ? कि '**ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई**

थी,...' भूतकाल लिया है। '**हुई है**' ऐसा नहीं कहा है। इस भवमें हुई है, ऐसा नहीं कहा। भूतकालमें हुई थी, ऐसा कहा है। खुदको स्पष्टरूपसे याद है। किसका सत्संग किया था ? मेरे गुरु कैसे और कौन थे ? उस वक्त मेरे परिणाम कैसे रहे थे ? मुमुक्षुता कैसी आयी थी ? ज्ञानप्राप्ति कैसे हुई थी ? सब मालूम है। इसलिये वे अपने - स्वयंके अनुभवकी बात कर रहे हैं। इस पत्रमें वे अपने - खुदके अनुभवकी ही बात कर रहे हैं। सिर्फ लिखनेके खातिर लल्लुजी मुनिको पत्र लिख दिया है, ऐसी बात नहीं है। खुदका अनुभव लिख रहे हैं कि, हमें भी ऐसा हुआ था।

(आगे कहते हैं) '**वर्तमानमें इसी मार्गसे होती है और अनागतकालमें...**' यानी भविष्यकालमें, जो काल अभी नहीं आया उसे अन-आगत कहा जाता है। आया नहीं (अर्थात्) 'आगत' यानी आया, 'अन' माने नहीं। '**अनागतकालमें भी ज्ञानप्राप्तिका यही मार्ग है।** अर्थात् अभी भी यही मार्ग है, भूतकालमें भी यही मार्ग था, भविष्यमें भी यही मार्ग है, और दूसरे मार्गसे किसीको (ज्ञानप्राप्ति) होनेवाली नहीं है। जाईये ! ठीक !

'**अनागतकालमें भी ज्ञानप्राप्तिका यही मार्ग है। सर्व शास्त्रोंका बोध लक्ष्य देखा जाये तो यही है।**' लिजीये ! ठीक ! यानी कि सर्व शास्त्रोंके बोधका सार, उसका मक्खन, मुमुक्षुके लिये तत्त्व ! लिजीये ! ठीक ! मक्खनसे भी विशेष मुमुक्षुके लिये तत्त्व देखने जाये, तो यही है कि, मुमुक्षुको सत्पुरुषकी पहचान करके अचल प्रेमसे उनके चरणारविंदका सेवन करनेसे सत्‌की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहती। Guaranteed होती है। नहीं होगी या होगी ? होगी कि नहीं होगी ? ऐसी अनिश्चित बात नहीं है। होती ही है। होती ही है और दूसरे किसी भी प्रकारसे नहीं होती। '**यही है।**' इसका अर्थ ऐसा होता है। लेकिन हम शास्त्र पढ़े तो ? 'समयसार' जैसे महान परमागम पढ़ें तो ? तो कहते हैं कि, तुम चाहे कुछ भी कर लो न ! नहीं

होगा मतलब नहीं होगा सो नहीं होगा, ऐसा है। `**यही है**' इसका अर्थ ये है। वह इसका अनेकांत किया। यही है और दूसरा कोई उपाय नहीं है। अस्ति-नास्तिसे अनेकांत किया है। किसीको ऐसा लगे कि एकांत किया है। `**यही है**' उसमें `यही' शब्द इस्तेमाल किया है न ? तो कहते हैं एकांत किया है। एकांत नहीं बल्कि अनेकांत किया है। यही है और दूसरा नहीं।

`**सर्व शास्त्रोंका बोध-लक्ष्य देखा जाये...**' इस बातके उपलक्ष्यमें सब शास्त्रोंमें बोधकी प्रवृत्ति हुई है। क्या कहना है ? बोधलक्ष्यका अर्थ क्या है ? कि इस प्रकारके लक्ष्यपूर्वक बोधकी प्रवृत्ति हुई है, ऐसे बोधको बोधलक्ष्य कहा गया है। किस लक्षपूर्वक बोध किया है ? कि सत्पुरुष तक पहुँचनेके लक्ष्यसे बोध किया है। ठीक !

`**सर्व शास्त्रोंका बोध-लक्ष्य देखा जाये...**' यह वाक्य संयोजन भी इनका स्वतंत्र है। दूसरे शास्त्रोंमें ऐसा देखने नहीं मिलेगा। उन्होंने जो कुछएक शब्द प्रयोग किये हैं, उस शब्द-संयोजन (द्वारा) उन्होंने अपने भावोंकी असाधारणरूपसे अभिव्यक्ति की है।

सभी शास्त्रोंका सार और सभी मुमुक्षुओंके लिये सच्चा तत्त्व यही है। मुमुक्षुके लिये दूसरा तत्त्व है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यह एक ही तत्त्व है। (सत्पुरुषमें) ऐक्यभाव होने पर वह परमतत्त्व हो गया। क्योंकि यहाँ पर (भीतरमें) भी परम तत्त्व है और (सामने सत्पुरुषमें भी परमतत्त्व है, इसलिये)। परम तत्त्व हो गया - दो नहीं रहे। (यानी कि दो-पनेका भेद नहीं रहा।) इसलिये वह तत्त्व हो गया, परम तत्त्व हो गया।

`**और जो कोई भी प्राणी छूटना चाहता है...**' (अर्थात्) जिसको संसारके सर्व दुःखोंसे वास्तवमें छूटना है, सिर्फ छूटना हो ऐसे नहीं, `वास्तवमें' छूटना है, `**उसे अखण्ड वृत्तिसे...**' यानी इसमें खण्ड नहीं करना। (मुमुक्षुको ऐसा नहीं होता कि) हमें पहले बहुत बहुमान था लेकिन फिर पीछेसे कम हो गया। वापिस बढ़ गया और बादमें फिरसे

कम हो गया। पहले सोनगढ़ बहुत जाते थे, फिर बादमें कम कर दिया। बादमें वापिस जाने लगे, फिर वापिस कम कर दिया। ये सब खंडितवृत्ति है, (यहाँ) अखण्ड वृत्तिसे (कहना चाहते हैं) `**और जो कोई भी प्राणी छूटना चाहता है उसे अखण्डवृत्तिसे इसी मार्गका आराधन करना चाहिये।**' दूसरे मार्गका आराधन नहीं करके इसी मार्गका आराधन करना चाहिये।

बहुत प्रयोजनभूत बात की है। लल्लुजी स्वामी जैसे एक योग्यतावान मुमुक्षु (सामने थे) तब ये बात निकली न ! वरना कहाँसे निकलती ? यदि योग्यता न होती तो ये बात कहाँसे निकलती ? अतः जिस-जिस मुमुक्षुके पत्रमें कृपालुदेव द्वारा ऐसा पारमार्थिक उपदेश निकला है (वहाँ ऐसा) समझना कि, सामने (जरूर) योग्यतावान जीव होना चाहिये। योग्यतावान न होता तो कृपालुदेवके श्रीमुखसे ऐसा बात नहीं आती। योग्यता होने पर ही बात बाहर आती है, यह बात तो निश्चित है।

मुमुक्षु :- सत्पुरुष क्षेत्रसे दूर हो तो क्या करना ?

पूज्य भाईश्री :- यहाँ तो वृत्तिका ही सवाल है न ! क्षेत्रका प्रश्न ही कहाँ है ? क्षेत्रका प्रश्न नहीं किया है, और वैसे भी क्षेत्रसे तो कोई निरंतर साथमें रह भी नहीं सकता। सबके उदय अलग-अलग होते हैं। कभी किसीको कहाँ जाना पड़ता है तो किसीको कहाँ जाना पड़ता है, कभी किसीका स्वास्थ्य ठीक होता है, तो (कभी कोई बीमार भी होता है।) कभी किसीको बीमारी भी होती है कि नहीं ? इसलिये क्षेत्रका तो कोई नियम ही नहीं है। क्षेत्र अखण्ड रहनेका कोई नियम नहीं है। केवलीका समवसरण भी अन्य-अन्य क्षेत्र बदलता है। योग्यतावान जीव वहाँ पहुँचते हैं। वैसे तो गुरुदेवका विहार होता था तब लोग जाते थे। जहाँ-जहाँ विहार होता, वहाँ जाते थे। (लेकिन) कोई कहीं पर नहीं भी पहुँच सकते थे। शरीरका प्रतिबंध हो, (तो नहीं भी पहुँच सकता है।) पूज्य बहिनश्री

(चंपाबहन) लिखते हैं कि पूज्य गुरुदेव जब बंबई Hospital में थे और समाचार आता था कि, तबीयत नरम है, तो एकदम जानेका मन हो जाता था ऐसा कहते थे। ऐसा विकल्प चलने लगता था कि, कैसे जल्दी पहुँच जाऊँ ! गाड़ीमें जाऊँ, Plane में जाऊँ, अरे...! उड़कर चली जाऊँ ! ऐसा-ऐसा लिखा है, ठीक (!) पंख आ जाये तो उड़कर चली जाऊँ ! इतना-इतना विकल्प चलता था, फिर ऐसा कहते थे, (क्या करे) देखो न ! शरीर कैसा हो गया है ! ऐसा बोले हैं। फिर लिख लिया, वह बहनोंने लिख लिया है। देखो न ! शरीर कैसा हो गया है ? बंधन हो चुका है। शरीर कमज़ोर हो गया और बीमारीका बंधन हो चुका है। ऐसा विकल्प आता है। गुरुचरणमें वृत्ति अखण्ड है, (लेकिन) क्षेत्रमें अखण्डता बनी रहे, यह कुदरतके अधीन है, वह कोई मनुष्यके अधीन नहीं है। वह विकल्पके अधीन नहीं है।

(अब कहते हैं) '**उसे अखंड वृत्तिसे इसी मार्गका आराधन करना चाहिये। इस मार्गका आराधन किये बिना जीवने अनादिकालसे परिभ्रमण किया है।**' मार्ग नहीं मिला, इसका कारण कि इस मार्ग पर नहीं चला। जन्म-मरण नहीं मिटे और परिभ्रमण चालू रहा है इसका कारण कि, (जीव) इस मार्ग पर नहीं चला। दूसरा तो बहुत कुछ किया है। कृपालुदेव ऐसा लिखते हैं कि सब किया परंतु इस एक ही विषयमें - सत्पुरुषके विषयमें भूला है। इस ज़गह उसने भूल खायी है। अनंतकालमें अनंतबार भूल खायी है। '**इस मार्गका आराधन किये बिना जीवने अनादिकालसे परिभ्रमण किया है।**'

'**जब तक जीवको स्वच्छंदरूपी अंधत्व है,...**' (अर्थात्) उस मार्गका आराधन नहीं किया है तो, क्या दूसरा कुछ आराधन किया है ? तो कहते हैं हाँ, दूसरा आराधन तो किया है। तो किस कारणसे आराधन किया ? (कि) स्वच्छंदके कारण आराधन किया। ज्ञानीकी

आज्ञा पर न चला। (जीवको हमेशा ऐसा ही हुआ कि,) 'मुझे ऐसा लगता है कि, मुझे अभी ऐसा करना चाहिये।' मुझे ऐसा लगता है कि, मुझे अभी ऐसा करना चाहिये। बस ! बात खतम ! यह स्वच्छंदरूपी अंधत्व है। '**जब तक जीवको स्वच्छंदरूपी अंधत्व है, तब तक इस मार्गका दर्शन नहीं होता।**' यानी कि ज्ञानीके मार्ग पर चलना चाहिये, वह मार्ग किस प्रकारका है, उसका उसे दर्शन नहीं होता। किसी-किसीको तो स्वच्छंदके कारण ज्ञानीकी आज्ञानुसार चलना चाहिये, ये प्रकार उत्पन्न ही नहीं होता। वह खुदकी मरज़ीसे यम-नियम करता है, खुदकी मरज़ीसे शास्त्र पढ़ता है, खुदकी मरज़ीसे पूजा-भक्ति करता है, खुदकी मरज़ीसे यात्रा और दया-दान करता है, जप-तप आदि जो भी करना हो, वह करता है। ऐसे जीवको तो प्रायः ज्ञानीके मार्ग पर चलना है, ऐसा विकल्प ही नहीं आता। (जब कि) किसीको ज्ञानी द्वारा वह समझ आती है, परंतु वह मार्ग कैसा है कि जिस पर चले, उसका दर्शन नहीं होता है - वह मार्ग दिखता नहीं है, नहीं दिखनेका कारण स्वच्छंदरूपी अंधत्व है, ऐसा कहते हैं। किसको नहीं दिखता ? कि जो अंधा होता है उसको नहीं दिखता। चक्षुवालेको तो दिखेगा ही। चक्षु नहीं हो, उसे नहीं दिखता। अतः यह स्वच्छंद है वह अंधत्व है। वह अंधा हो चुका है। सोभागभाई जैसे जीवंत पात्र स्वयं ही इस मार्गका दर्शन कराते हैं। ठीक ! वे स्वयं ही इस मार्गका दर्शन कराते हैं फिर भी अगर जीवको नहीं दिखें, तो वह स्वच्छंदरूपी अंधत्व है।

'**जब तक जीवको स्वच्छंदरूपी अंधत्व है, तब तक इस मार्गका दर्शन नहीं होता।...**' (मार्ग) नहीं दिखता है। '(**अंधत्व दूर होनेके लिये**) **जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये,...**' देखो ! स्वयं भी कोई-कोई ज़गह कोष्ठक (ब्रेकेट) भरते हैं ! कोई-कोई ज़गह (कोष्ठक) भरते हैं। '(**अंधत्व दूर होनेके लिये**) **जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये,...**' कि, ये किस प्रकारका मार्ग होगा ? मेरेमें

जिस मार्गकी उत्पत्ति ही नहीं हुई, तो वह मार्ग किस प्रकारका होगा ? इसका विचार करना माने इसकी जिज्ञासा करना, इसकी खोज करना, इसकी भावना भाना। और फिर भी न मिले तो `**दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये,...**' देखो ! बादमें क्या लिखा है ? दृढ़ मोक्षेच्छा कहो चाहे पूर्णताका लक्ष्य कहो (एक ही बात है।) पूर्णताका लक्ष्य बाँधेगा वह सत्पुरुषको पहचाननेके और उनके प्रति अचल प्रेम करनेके मार्गमें प्रवेश पा लेगा, परंतु अगर उसे दृढ़ मोक्षेच्छा होगी तो। दृढ़ मोक्षेच्छा करनी - पूर्णताका लक्ष्य करना। मोक्ष अर्थात् पूर्णता और इच्छा माने यहाँ लक्ष्य लेना। इच्छा माने यहाँ राग नहीं, विकल्प नहीं परंतु लक्ष्य लेना।

`(**अंधत्व दूर होनेके लिये**) **जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये,...**' विचार करना, इसका अर्थ यहाँ पर ऐसा है कि, विचारमें तर्क-वितर्क लगाना, ऐसे नहीं। खोज करना, शोध करना कि ये मार्ग कैसा होगा ? ऐसी बात है। क्योंकि यह मार्ग सिर्फ वैचारिक भूमिकाका नहीं है, मार्ग है सो एक परिणमनकी भूमिका है। इसलिये यहाँ अचल प्रेम और अनन्य भक्ति ऐसे दो शब्दका विस्तार किया है। अचल प्रेम है वह विचारका विषय नहीं है, परिणमनका विषय है। अनन्य भक्ति है वह विचारका विषय नहीं - परिणमनका विषय है। यानी कि यह मार्ग परिणमनरूप है। कैसा है यह मार्ग ? परिणमनरूप है। तो ये परिणमन कैसा है ? इसका विचार करें।

अभी तो ये उपलब्ध साहित्य जो है उसमें जीवंत (दृष्टांत) देखनेको मिलेगा। लिजीये ! एक तो यहाँ सोभागभाईकी भक्ति देखने मिलेगी। अब, पूज्य बहिनश्रीकी भक्ति देखने मिलेगी। सोगानीजीकी भक्ति तो सबने पहले देख ली। उनकी तो देखी है। उन्होंने तो अपने पत्रोंमें भी लिखी है और चर्चामें भी आयी है। यानी ऐसी चीज़ तो अभी (साहित्यमें भी देखी जाती है)। नहीं देखने मिलती है, ऐसी बात नहीं है। विचार करनेके लिये समझनेका निमित्त उपलब्ध है। लेकिन सिर्फ

समझ लेनेसे निबेड़ा नहीं आयेगा। परिणमन होने पर निबेड़ा होगा। तथारूप परिणमन आना चाहिये। कोई ऐसा कहे कि, (अचल प्रेम) समझाईये न ! वह बात समझाईये न ! ऐसा कोई कहे तो ? प्रश्न तो हो सकता है कि नहीं हो सकता ? परंतु ये समझने-समझानेका विषय नहीं है, परिणमनका विषय है। समझना हो तो बात इतनी खुल्ली पड़ी है। ये तीन - तीन महात्माओंकी बात तो खुल्ली पड़ी है। समझना हो तो समझनेका निमित्त नहीं है, सो बात नहीं है। फिर तो क्या समझाना बाकी रहता है ? जब साक्षात् परिणमन देखनेको मिले फिर समझानेकी बात कहाँ रहती है ? परंतु योग्यता आने पर उसमें प्रवेश होता है। योग्यता और पात्रता आये बिना तथारूप मार्गमें प्रवेश नहीं होता। दूसरी (सब) योग्यता सिर्फ कहनेमात्र हैं। यहाँसे सही योग्यताकी शुरूआत होती है।

मुमुक्षु :- १२८ पत्रांकमें भी लिया है कि, नेपथ्यमेंसे यदि प्रश्न उठता है तो उत्तर भी वहींसे मिलता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वहाँ तो कहना यह है कि, जिज्ञासा यदि अंतरंगसे उठी होगी, तो आपको शास्त्र नहीं खोजना पड़ेगा, भीतरसे ही उत्तर मिल जायेगा। कृपालुदेवको खुदको २३ वें वर्षमें - मुमुक्षुकी भूमिकामें ऐसे कई सारे छूटनेके संबंधमें प्रश्न हुए थे। उस १२८ वें पत्र पर भी हमारा स्वाध्याय आगे हो चुका है।

(२२५ - पृष्ठ पर है) कि `**ऐसा करना ही।**' ये दृढ़ मोक्षेच्छा है। `**चाहे जो हो...**' करके जो पैराग्राफ शुरू होता है न ! वह दृढ़ मोक्षेच्छाका स्वरूप है। कि, `**ऐसा करना ही।**' चाहे जिस स्थितिमें भी करना है। एक समयका आयुष्य बाकी हो, तो भी करना ही। `**तब तक हे जीव छुटकारा नहीं है।**' ऊपरमें सब प्रश्न लिखें हैं। `**इस प्रकार नेपथ्यमेंसे उत्तर मिलता है...**' वहीं पर उत्तर आ गया है। दृढ़ मोक्षेच्छा इसका उत्तर है। कहाँसे आया उत्तर ? कि अंदर आत्मामेंसे आया। आत्मा तो अभी सम्यक्दर्शनको प्राप्त नहीं

हुआ, इसलिये यहाँ नेपथ्य शब्द इस्तेमाल किया है। ठीक ! जो अगम-अगोचर है उसमेंसे उत्तर आया। नेपथ्य माने अगर-अगोचरमेंसे, कहाँसे आया यह (अभी) मालूम नहीं पड़ता। जैसे कोई आकाशवाणी हुई ऐसा कहते हैं तो, आकाशवाणी (आकाशकी) किस ज़गहसे हुई? ऊपरसे हुई ? बगलमेंसे हुई ? नीचेसे हुई ? पूर्वमेंसे हुई ? पश्चिममेंसे हुई ? कहाँसे हुई ? तो वैसे यहाँ कहते हैं नेपथ्यमेंसे (उत्तर) आया। इसकी खबर नहीं मिलती, दिशा नहीं मालूम होती लेकिन आया है अंदरसे वह बात निश्चित है।

गुरुदेवको ॐ-ध्वनि आया था। गुरुदेवश्रीको तीन-तीन बार ॐ-ध्वनि आया था। ॐ-ध्वनि सुनकर आये थे इसलिये ॐ-ध्वनि आया था, ऐसा नहीं है। ये `गुरु-गुण-संभारणा' में पूज्य बहिनश्रीने यह बात ली है कि, सीमंधर भगवानकी ओमकार ध्वनि सुनकर आये थे इसलिये ॐ-ध्वनि सुनाई देता था, सो बात नहीं। अल्पकालमें केवलज्ञानी होकर खुदको ॐ-ध्वनि छूटनेवाली थी न ! स्वयं तीर्थंकर (द्रव्य) थे न ! इसलिये अंदरसे ॐ-ध्वनि आया था। उन्होंने भीतरमेंसे ऐसा अर्थ निकाला है। वैसे ॐ-ध्वनि आया है। तीन बार आया है। एक बार विंछीयामें आया था, विंछीयामें गाँवके बाहर बरगदके पेड़ नीचे आया था। विंछीयामें गाँवके बाहर शास्त्र लेकर स्वाध्याय करनेके लिये निकल जाते थे। उस दिन उपवास कर लेते थे, आहार नहीं लेते थे। क्योंकि फिर गाँवमें आनेकी झंझट न रहे। खाना खानेकी झंझट न रहे। तो वहाँ बरगदका एक पेड़ था, वहाँ एकांतमें ॐ-ध्वनि सुनी। दूसरा एक बार वांकानेरके उपाश्रयमें (आया था)। हम एकबार वांकानेर गये थे तब उपाश्रय दिखाया था। इस उपाश्रयमें गुरुदेवको ॐ-ध्वनि आया था, यानी ये सब नेपथ्यमेंसे आता है ऐसा कहना चाहते हैं। कहाँ से आता है ? अंदरमेंसे - नेपथ्यमेंसे आता है।

`**(अंधत्व दूर करनेके लिये) जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये**' यानी खोज करनी चाहिए। `**दृढ मोक्षेच्छा करनी चाहिए; इस विचारमें अप्रमत्त रहना चाहिये,...**' अतः जहाँ तक इसका समाधान न हो यानी कि परिणमन न हो तब तक दूसरे उदयमें खो नहीं जाना। अप्रमत्त रहना माने क्या ? कि, उसे कभी अधूरा नहीं छोड़ना, इसके पीछे लग जाना। पूरी-पूरी ताकतसे इसके पीछे लग जाना। `**तो मार्गकी प्राप्ति होकर अंधत्व दूर होता है,...**' (ऐसा होने पर) स्वच्छंद मिटता है और मार्गकी प्राप्ति होती है, अर्थात् उपाय मिलता है। `**यह निःशंक मानें।**' यदि इस प्रकारमें आप आये तो आपको मार्गकी प्राप्ति होगी कि नहीं होगी, इसकी शंका करनेकी जरूरत नहीं है।

कृपालुदेवका स्वयंका अनुभव यह कहता है कि, हमें इस प्रकार मार्ग प्राप्ति हुई थी और इस तरहका परिणमन किसीका हो, फिर (मार्गप्राप्ति) न होनेका अवकाश नहीं दिखता है। इस प्रकारके परिणाम होंगे तो मार्गकी प्राप्ति अवश्य होगी ही। हमें हुई थी यानी सबको होगी। जीव तो सब एक ही जातिके हैं न ! इसलिये निःशंकताकी बात ली है। अपने स्वानुभवके आधारसे निःशंकताकी बात ली है। जिस परिणामसे खुद सफलता पाये हैं, ऐसे ही परिणाम चाहे किसीको भी हो, तो वह निष्फल क्यों जायेगा ? (अनुभवकी) जाँच करने पर मालूम पड़ता है कि, किसी भी हालतमें निष्फल नहीं जा सकता, जाओ ! इसलिये ऐसा कहा कि, जाईये ! (हम कहते हैं) निःशंक (मार्गप्राप्ति) होगी, होगी और अवश्य होगी।

`**यह निःशंक मानें। अनादिकालसे जीव उलटे मार्ग पर चला है।**' लिजीये ! ठीक ! भारी ठपका दिया परंतु प्रभु ! हमने शास्त्र पढ़े हैं न ! नहीं पढ़े हैं, सो बात नहीं। गणधर द्वारा रचित - आचार्य शिरोमणी द्वारा रचित शास्त्र पढ़े होते हैं, गणधर माने आचार्य शिरोमणी कहे जाते हैं। सभी आचार्योंमें सर्वोत्कृष्ट आचार्य गणधर हैं। उस वक्त दूसरे आचार्य भी होते हैं लेकिन सर्वोत्कृष्ट आचार्य गणधर हैं। उनका सीधा उपदेश प्राप्त हो, ऐसे शास्त्र पढ़ें हो, तो

भी वह उलटे रास्ते पर चला है, ऐसा कैसे कह सकते हैं ? (तो कहते हैं कि) अगर ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन किये बिना पढ़ें हो तो वह उलटे रास्ते पर चला है।

जीवको खुदके प्रयोजनकी बात भी लक्ष्यमें नहीं आती है इसका कारण यह है कि, आज्ञांकितरूपसे सत्पुरुषके योगमें सत्संगकी उपासना नहीं की है। यह बात किसी एक पत्रमें लिखी है, कि (जीवने) आज्ञांकितरूपसे सत्संगकी उपासना नहीं की है। इसलिये खुदके प्रयोजनकी बात उसके ध्यानमें नहीं आयी है - लक्ष्य पर नहीं आयी है। अथवा वहाँ ऐसी बात भी ली है कि, प्रगट आत्मस्वरूपको दर्शाते हुए वचन मिलने पर भी जीवको असर नहीं होनेका क्या कारण है ? अथवा आत्माका दर्शन नहीं होनेका कारण क्या है ? जब कि सामने प्रगट आत्मस्वरूपको बतानेवाले वचन हो, ऐसा Tone और ऐसी शैलीसे (वचन) आये हो ! क्योंकि उस सत्संगकी (उसने) उपासना नहीं की। (सत्संग) की उपासना नहीं की वह कैसे ? कि आज्ञांकितरूपसे उपासना नहीं की है। स्वच्छंदसे तो उपासना (!) की है लेकिन आज्ञांकितरूपसे उपासना नहीं की है।

इसलिये कहा कि, '**अनादिकालसे जीव उलटे मार्ग पर चला है। यद्यपि उसने जप, तप, शास्त्राध्ययन इत्यादि अनंतबार किया है; तथापि जो कुछ भी अवश्य करने योग्य था, वह उसने किया नहीं है;...**' कि जो अवश्य कर्तव्यरूप था। '**जो हमने पहले ही बताया है।**' (अर्थात्) उसने ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदका परम प्रेमसे और अनन्य भक्तिसे सेवन नहीं किया। बस ! ये जो हमने पहले कहा था, वह उसने नहीं किया। बाकी सब कर चुका है। और इससे नया बंधन किया है। (जीव) कल्पना करता है न ! फिर मार्ग संबंधित कल्पना करता है कि, ये उपाय है। (जबकि) वास्तवमें उपाय उसे मिला ही नहीं होता। (बल्कि) किसी दूसरे उपायको उपाय माना, इसलिये गृहीत मिथ्यात्व हुआ, यानी कि बंधन हुआ। उघाड़ बढ़ा,

कषायकी मंदता हुई और मुनाफेमें क्या आया ? गृहीत मिथ्यात्व, ठीक ! ऐसा होता है। देखिये ! यहाँ इतना ज़ोर दिया है।

आगेके पैराग्राफमें इसके लिये कुछ दृष्टांत (दिये हैं)। ऋषभदेव भगवानसे लेकर, आखिरमें जंबुस्वामी जो अंतिम केवली हुए, वहाँ तक यही बात चली है। ऋषभदेव भगवानसे महावीरस्वामी नहीं लिये, अंतिम केवली जंबुस्वामी लिये कि, जिन्हें सुधर्मास्वामीने बोध दिया था। अंतिमकेवली जंबुस्वामी मथुरासे (मोक्ष) पधारे हैं। यहाँ तक रखते हैं।

धर्म पानेकी आशासे जीव अनेक प्रकारसे कल्पित बाह्य साधनरूप धर्म-प्रवृत्ति करता है, परन्तु इससे कोई धर्म-साधना नहीं होती है बल्कि उलटा साधन किया, ऐसा दुष्ट अभिमान होता है, जो जीवको सत्-साधनसे वंचित रखता है अथवा सत्-साधन सम्बन्धित सूझ आने नहीं देता। अतः आत्मकल्याणका 'अपूर्व विचार' आये बिना, कल्पित साधन मिटनेके लिये 'अपूर्व ज्ञानीपुरुष'की आज्ञा पर चलनेका दृढ़ निश्चय होता है, तभीसे जीवके आत्मार्थकी शुरूआत होती है, और जिन्होंने 'मार्ग' देखा है, वैसे ज्ञानीपुरुष अगर बिराजमान हो तो उनके चरणका सेवन करता है और अगर अविद्यमान हो तो तीव्र आश्रय भावनामें रहता है। सिद्धांत ऐसा है कि 'अपूर्व आत्मविचारपूर्वक' ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाका आराधन ही मार्गप्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ कारण है।

-पूज्य भाईश्री

(अनुभव संजीवनी-५४०)

प्रवचन - ३
'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-१९४
दि. १०-०६-१९९४ - मुंबई

श्रीमद् राजचंद्र (वचनामृत)। पत्रांक - १९४ चलता है। पहला पैराग्राफ जो चल गया इसमें वह बात आई कि, किसी भी जीवको मोक्षमार्गमें आनेके पहले ज्ञानीपुरुषकी पहचान होनी चाहिये। ज्ञानीपुरुषकी पहचान आनी चाहिये। पहचानपूर्वक पूर्ण विश्वास आना चाहिये। `सम्यक्प्रतीति' का अर्थ वही है। यथार्थ पहचानपूर्वक उत्पन्न हुआ पूर्ण विश्वास। क्योंकि यहाँ प्रतीति माने श्रद्धा। ज्ञानीकी श्रद्धा कहो लेकिन पहचान होवे वह ज्ञानकी पर्याय है। विश्वास आता है तो यह श्रद्धा प्रधान ज्ञानकी पर्याय है। क्योंकि दृष्टि-श्रद्धा तो सुलटी नहीं, उलटी है। इसलिये यहाँ श्रद्धाका परिणमन कार्यकारी नहीं है। (फिरसे लेते हैं)।

यह पैराग्राफ एक प्रश्नके उत्तररूप चल रहा है। कृपालुदेवने स्वयंने प्रश्न उठाया है कि, `**जीवको मार्ग मिला नहीं है, इसका क्या कारण ?**' (इस) प्रश्नको विशेषरूपसे समझाया जाये तो अनंतकालसे अब तक - अनादिसे अब तक अनंतकाल बिता। कितना (काल बित गया) ? (अनंतकाल बित गया)। इस अनंतकालमें धर्मके क्षेत्रमें सभी प्रकारकी - व्रत, संयमकी क्रिया करनेके बावजूद भी और अनेक शास्त्रके अध्ययन करनेके बावजूद भी (मार्ग प्राप्त हुआ नहीं)। क्रोड़ प्रयत्न किये। क्रोड़ क्या ? अनंत प्रयत्न किये। फिर भी जीवको मार्ग नहीं मिला इसका क्या कारण ? कौनसी ऐसी एक बात रह गई कि, जिससे मार्ग नहीं मिला ? एक ही कारण है कि, उसे सत्पुरुषकी पहचान नहीं हुई। (कृपालुदेव) यहाँ ज्ञानीपुरुष -

सत्पुरुष इतना ही नहीं कहकरके, हमको बहुमानसे ऐसे कहते हैं कि, `**जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं...**' (अर्थात्) जो अन्य पदार्थमें प्रतिबद्ध होते हैं, वे ज्ञानी नहीं होते हैं, क्योंकि ज्ञानी तो (परपदार्थसे) भिन्नत्व होनेसे हुए हैं। भिन्न पदार्थोंसे अनादिसे अभिन्नत्वका अनुभव किया था, वह (ज्ञानीपुरुषको) छूट गया और भिन्नरूपसे अनुभव करते हैं। इसलिये उनको भाव प्रतिबंध नहीं है। भाव प्रतिबंध नहीं होनेका यही कारण है।

मुमुक्षु :- यही बात सत्पुरुषको पहचाननेके लिये उपकारी बनती है ?

पूज्य भाईश्री :- (हाँ), उपकारी बनती है। वे प्रतिबद्धताको पाते हैं। या प्रतिबद्धताको नहीं पाते हैं ? (यह देखना है)।

श्वेतांबरमें तो वहाँ तक कथा आयेगी कि, भगवान महावीरस्वामी निर्वाणमें चले गये तो गौतमस्वामी रोने लग गये। अरे...! ज्ञानीपुरुषको भी प्रतिबद्धता नहीं होती है तो गणधरको तो होगी ही कहाँ से ? उनको चारित्रमोहका थोड़ा - अल्प लगाव था। कितना (लगाव था) ? बहुत अल्प (लगाव था)। वह भी छूट गया। भगवान निर्वाण पधारनेसे वह भी छूट गया। एकदम विरक्त परिणाम होते ही केवलज्ञान ले लिया। उसी दिन चोबीस घंटेमें केवलज्ञान ले लिया। चोबीस घंटें (भी) कहाँ लगे हैं ? बादमें तुरंत ही लिया है। इधर भगवान निर्वाणको गये, (और यहाँ गौतमस्वामी) केवलज्ञानको प्राप्त हुए। तुरंत ही केवलज्ञानको प्राप्त हो गये। उतना भी उपयोग जानेका फिर उनको (कोई) स्थान नहीं था।

मुमुक्षु :- तीन कषायकी चोकड़ी बाकी है इसलिये अभी प्रतिबद्धता है। ऐसा करणानुयोगका सिद्धांत यहाँ काममें नहीं आयेगा।

पूज्य भाईश्री :- नहीं, अनंतानुबंधी और दर्शनमोहनीय गया तो (बाकी) तीन चोकड़ीका कोई हिसाब नहीं है। यहाँ २५% और ७५% नहीं गिना जाता। सैन्यमें कोई राजाको मारते हैं तो फिर सैन्यमें

कितने आदमी बाकी रहे ? वह देखनेमें नहीं आता है। राजाको मार दिया तो सारा सैन्य है वह शरणागतिको स्वीकारनेवाला है। वे तो शरणागतिमें आ जायेंगे, (और कहेंगे) कि, 'आपने राजाको मार दिया, अभी हमारा क्या बूता है ? हमको मरना नहीं है। हमको जिंदा रहने दो। हम आपकी शरणमें आ जायेंगे।'

(यहाँ कहते हैं) '**जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति...**' (यहाँ मात्र) ज्ञानीपुरुषके प्रति (ऐसा) नहीं लिया। '**ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति...**' (ऐसे लिया है)। देखो ! (मुमुक्षु) कहाँ बैठता है ? ज्ञानीपुरुषके प्रति प्रेम आया ऐसा नहीं बोले (-कहा)। (बल्कि) '**चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुए बिना और सम्यक्प्रतीति आये बिना सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती,...**' (सत्स्वरूपकी माने) अपने आत्मस्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती। अपने आत्मस्वरूपका अनुभव किसीको नहीं होता। तीनों कालमें यह बात है, (आगे) ऐसा कहेंगे, '**और आने पर अवश्य वह मुमुक्षु, जिसके चरणारविंदकी उसने सेवा की है, उसकी दशाको पाता है।** क्या बात कही ?

(जिनको) ज्ञानीपुरुष मिले हैं, तो उनको अवश्य सत्स्वरूपकी प्राप्ति - स्वानुभव होता ही है। ज्ञानीपुरुष मिलने पर भी (यदि सत्स्वरूपकी) प्राप्ति नहीं हुई, तो मानना पड़े - मानना ही होगा कि उसने (ज्ञानीपुरुषकी) पहचान नहीं की है और उसे अचल प्रेम आया भी नहीं है। और उनके चरणारविंदकी सेवा नहीं की है।

भले (हम) गुरुदेवको (कानजीस्वामी) आहारदान करते वक्त उनके चरण धोते थे (फिर भी अचल प्रेम नहीं हुआ था)। जितनी बार आहारदान दिया होगा उतनी बार तो चरण धोये होंगे ! नमस्कार करते वक्त भी चरण छूते हैं ! चरण स्पर्श करते हैं कि नहीं करते हैं ? फिर भी उनके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम नहीं हुआ था और सही पहचान नहीं आयी थी। यह बात पक्की है। (पहचान) आयी तो अवश्य

उनको (सत्स्वरूपकी) प्राप्ति होगी, होगी और होगी। सम्यक्प्रतीति आयी, अचल प्रेम हुआ (तो) स्वानुभव होगा कि नहीं होगा ? ऐसा (प्रश्न) नहीं (रहता) है। (सत्स्वरूपकी प्राप्ति) नहीं हुई तो (पहचान) नहीं हुई है। कारण (प्रगट) नहीं हुआ है तो कार्य (प्रगट) हुआ नहीं। कारण (प्रगट) होगा तो कार्य होगा, होगा और होगा ही। यह (बात) नियमबद्ध है।

मुमुक्षु :- यहाँ चरणारविंद शब्द रखा है। शरीरके दूसरे अवयव नहीं लिये हैं, तो चरणारविंद लिया उसका मतलब क्या है ?

पूज्य भाईश्री :- उसमें ऐसा है, सारे शरीरमें मस्तक है वह उत्कृष्ट अंग है और पैर है वह निकृष्ट अंग है। (मस्तक) ऊपर रहता है और पैर जमीनसे-धूलीसे छूते हुए नीचे रहते हैं, गंदे भी होते हैं; तो उनको इतनी गरज है - मुमुक्षुको - आत्मार्थीको उतनी गरज है कि, भले ही पैर गंदे हो - इनकी चरणरज मेरे मस्तकमें लगनी चाहिये। मेरा उत्कृष्ट अंग और इनका निकृष्ट अंग ! ज्ञानीका निकृष्ट अंग और अपना उत्कृष्ट अंग ! (मुमुक्षु) उनकी चरणरजको माथे लगाता है, ऐसी बात है - ठीक !

मुमुक्षु :- वाणीकी उपासना करनेकी बात तो आती है लेकिन यहाँ चरणकी उपासनाकी बात की है।

पूज्य भाईश्री :- यहाँ तो चरणकी उपासना ली है। चरणारविंद - चरणकमल। चरणको भी कमलका विशेषण दिया। अरविंद माने कमल। 'चरणकमल' ऐसा कहते हैं। चरणकमल भी बोलते हैं और चरणारविंद भी बोलते हैं। दोनों बात बोलते हैं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवके सानिध्यमें रहे, चरणमें रहे फिर भी पहचान नहीं हुई और काम नहीं हुआ।

पूज्य भाईश्री :- पहचान नहीं हुई तो (स्वरूप प्राप्ति) नहीं होती है। पहचान होनेके लिये तो योग्यता चाहिये। क्षेत्रसे नज़दीक रहनेसे पहचान हो जाती है, ऐसा भी नहीं है। कोई क्षेत्रसे समीप रहनेसे

पहचान हो जाती है, ऐसा नहीं है, या ज्यादा काल समीप रहनेसे पहचान हो जाती है, ऐसा भी नहीं है।

सोगानीजीको एक ही घंटेमें पहचान हुई ! एक दिनमें (भी) नहीं ! एक दिनमें तो अनुभव हुआ था। पहचान तो एक ही घंटेमें हुई है - पहले घंटेमें हुई है। पहले प्रवचनमें हुई है। देखो ! क्या कारण है ? जब योग्यता आती है तब पहचान आती है। साथमें रहनेका चाहे एक घंटा हो, चाहे ५० साल हो ! ५० साल भी गुरुदेवके साथ रहनेवाले होंगे ! लेकिन पहचान नहीं हुई तो नहीं हुई। उसका कारण तो यही है कि, अपनी पहचाननेकी योग्यता नहीं है।

मुमुक्षु :- हमारी योग्यता नहीं है इसलिये पहचान नहीं है, ऐसे संकोच करके बैठ जाना चाहिये क्या ?

पूज्य भाईश्री :- यह बात तो इसलिये चर्चित की जाती है कि, हमारी योग्यता नहीं है तो हमारी योग्यता कैसे बने ? इसलिये यह बात है। यह बात अपने माथेसे निकाल देनेके लिये नहीं है। माथे (पर) लेनेके लिये है, निकाल देनेके लिये नहीं है। संतोष करनेके लिये भी नहीं है और उसको Neglect - गौण करनेके लिये भी नहीं है कि, चलो ! भाई अपनी योग्यता नहीं है, क्या करें ? खाओ-पीओ और आरामसे सो जाओ ! नींद बराबर आ जायेगी ! (यह बात) निश्चिंत होनेके लिये नहीं है, चिंतित होनेके लिये यह बात है। हम यह बात चर्चामें क्यों लेते हैं ? कि अगर हम इस विषयमें चिंतित नहीं हो, तो चिंतित हो जाना चाहिये। चिंतित होंगे तो योग्यता आयेगी। अगर इसकी चिंता नहीं आई तो योग्यता भी नहीं आयेगी।

मुमुक्षु :- कोई मुमुक्षु ऐसा भी कहते हैं कि, क्या करें हमारी प्रकृत्ति ऐसी है !

पूज्य भाईश्री :- ऐसा भी नहीं चलता। प्रकृत्ति तो दुश्मन है। हमारी प्रकृत्ति माने हमारा दुश्मन तो ऐसा है कि, जिसको हम गले लगाकर फिरते हैं। ऐसे लेना है क्या ? (प्रकृत्ति) तो मारेगी। ऐसा नहीं चलता। (इस विषयमें) चिंतित होना चाहिये, बहुत खेद और बहुत दुःख होना चाहिये। चाहे कितना भी रोना आ जाये ! लेकिन एक बार तो ऐसा होना चाहिये, चाहिये और चाहिये। स्वानुभव और सम्यक्‌दर्शनके लिये यह सीधी-सादी बात है। स्वरूप प्राप्तिके लिये सीधी-सादी बात है कि, हमें क्या करना ? हमें शास्त्र पढ़ना ? कौनसा शास्त्र पढ़ना ? समयसार पढ़ना ? किस महात्माके वचनामृतको पढ़ना ? वह बात नहीं की, उपवास करना, व्रत, नियम, संयम करना वह बात भी नहीं कही और दया, दान, यात्रा करनेकी बात भी नहीं कही, फलाने मंत्रका जाप करना, पंच परमेष्ठी मंत्रका जप करना ! (यह) मंत्र उत्कृष्ट है ! (फिर भी) वह नहीं कहा। ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदकी सेवा करना, बस..! वही कहा। (ऐसा करनेसे) अवश्य (सफलता) मिलती है।

(अब आगे कहते हैं) '**सर्व ज्ञानियोंने इस मार्गका सेवन किया है, सेवन करते हैं और सेवन करेंगे।**' (अब तक) जो भी ज्ञानी हुए उन्होंने ऐसा ही किया है। जो (वर्तमानमें) हो रहे हैं (वे भी) ऐसा ही कर रहे हैं। जो (भविष्यमें) होंगे वे (भी) ऐसा ही करेंगे। अगर ऐसा नहीं करेंगे (तो) उसे ज्ञान नहीं होगा, ऐसा कहते हैं; ठीक ! सीधी बात वह है।

(कहते हैं) '**ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी,...**' यह अपना सबूत देते हैं, कि हमारा सबूत है कि, इस प्रकारसे हमें ज्ञानप्राप्ति हुई थी, इसलिये अगर विश्वमें (ज्ञानप्राप्ति) किसीको भी होगी या हुई हो, (तो) इसी प्रकारसे (होगी), दूसरे प्रकारसे हो सकती नहीं। और यही वास्तविकता है। क्योंकि जो अनादिसे अनजाना है, ऐसा अंतर्मुख होनेका जो उपाय, वह किसीको स्वतः पता नहीं चलता। अपने आप किसीको पता नहीं चलता है। और (ऐसे ही) पता चलता तो धर्मक्षेत्रमें क्रियाकांड करनेमें कोई कसर नहीं रखी, शास्त्र पढ़नेमें भी कोई कसर नहीं

रखी। (मार्ग) मिल जाता, लेकिन (ऐसे) मिलता नहीं है। ध्यानकी Practice करे तो (लेकिन) किसका ध्यान करोगे ? वह ध्यान, ध्यान नहीं है (बल्कि) अनेक प्रकारके तरंगरूप ध्यान हैं। **`सत्संगके बिना ध्यान तरंगरूप हो जाता है।'** (१२८ पत्रमें) आया कि नहीं आया ?

मुमुक्षु :- अधिकतर आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानका ही ध्यान करेंगे।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, यह तो चलता ही है। चतुर्थ गुणस्थानके पहले आर्त्तध्यान (और) रौद्रध्यान दो ही ध्यान हैं, तीसरा धर्मध्यान है नहीं। शुकलध्यानका तो विचार करनेकी भी जगह नहीं है।

`वर्तमानमें इसी मार्गसे होती है और अनागतकालमें भी ज्ञानप्राप्तिका यही मार्ग है।' (यही एक मार्ग है) ऐसे लेना। जब यह बात हमारे सामने स्पष्ट आती है, तो फिर हमें दूसरा विकल्प या शंका उठानी चाहिये नहीं। जब कृपालुदेव हमारे सामने यह बात अपने अनुभवसे प्रस्तुत कर रहे हैं, तो हमें दूसरा कौनसा विकल्प करनेकी आवश्यकता है ? हमें कोई दूसरा विकल्प करना चाहिये नहीं। यही क्रम है, यह एकमात्र उपाय है। दूसरा उपाय ही नहीं है। जब दूसरा उपाय है नहीं तो फिर इसके विषयमें सोचे क्या ? और **`सर्व शास्त्रोंका बोध-लक्ष्य देखा जाये तो यही है।'**

हमारा अनुभव भी (यही) बोलता है और सभी ज्ञानियोंके शास्त्र भी यही बोलते हैं। माने मैं (अकेला) बोलता हूँ, (ऐसा नहीं है)। सभी ज्ञानी यही बोल रहे हैं, वही कह रह हैं। नियमसारकी ५३ गाथामें आया न ? (उस) गाथामें सत्पुरुषको (सम्यक्त्व परिणामका) अंतरंग निमित्त कहा है। नियमसार जैसे शास्त्रमें (ऐसा कहा है) ! (जबकि नियमसार) तो त्रिकाली कारण परमात्माकी भावनाका ग्रंथ है। वहाँ सत्पुरुषको अंतरंग निमित्त लिया है, देखो !

`और जो कोई भी प्राणी छूटना चाहता है उसे अखंड वृत्तिसे इसी मार्गका आराधन करना चाहिये।' इसी मार्गका जो आराधन नहीं करता है, वह (जीव) छूटना भी नहीं चाहता है। यहाँसे

ऐसी (बात) निकलती है, अनर्पित(रूपसे) निकलता है। (जो) छूटना चाहता है, वह इसी मार्गका सेवन करे। अनर्पित(रूपसे) निकलता है कि, जो (इस) मार्गका सेवन नहीं करता है वह छूटना चाहता भी नहीं है। उसे अभी बंधनमें पड़ना है, छूटना नहीं है - यह बात जरूर है।

`इस मार्गका आराधन किये बिना जीवने अनादिकालसे परिभ्रमण किया है।'** सभी पहलूओंसे (बातको) स्पष्ट करते हैं कि, इसी मार्गका आराधन किये बिना ही जीवका परिभ्रमण चालू रहा है। अगर उतना कर लेता तो उसका परिभ्रमण चालू रहता नहीं। **`जब तक जीवको स्वच्छंद रूपी अंधत्व है,...' (यह बात) इसलिये लेते हैं (कि), दूसरे-दूसरे (धर्म साधन) किये उसका क्या ? तो (कहते) हैं कि, (सबकुछ) स्वच्छंदसे किया है। ज्ञानीकी आज्ञामें रहकर कुछ नहीं किया है। जो भी क्रिया करनी है, वह ज्ञानीकी आज्ञासे करो ! कहनेका यह मतलब है। वरना स्वच्छंद हो जायेगा। अपने आप करने जाओगे तो स्वच्छंद हो जायेगा।

`जब तक जीवको स्वच्छंदरूपी अंधत्व है, तब तक इस मार्गका दर्शन नहीं होता।' यह बात भी बहुत सुंदर कही है, कि जिनको ऐसी सूझ नहीं आती कि, मुझे ज्ञानीके मार्ग पर चलना चाहिये, मेरे अभिप्रायसे मेरी मनमानी नहीं करनी चाहिये; जिनको ऐसी सूझ नहीं है वे स्वच्छंदमें पड़े हैं। वह कहाँ पड़ा है ? स्वच्छंदमें पड़ा है। और इसलिये उसे इस मार्गकी सूझ नहीं आती। **`दर्शन नहीं होता'** मतलब सूझ नहीं आती। देखो ! योग्यता क्या काम करती है ? यह बात हजारों-लाखों जीव पढ़ते हैं कि नहीं पढ़ते हैं ? आज भी हजारों-लाखों पढ़ते हैं। फिर भी, जिसका (इस बात पर) ध्यान जाता है वह योग्यतावान है। जिसका ध्यान नहीं जाता है उसकी योग्यता नहीं है। वे पढ़ते ही रहेंगे, इसीको ही पढ़ते रहेंगे।

जैसे कृपालुदेवने एक Slogan दिया - मंत्र दिया (कि), `आतमभावना

भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे !' एक पंक्ति (कही)। (अब हम) आतमभावना तो भाये नहीं और इस पंक्तिकी धुन लगा दे तो ! दो-दो घंटें, तीन-तीन घंटें बोलते ही रहे - आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे... 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे...' केवलज्ञान लहेगा क्या ? ये धुन लगाना यही कार्यकी विधि-पद्धति है, ऐसा करनेसे (माननेसे) गृहीत मिथ्यात्व होगा। क्या होगा ? गृहीत मिथ्यात्व होगा। (ऐसा माननेसे) साधनकी भूल होगी - कार्य पद्धतिकी भूल होगी। गृहीत मिथ्यात्व हो जायेगा। बोलेंगे क्या ? कृपालुदेवके वचनको (और) करेंगे क्या ? मिथ्यात्वको दृढ़ !! यह गड़बड़ होती है।

इसलिये पत्र तो यह पढ़ेगा, एकबार पढ़ा, दस बार पढ़ा, सौ बार पढ़ा, हजार बार पढ़ा, लेकिन पढ़नेमें जो उपदेश (आया) उसका अनुसरण किया नहीं। उपदेश तो पढ़ा, सुना और अमलीकरण नहीं किया ! पढ़ते ही रहा ! पढ़ते ही रहा ! क्यों पढ़ता है ? कि पढ़नेके लिये पढ़ता है। बार-बार पढ़ना चाहिये इसलिये पढ़ते हैं। जो पढ़नेका विषय है उसे दृढ़ करनेके लिये पढ़ते हैं। (और) अमल करनेमें ? कुछ नहीं। ये सब पढ़ना बेकार है। यह धुन लगाने जैसी बात हो गई। उसे मार्गका दर्शन भी नहीं होता।

'**(अंधत्व दूर होनेके लिये) जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये,...**' अब स्वच्छंद दूर करनेके लिये क्या करना ? (यह कहते हैं)। इस मार्गका विचार करें कि, कैसे सत्पुरुषको पहचाना जाये ? कि जिससे हमें उनके प्रति अचल प्रेम आये बिना रहे नहीं। कैसे पहचाना जाये इसका विचार करें। और (यह) विचार करनेमें (अगर) कोई सहायक है तो वह - 'पूर्णताका लक्ष' है। '**दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये;...**' (अर्थात्) किसी (भी) कीमत पर मुझे छूटना ही है। चाहे सो हो जाये। कितने भी उपसर्ग आ जाये, परिषह आ जाये, आधि-व्याधि-उपाधि आ जाये, (ऐसा) १२८ (पत्रमें) लिया कि

नहीं लिया ? चाहे आयु एक समय रह जाये, चाहे दुर्निमित्त हो, कुछ भी हो ! ऐसा करना ही है - छूटना ही है - परिभ्रमणसे मुक्त होना ही है। ऐसी '**दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये;...**'

(ऐसी) दृढ़ मोक्षेच्छा करनेसे पहचाननेकी योग्यता आ जायेगी, ठीक ! (मार्ग प्राप्तिके) क्रमके प्रारंभमें पहला कदम रखनेसे ही (ज्ञानीपुरुषको) पहचाननेकी योग्यता आ जायेगी। ऐसी बात है। वह तो २५४ (पत्रमें) लिया ही है, कि जो मोक्षके लिए प्रयास करता है, उसे आत्मस्वरूप प्राप्तिकी बहुत भावना होती है - तीव्र भाना होती है, उस भावनाके वशात् उसका निरंतर अवलोकन चलता है, अवलोकनसे अपने दोष दिखनेमें आते हैं, और संसारके पदार्थमें कहीं भी अल्प भी इच्छा नहीं रहती है और ज्ञानीकी पहचान होकर उनमें परमेश्वरबुद्धि आ जाती है। २५४ (पत्रमें ऐसा) क्रम लिया कि नहीं लिया ? बस ! उसे देर-सबेर पहचान आ जायेगी। इतना Process होगा तो पहचान आयेगी। दृढ़ मोक्षेच्छा यानी पूर्णताके लक्षके बाद इतना Process होनेके बाद पहचान आयेगी। अगर पहचान नहीं आयी तो पहचानके लिये तीव्र जिज्ञासामें रहना, यह भी वहाँ लिया है। फिर भी (अगर) पहचान नहीं होती है तो क्या (करना) ? कि तीव्र जिज्ञासामें रहनेसे पहचान आये बिना रहेगी नहीं।

पूज्य सोगानीजीका जीवन चरित्र देखें तो, उनको सीधी बात यह नहीं मिली थी कि, तुमको सत्पुरुषके चरणमें जाना चाहिये। वह कोई सुनानेवाले मिले नहीं थे। न कोई कहनेवाले मिले थे, न वह बात पढ़नेमें आयी थी। लेकिन छूटनेकी भावना तीव्र हो गई थी। उतनी तीव्र हो गई ! उतनी तीव्र हो गई ! कि, एक विकल्पको बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। एक विकल्प भी गलेमें फाँसी (जैसा) लगता था। उतना (विकल्पमें) तीव्र दुःख (लग) गया (था)। और (कोई) प्रतिबंध नहीं रहा था। समाज प्रतिबंध और कुटुंब प्रतिबंध तो कबका छूट गया था। विकल्प प्रतिबंध चालू था और वह भी वे बर्दाश्त

नहीं कर सकते थे। (उनको ऐसा लगता था) या तो विकल्प छूटे या तो मेरा प्राण छूटे। इस भूमिकामें योग्यताकी चरमसीमामें आ गये। उतनेमें `आत्मधर्म' (पत्रिका) मिली। (पढ़नेके बाद ऐसा अनुमान लगा कि) इस मार्गको बतानेवाले कोई हैं, और ६०० मीलकी सफर कर ली। ६०० मील माने ? १००० किलोमीटर हो जाता है। १००० किलोमीटरकी मुसाफिरी कर ली। कोई जान-पहचान नहीं, भाषा समझे नहीं - कुछ नहीं था। (फिर भी) उनको सिखाना नहीं पड़ा कि, तुमको सत्पुरुषके चरणमें जाना है। ऐसा किसीने उपदेश नहीं दिया है। इसका मतलब यह होता है कि, ये बात सिखानी नहीं पड़ती।

जिसे पानीकी प्यास लगती है और ऐसी प्यास लगती है कि, प्राण छूट जायेंगे ! उसे पानी ढूँढ़नेका सिखाना पड़ता है क्या ? कि, तुम पानी ढूँढ़ो, वरना मर जाओगे ! (कुछ) सिखाना नहीं पड़ता। यह तो अच्छी बात है कि, हमको सिखानेवाले मिलते हैं ! उनको तो बिना सिखाये ही अनुकरण - अनुसरण हो गया। और यहाँ सिखानेवाले मिलने पर भी अनुकरण और अनुसरण नहीं होता है - तो यह योग्यताकी बलिहारी है ! और कुछ नहीं है। यह योग्यताका कारण है। हर जगह योग्यताका साम्राज्य है - जैसी जिसकी योग्यता - बस !

मुमुक्षु :- उसकी योग्यता कम है इसलिये सिखानेवाले मिलते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- योग्यता कम हो या ज्यादा हो, इससे कोई मतलब नहीं है। ज्ञानी (अपने मार्ग पर) चलते हैं और मार्ग दिखाते जाते हैं। किसीके भाग्यमें इसका योग होता है तो (मार्ग) देख लेते हैं। और अगर किसीकी योग्यता नहीं है तो - दिखानेवाले मिलते हैं फिर भी नहीं देखते हैं। ऐसा नहीं है कि सब नहीं देखते हैं, ऐसा नहीं है कि सब देखते हैं। इसलिये इसका कोई नियम नहीं (है)।

`इस मार्गका आराधन किये बिना जीवने अनादिकालसे परिभ्रमण किया है। जब तक जीवको स्वच्छंदरूपी अंधत्व है,... दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये; इस विचारमें अप्रमत्त रहना चाहिये,...'** अप्रमत्त रहे माने पीछे लग जाये। पूरा पीछे पड़ जाये। इसके पहले माथामें कोई दूसरी बात प्रवेश करे नहीं। **`तो मार्गकी प्राप्ति होकर अंधत्व दूर होता है, यह निःशंक मानें।' अंधत्व दूर होगा ही, स्वच्छंद मिटेगा ही, मार्गकी प्राप्ति होगी ही। इसमें शंका करनेकी गुंजाइश नहीं है। कोई शंकाकी गुंजाइश नहीं है। एकदम अनुभवसिद्ध बात है। कैसी बात है ? अनुभवसिद्ध बात है।

`अनादिकालसे जीव उलटे मार्ग पर चला है।'** इसको छोड़कर जो मार्ग पसंग किया, वह सब उलटा है। वह मार्ग नहीं है, उन्मार्ग है। क्या है ? मार्ग नहीं है किन्तु उन्मार्ग है। और (ज्यादा) अंधत्व बढ़ा। उन्मार्ग पर चलनेसे तो और दूर गया। यही काम हुआ है। **`यद्यपि उसने जप, तप, शास्त्राध्ययन इत्यादि अनंत बार किया है;...' क्रोड़ बार नहीं किया है (किन्तु) अनंत बार किया है। **`तथापि जो कुछ भी अवश्य करने योग्य था, वह उसने किया नहीं है; जो हमने पहले ही बताया है।'** हमने इन वचनोंमें यही बताया है। वह नहीं किया - दूसरा सब कुछ कर लिया। अपना जीवन देखनेसे यह पता चल जायेगा कि, इस जीवनमें भी हमने जो कुछ किया, उसमें यह बाकी रह गया है। पहचान नहीं आयी है, योग्यता नहीं आयी है। बाकी तो शास्त्र अध्ययन करते हैं, थोड़ी पूजा-भक्ति भी करते हैं, थोड़ी दया-दान भी करते हैं, (इसतरह) जो भी मुमुक्षुके योग्य परिणाम हैं वह करते हैं। और जीवन चला जाता है, काम नहीं होता है (इसका) क्या कारण है ? कि यह (बताया) वह नहीं हुआ है। (सिर्फ) यह जीवन नहीं, ऐसी अनंत जिंदगी चली गई।

अब इस (बातके) सबूत देते हैं। दो सबूत दिये हैं। एक सत्युगके प्रारंभका और एक सत्युगके अंतका। क्योंकि चौथा आरा है उसमें

धर्म बहुत हुआ, अनेक जीवोंने धर्म पाया। बहुत बड़ी संख्यामें - बहुत बड़ी तादातमें धर्मकी प्रभावना हुई थी। (युगके) प्रारंभमें भी यही कारणसे (धर्म) हुआ और अंतमें भी यही कारणसे हुआ। दो सबूत दिये हैं।

पहला (सबूत देते हैं)। `**सूयगडांगसूत्रमें ऋषभदेवजी भगवानने जहाँ अट्ठानवें पुत्रोंको उपदेश दिया है....**' ये अट्ठानवें (पुत्र) मोक्षमें गये (हैं)। ऋषभदेव भगवानके कितने पुत्र थे ? सौ पुत्र थे। वैसे तो सौ के सौ (मोक्षमें) गये हैं। लेकिन इतिहास (मात्र) भरत-बाहुबलीका मिलता है। अट्ठानवें (पुत्रोंका) इतना इतिहास नहीं मिलता है। क्यों ? कि, वे फौरन चले गये। उसमें कोई घटना ही नहीं घटी। भरत महाराजाके तो चक्रवर्तीपदकी (बातें आती हैं)। और बाहुबलीको भरतजीके साथ युद्धकी घटना घटी - (लेकिन) इनकी तो कोई घटना ही नहीं घटी। वे बोलते नहीं थे। समवसरणमें (भगवानका) उपदेश सुनते थे। बोलते नहीं थे (तो) किसीको शंका हो गई। ऐसे महानपुरुषके पुत्र कोई गूँगे थोड़े ही होते हैं ? वे बोले नहीं। इतना पुण्य लेकर आये हैं - तीर्थंकरके पुत्र हैं तो गूँगे थोड़े होते हैं ? वे बोलते क्यों नहीं है। उपदेश ही सुनते थे। सुनते थे और अंतरमें उतारते थे। क्या करते थे ? बाहर नहीं निकालते थे। अभी तो थोड़ा सुना, थोड़ा पढ़ा (तो) बाहर निकालने लग जाते हैं। अंदरमें नहीं जाता है तो बाहर निकल जाता है। (उपदेशको) अंतरमें उतारते थे। (जब) बोले तो उतना ही बोले, `हमको भगवती प्रवजर्या ग्रहण करनी है। हमें संसारमें कहीं भी कुछ करना नहीं है। आपकी आज्ञा है (उसे) हमने शिरोधार्य की है। हम तो आपके चरणमें बैठ गये हैं। अब उठनेवाले नहीं है।' (ऐसा कहकर) दीक्षा ले ली। सब भावलिंगी संत हो गये (और) उसी भवमें मोक्षमें - निर्वाणपदमें चले गये। निगोदमेंसे आये थे। चौरासी लाख योनीमें जन्म-मरण नहीं करना पड़ा। मनुष्य होकर निर्वाणपदमें चले गये। ऋषभदेव भगवानने ऐसे चरमशरीरी, मोक्षगामी जो अट्ठानवें पुत्रोंको उपदेश दिया था और `**मोक्षमार्ग पर चढ़ाया**

है वहाँ यही उपदेश किया है' - वहाँ कैसा उपदेश दिया है, उसे तीन पंकितमें लिखते हैं।

`**हे आयुष्यमानों** !...' आप मनुष्यआयु भोग रहे हो, निर्वाणपदके अधिकारी हो, `**इस जीवने सब कुछ किया है एक इसके बिना, वह क्या ? तो कि निश्चयपूर्वक कहते हैं कि सत्पुरुषका कहा हुआ वचन, उसका उपदेश सुना नहीं है;...**' क्या हमने (उपदेश) नहीं सुना ? (यहाँ कहते हैं कि) नहीं सुना है। सुननेके बाद इसका अमलीकरण नहीं हुआ तो सुना ही नहीं, निकाल दिया। यहाँसे सुना, यहाँसे निकल गया।

`**अथवा सम्यक्प्रकारसे उसका पालन नहीं किया है।**' (अर्थात्) ग्रहण किया नहीं। `**और इसे ही हमने मुनियोंकी सामायिक (आत्मस्वरूपकी प्राप्ति) कहा है।**' सत्पुरुषके उपदेशको ग्रहण करना यही सामायिक है। घंटाभर बैठ जाना वह सामायिक नहीं है। सामायिकके पाठ बोल जाना वह भी सामायिक नहीं है। (अब तक जो सामायिक) की वह सामायिक थी कि नहीं थी ? बिलकुल सामायिक नहीं थी। वह सामायिकके संबंधमें एक भ्रांति थी। उस भ्रांतिको छोड़ दिया। यह करने लायक नहीं है। सामायिक तो वह है कि, जो सत्पुरुषके उपदेशको ग्रहण करके अंतरमें उतार ले। यही सामायिक है। इधर मुनियोंकी सामायिकके साथ बराबरी की है, देखो ! यह बात सूयगडांगसूत्रमें आयी है। ऋषभदेव भगवानने अट्ठानवें पुत्रोंको मार्ग पर चढ़ाया है, (यही) उपदेश दिया है। इस तरहसे उपदेश दिया है, इस तरहसे मार्ग पर चढ़ाया है। जब सत्युगका प्रारंभ था, और ऐसे पात्र जीव उनके समवसरणमें थे, तो उपदेश यही दिया कि, सत्पुरुषके वचनका अनुसरण करके अंतरमें उतार लो। जो सत्पुरुषके वचन हैं - वही श्रीगुरुके वचन हैं, वही परमगुरु तीर्थंकरके वचन हैं। इसमें कोई अंतर नहीं है। पूरे चतुर्थकालमें ऐसे ही उपदेश चला। और जिन भाग्यवंतोंने इस उपदेशका अनुसरण किया, वे धर्म पाकर

अपना कल्याण करने लग गये। (चतुर्थकालके) आखिरमें क्या हुआ? आखिरमें दो केवली रह गये। सुधर्मास्वामी और जंबुस्वामी। जंबुस्वामी हैं वे अंतिम केवली हैं। पहले गौतमस्वामी गये, फिर सुधर्मास्वामी गये, फिर मथुरासे जंबुस्वामी (मोक्षमें गये)।

मथुरा चौरासी कहते हैं न ? वहाँ चर्चा चली थी कि, इसे चौरासी क्यों कहते हैं ? क्योंकि अगल-बगलमें चौरासी कोसमें धर्म प्रभावना हुई थी। मोक्षकी (प्रभावना हुई थी)। इसलिये इसको मथुरा चौरासी कहते हैं।

`सुधर्मास्वामी जंबुस्वामीको उपदेश देते हैं कि सारे जगतका जिन्होंने दर्शन किया है, ऐसे महावीर भगवानने हमें इस प्रकार कहा है -' भगवान महावीर हमारे परमगुरु थे। सुधर्मास्वामी, जंबुस्वामीको क्या कहते हैं ? कि भगवान महावीर जो हमारे गुरु थे, वे कैसे थे ? कि सर्वज्ञ थे। सारे जगतका दर्शन कर लिया था। किसी भी बातसे अनजाने नहीं थे - अनभिज्ञ नहीं थे। उन्होंने हमें इस प्रकारसे कहा। हमारे गुरुने तो हमको ऐसा कहा। इसलिये हम मोक्षमें जायेंगे। तुम भी सुन लो और तुम भी मोक्षमें चले जाओ। **`गुरुके अधीन होकर आचरण करनेवाले अनंत पुरुषोंने मार्ग पाकर मोक्ष प्राप्त किया है।**' गुरु अधीन रहे उन्होंने मोक्षको प्राप्त कर लिया। जो गुरु अधीन नहीं रहे उन्होंने मोक्षको प्राप्त नहीं किया। क्षेत्रसे (गुरुके) अधीन रहे, वह बात नहीं है। क्षेत्रसे तो नजदीक रहेगा (लेकिन) भाव उलटा चलेगा - वह (गुरुके) अधीन नहीं है। क्षेत्रसे दूर हो या समीप हो, उनकी आज्ञामें रहनेका जिसका निश्चय है, वह तीर जायेगा।

मुमुक्षु :- उपदेशको अंतरमें उतारना वही चरणकमलकी उपासना है ?

पूज्य भाईश्री :- यही वास्तविक चरणकमलकी उपासना है। यानी? उसमें दूसरी बात रही है। ठीक (प्रश्न) है। जिसको श्रीगुरुका - सत्पुरुषका उपदेश मिलता है और अपने अंतरंगमें - मर्मस्थानमें पहुँचता है (अर्थात्) उसका असर आता है। और वह उसका अमलीकरण करने लग जाता है। उसको मालूम पड़ता है कि, अब मेरा कल्याण होगा, होगा और होगा ही। उसे उनकी (श्रीगुरुकी) चरणरज माथे चढ़ानेका भाव आता है। अपने उपकारी (श्रीगुरुके) प्रति उतनी उपकृतबुद्धि होती है कि, उनकी चरणरज वह माथे लगाये ! इतनी उपकारबुद्धि उसे आती है। (फिर) क्या हुआ ? किसीको सहीरूपमें ऐसा हुआ (और) किसीने ऐसा किया। फिर उसकी नकल कर लेनेसे कोई उपकार नहीं हो जाता है। फिर ये Tradition हो गई कि, चलो ! गुरुके चरणस्पर्श करो ! उनकी चरणरजको माथे लगाओ ! (यहाँ) ऐसी बात नहीं है।

मुमुक्षु :- फिर सर पर वास्केप डालते हैं। ?

पूज्य भाईश्री :- वास्केप डाले वह तो कोई अच्छी रज होगी। सुखड वगैरहका पाउडर होगा। लेकिन यह तो चरणरज - धूलि (है)। जिसको हम मैलापन कहते हैं। क्या कहते हैं ? (मैलापन कहते हैं)। पानीमें डालेंगे तो पानी मैला होगा या नहीं होगा ? (होगा)। उसे इतनी उपकारबुद्धि आती है ! ऐसी उपकारबुद्धिसे बाहरमें ऐसी प्रक्रिया होती है। जिसे उपकार नहीं हुआ हो, वह भी नकल करने लग जाते हैं। (लेकिन) इससे कोई काम नहीं होता है। मूलमें वह बात होती है, या हुई थी, या होती है। यह बात है। ऐसा बनता है। फिर जो नहीं समझते हैं वे भी ऐसा ही कर लेते हैं। जो समझकर करते हैं उनकी तो वास्तविक बात है। जो नहीं समझकर करते हैं, वे ओघसंज्ञामें करते हैं। दोनोंको (बाहरकी प्रक्रिया तो) होती है।

मुमुक्षु :- भक्ति तो अंतरंगसे उठती है।

पूज्य भाईश्री :- वह तो ठीक है। पहचान आयेगी तो अंतरंगसे (भक्ति) आये बिना रहेगी नहीं। यह (बात) बहुत स्वाभाविक है। बहुत

ही स्वाभाविक है। (बल्कि) ऐसा नहीं होना यह अस्वाभाविक है। क्या ? ऐसा नहीं होना यह अस्वाभाविक है और ऐसा होना यह बिलकुल स्वाभाविक है।

बाहर Secretariat में एक काम निकालने जाते हैं न ! (तो भी कितनी गरज करते हैं)। मंत्रीसे कोई Licence लेना हो तो पहले इनके पीउनसे लेकरके, इसके सेक्रेटरीसे लेकरके फिर वहाँ पहुँचना पड़ता है और सबको राजी रखना पड़ता है। और वह पीउन ढेढ़ हो, भंगी हो, चमार हो या प्रधान भंगी-चमार (की जातका हो) (तो भी) वहाँ कितनी गरज करनी पड़ती है ! साहेब.. साहेब... साहेब... साहेब करके, करोड़पति होता है तो भी पूँछ हिलाने लगता है कि नहीं लगता है ? क्यों ? (क्योंकि) उसकी गरज है। एक काम निकालना है तो उतनी गरज है ! अभी अनंत जन्म-मरण मिटानेके लिये कितनी गरज होती होगी !! (इसका) हिसाब लगा लेना, बस ! बात खतम !

भावनगरमें एक भाई आये थे। वे कृपालुदेवकी बहुत भक्ति करते थे। उनको हर जगह कृपालुदेव ही दिखते थे। (वे कहते थे) हम भावनगर आये बसमें बैठे (और) बादलको देखा तो बादल पर कृपालुदेवको हमने बैठे हुए देखे ! स्कुटर चलाते हैं तो ऐसा लगता है कि, हमारे आगे चल रहे हैं या हमारे पीछे बैठ गये हैं। हर जगह वे ही दिखते हैं। तो क्या कृपालुदेव सर्व व्यापक हो गये थे ? कि इनकी नजरमें तो सर्वव्यापक हो गया। यहाँसे भगवानको (इसतरह) सर्वव्यापक बोलनेमें आया है, वास्तवमें भगवान सर्वव्यापक नहीं है। लेकिन जहाँ-जहाँ नजर पड़ती है, वहाँ-वहाँ अपने उपकारीके दर्शन होते हैं। उसको सर्वव्यापकता हो गई, ऐसा कहनेमें आता है। यह भी बनता है। (ऐसा) भी बनता है। यह (बात) सहज-स्वाभाविक होती है। वह करना पड़ता नहीं है और सीखना पड़ता भी नहीं है। यह सिखाया नहीं जाता, यह हो जाता है।

`**एक इस स्थलमें नहीं, परंतु सर्व स्थलों और सर्व शास्त्रोंमें**

यही बात कहनेका लक्ष्य है।' यहाँ लक्ष्य माने इरादा है। सब स्थलमें, सब शास्त्रमें यही बात कहनेका इरादा है। इसका सूत्र है - `**आणाए धम्मो आणाए तवो। आज्ञाका आराधन ही धर्म और आज्ञाका आराधन ही तप है।**' बाहरमें तो जो लोग तप करते हैं न ! जैसे उपवास आदि करते हैं; तो नहीं सुहाता है ऐसी परिस्थितिको सहन करके भी तप करते हैं। लेकिन गुरु आज्ञा नहीं सुहाती हो, ऐसा कभी बनता नहीं है। अपनी पसंदगी - अपसंदगीकी वहाँ कोई परिस्थिति नहीं होती कि, मुझे ये पसंद है या नहीं है ? यह बात वहाँ नहीं रहती। कहते हैं न ? `No choice, no voice' इसके सामने कोई आवाज नहीं। बस ! जो आज्ञा है उसे उठा ली। उसमें कोई सहन करना - नहीं (सहन) करना - वह प्रश्न ही नहीं (है)। उसीको तप कहनेमें आता है। और तप परमप्रेमसे उपासनीय होता है। आर्त्तध्यानके परिणामसे जो तप किया जाता है, वह तप है ही नहीं।

मुमुक्षु :- इसमें निमित्तका घूंटन बहुत होता है।

पूज्य भाईश्री :- सारा दिन निमित्तका घूंटन चलता है, तब यह प्रश्न क्यों नहीं आता है ? भूख लगे तो खाने बैठ जाये, बहुत भूख लगी हो तो झपट मारे ! प्यास लगी हो तो फटाफट पानी पी जाता है, वहाँ तो निमित्त सूझता नहीं है ! और सारा दिन - चौबिस घंटे कर्मके उदयमें -निमित्तमें जुड़कर काम करे ! एक समय दिखा दो कि तुम्हारे चौबिस घंटेमें एक समय भी तुम बिना निमित्ताधीन प्रवृत्ति करते हो ! (बस !) एक समय दिखा दो ! अब पहले निमित्त बदलो। इस तरहसे पहले बदलो। जब तुम निमित्ताधीन पड़े ही हो और, और कोई बचनेका चारा नहीं है तो एक दफे निमित्तको बदलो। फिर उपादानमें (अपने आप) आ जाओगे। बिना निमित्त बदले कभी उपादानमें आ सकोगे नहीं। घड़ा उलटा है (वह) आड़ा होगा फिर सीधा होगा। एक भी घड़ा आड़ा हुए बिना सीधा हुआ हो - यह असंभव है - अशक्य है। कभी हो सकता नहीं। तो पहले आड़े तो

हो जाओ ! ऐसा कहते हैं। आड़ा होनेका कहते हैं तो (ये) कहता है, आड़ा नहीं सीधा होना है। तो कहते हैं कि, तुमको सीधा होना ही नहीं है। ऐसी बात है। यहाँ निमित्ताधीन दृष्टि होती है, ऐसा जिसको विचार होता है (वे) बड़े दुर्भागी हैं ! वे बड़े दुर्भागी हैं ! क्योंकि यहाँ भी उसे सरलपना नहीं रहा - टेढ़ा हो गया।

आज्ञाका आराधन यही धर्म (और) आज्ञाका आराधन वही तप - यह आचारंग सूत्र कहाँसे निकला ? भगवानकी वाणी और गौतमस्वामी गणधरदेवके माध्यमसे यह आचारंग सूत्र लिखा गया है। यह मूल सूत्र है। `जो एगं जाणहि सो सव्वं जाणहि' (यह भी) मूल सूत्र है। `आणाए धम्मो आणाए तवो' - यह मूल सूत्र है। बाकी Adulteration (मिलावट) हुई हो, वह अलग बात है। बाकी कुछ मूल सूत्र रहते हैं। यह भगवानका मूल सूत्र है। क्या भगवानको उपादानका पता नहीं था ? भगवानको उपादानका उपदेश देना नहीं आता था कि, ऐसा सूत्र दिया ? ये तो भगवानकी भूल हो गई !! हम तो उपादानवाले ! भगवानकी भी भूल निकाल सकते हैं !! यही स्वच्छंद है और कुछ नहीं है। इसीका नाम स्वच्छंद है।

`**सब जगह यही महापुरुषोंके कहनेका लक्ष्य है।**' सभी महापुरुषोंका कहनेका यही इरादा है। `**यह लक्ष्य जीवकी समझमें नहीं आया।**' अनंतकालमें अनंतबार सुनने पर भी समझमें नहीं आया। `**इसके कारणोंमें सबसे प्रधान कारण स्वच्छंद है,...**' देखो ! क्या लिखा ? क्यों समझमें नहीं आया ? क्योंकि अभिप्रायमें स्वच्छंद रखकर सुना। `(ज्ञानीपुरुष) भले ना कहे ! अपने तो जो क्रिया करनी है वही करेंगे ! पूजा पहले करेंगे, फिर स्वाध्याय करेंगे !' (ऐसा भावमें रखकर सुना)। अपने यहाँ भी करते हैं कि नहीं ? पहले पूजा- फिर स्वाध्याय ! और स्वाध्याय चलता हो उसी समय पूजा (भी चलती है) !

गुरुदेव तो ठपका देते थे। (कहते थे) इनको शुभभाव करनेका

भी समझमें नहीं आता है ! (तो) ज्ञान तो कहाँसे होगा ? शुभभाव कौनसा बढ़िया होता है और कौनसा करना चाहिये ? वह भी उसको ज्ञानमें - समझमें नहीं आया है।

(यहाँ कहते हैं, ऐसा होनेमें) `**सबसे प्रधान कारण स्वच्छंद है और जिसने स्वच्छंदको मंद किया हैं, ऐसे पुरुषके लिये प्रतिबद्धता (लोकसंबंधी बंधन, स्वजनकुटुंब बंधन, देहाभिमानरूप बंधन, संकल्प-विकल्परूप बंधन) इत्यादि बंधनको दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय जो कोई हो उसका इसपरसे आप विचार किजीये;...**' जिसे स्वच्छंद मंद हुआ है उसे चार प्रकारकी प्रतिबद्धता है। लोक संबंधी यानी समाज संबंधी, स्वजनकुटुंब संबंधी, देहाभिमानरूप बंधन और संकल्प-विकल्परूप (बंधन)। ऐसे जो प्रकारके प्रतिबंध हैं, इस बंधनको दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय जो कोई है, इसका इसपरसे विचार करें। `**और इसे विचारते हुए जो कुछ योग्य लगे वह हमें पूछिये;...**' लल्लुजीको कहते हैं कि, चार प्रकारके प्रतिबंधको दूर करनेका विचार करें और इसे विचारते हुए कुछ पूछनेकी जरूरत हो, आवश्यकता लगे तो हमें पूछिये।

`**और इस मार्गसे यदि कुछ योग्यता प्राप्त करेंगे तो चाहे जहाँसे भी उपशम मिल जायेगा।**' (उपशम) यानी सम्यग्दर्शन होगा, होगा और होगा। `**उपशम मिले और जिसकी आज्ञाका आराधन करें ऐसे पुरुषकी खोजमें रहिये।**' यहाँ, (अगर कोई) सत्पुरुष नहीं हो तो उनकी खोजमें रहना, ऐसा एक संकेत किया है। क्योंकि किसीको पता तो चला कि, सत्पुरुषोंके चरणोंमें रहना चाहिये; लेकिन सत्पुरुष हो तब तो (चरणमें रहें न) ! (तो) उनकी खोज करनी पड़ती है।

`**बाकी दूसरे सभी साधन बादमें करने योग्य हैं।**' (अर्थात्) एक भी साधन पहले नहीं करें। बाकी सब पीछे रखा है। `**इसके सिवाय दूसरा कोई मोक्षमार्ग विचारने पर प्रतीत नहीं होगा।**

(विकल्पसे) प्रतीत हो तो बताइयेगा ताकि जो कुछ योग्य हो वह बताया जा सकें।' दूसरा कोई मार्ग है नहीं, फिर भी कोई तर्क उठे तो बोल देना। आपको (इसका जवाब) बता देंगे। ऐसा करके लल्लुजी स्वामीको (यह) पत्र लिखा है। (समय समाप्त हुआ है)।

``सत्पुरुषकी वाणी स्पष्टरूपसे लिखी गई (- कही गई) हो तो भी उसका परमार्थ, सत्पुरुषका सत्संग जिसको आज्ञार्कितपने नहीं हुआ हो, उसको समझमें आना दुर्लभ होता है।'' - श्रीमद्‌जी

सत्पुरुषकी वाणीमें `ज्ञानदशा' का विषय स्वानुभवपूर्वक व्यक्त होता है; उसमें जिस परमार्थमार्गमें खुदका निर्गमन हो रहा है उस मार्गके अपूर्वभावोंकी अभिव्यक्ति और उदयभाव एवं उसके सम्बन्धित चेष्टाओंमें रहा पर-अपर भावोंकी विलक्षणता समझनेके लिये योग्यताका होना अपेक्षित है। जिस प्रकारकी योग्यता अपेक्षित है वह प्रायः आज्ञांकितपनेमें संप्राप्त होती है।

अतः मुमुक्षुजीवको उक्त वचनामृतकी गंभीरता और आज्ञांकितपने सत्संगका मूल्यांकन आने पर परमार्थकी प्राप्तिका अवकाश होता है, जो परमहित होनेका बीज है। अतः एक लक्षसे ज्ञानीपुरुषकी विलक्षणता समझमें आती है तब वह समझ उनके प्रति अनन्य भक्ति - प्रेमका कारणभूत होती है।

-पूज्य भाईश्री (अनुभव संजीवनी-५३९)

ॐ

`श्रीमद्‌ राजचंद्र'

पत्रांक - २००

बंबई माघ, सुदी, १९४७

वचनावली

१. जीव स्वयंको भूल गया है, और इसलिये उसे सत्सुखका वियोग है, ऐसा सर्व धर्म सम्मत कथन है।

२. स्वयंको भूल जानेरूप अज्ञानका नाश ज्ञान मिलनेसे होता है, ऐसा निःशंक मानना।

३. ज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानीके पाससे होनी चाहिये। यह स्वाभाविकरूपसे समझमें आता है, फिर भी जीव लोकलज्जा आदि कारणोंसे अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ता, यही अनंतानुबंधी कषायका मूल है।

४. जो ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करता है, उसे ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना चाहिये, ऐसा जिनागम आदि सभी शास्त्र कहते हैं। अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है।

५. जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार, अर्थात्‌ आज्ञानुसार न चला जाये, तब तक अज्ञानकी निवृत्ति होना संभव नहीं है।

६. ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वह कर सकता है कि

जो एकनिष्ठासे, तन, मन और धनकी आसक्तिका त्याग करके उसकी भक्तिमें जुट जाये।

७. यद्यपि ज्ञानी भक्तिकी इच्छा नहीं करते, परन्तु मोक्षाभिलाषीको वह किये बिना उपदेश परिणमित नहीं होता, और मनन तथा निदिध्यासन आदिका हेतु नहीं होता; इसलिये मुमुक्षुको ज्ञानीकी भक्ति अवश्य करनी चाहिये ऐसा सत्पुरुषोंने कहा है।

८. इसमें कही हुई बात सब शास्त्रोंको मान्य है।

९. ऋषभदेवजीने अट्ठानवें पुत्रोंको त्वरासे मोक्ष होनेका यही उपदेश किया था।

१०. परीक्षित राजाको शुकदेवजीने यही उपदेश किया है।

११. अनंत काल तक जीव स्वच्छंदसे चलकर परिश्रम करे तो भी अपने आप ज्ञान प्राप्त नहीं करता; परन्तु ज्ञानीकी आज्ञाका आराधक अन्तर्मुहूर्तमें भी केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है।

१२. शास्त्रमें कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष हैं और वे जीवको अधिकारी होनेके लिये कही हैं; मोक्षप्राप्तिके लिये ज्ञानीकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करना चाहिये।

१३. यह ज्ञानमार्गकी श्रेणि कही, इसे प्राप्त किये बिना दूसरे मार्गसे मोक्ष नहीं है।

१४. इस गुप्त तत्त्वका जो आराधन करता है, वह प्रत्यक्ष अमृतको पाकर अभय होता है।

।। इति शिवम् ।।

प्रवचन - ४

'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-२००

दि. ०८-१०-१९९८ - कलकत्ता

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत (पत्रांक) - २००. वचनावलीमें संतका अद्भुत मार्ग प्रकाशित किया है। चौदह वचन लिखे हैं।

`**जीव स्वयं को भूल गया है,...**' जीव स्वयंको भूल गया है माने अपने मूल स्वरूपको भूला हुआ है कि, मेरा मूल स्वरूप क्या है ? जो भी मेरी वर्तमान अवस्था है और उसके साथ जितने-जितने, जैसे-जैसे संबंध हैं, वैसा मैं अपने आपको अनुभव करता हूँ, वह मेरा मूल स्वरूप नहीं है, क्योंकि कुछ कालके पहले ऐसा नहीं था और कुछ कालके बाद वैसा नहीं रहेगा। यह एक बीचमें Periodical परिस्थिति है, वह (मेरा) मूल स्वरूप नहीं है। परन्तु मूल स्वरूपका अभान होनेसे या उस विषयमें खुद-स्वयं बेभान होनेसे, वर्तमान परिस्थितिको ही अपना कायमी स्वरूप मानकरके ही जीव संसारमें प्रवृत्ति करता है। `**और इसलिये उसे सत्सुखका वियोग है,...**' इसलिये उसे सच्चे सुखका वियोग है। आत्मिक सुखका वियोग है।

संसारके जो सुख हैं वे सत्सुख नहीं हैं, सच्चा सुख नहीं है। क्योंकि उसमें अनेक प्रकारकी आकुलता हैं, बाधा सहित हैं, अपूर्ण है और अल्पकालीन है। वह सच्चा सुख नहीं है। सच्चा सुख शाश्वत होता है। बाधा रहित होता है और उसमें सर्वांश आकुलताका अभाव होता है।

ऐसा सुख क्यों नहीं है ? (क्योंकि) अपना मूल स्वरूप अनंत सुखका धाम है, उसमें अनंत सुखका निधान भरा है, उसको वह भूल गया है। इसलिये जो (संसारका) Artificial सुख है, कैसा है

(वह सुख) ? Artificial है, उसे ही वह सच्चा सुख मानकर इसके पीछे, उसको झुटानेके लिये, प्रवृत्ति करता है। यह बात सर्व धर्म सम्मत (अर्थात्) यह कथन सर्व धर्म सम्मत है। जितने भी आस्तिक्य दर्शन हैं, वे सब इस बातका स्वीकार करते हैं। कोई आस्तिक्य दर्शन संसार सुखको सच्चा सुख नहीं कहते। आध्यात्मिक सुखको ही, आत्मिक सुखको ही, सुख कहते हैं।

`**स्वयंको भूल जानेरूप अज्ञानका नाश ज्ञान मिलनेसे होता है, ऐसा निःशंक मानना।**' ये दूसरा वचन है। ऐसा स्वयंको भूल जाना यही अज्ञानका स्वरूप है। स्वयंके मूल स्वरूपके ज्ञानका अभाव उसको कहते हैं `अज्ञान'। `अ' माने नहीं, ज्ञान नहीं होना। ज्ञानका अभाव होना। अपने स्वरूपका ही ज्ञान नहीं है, उसीको अज्ञान कहते हैं। ऐसे अज्ञानका नाश आत्मज्ञान होनेसे, आत्माका साक्षात्कार होनेसे प्राप्त होता है। ऐसे अज्ञानका नाश होता है, ऐसा निःशंक मानना। क्योंकि वह तो सीधी सादी बात हो गई कि जिस स्वरूपका अज्ञान था, उसका ज्ञान हुआ, तो अज्ञानका नाश हो गया। उसमें कोई शंकाकी गुंजाइश नहीं है। कोई शंकाका अवकाश नहीं है, कोई Scope नहीं है।

अब कहते हैं, ये प्रश्न यहाँ उठ सकता है कि, ऐसा आत्मज्ञान किस प्रकारसे प्राप्त हो ? और अज्ञानका नाश कैसे हो ? और अज्ञानका नाश होवे ऐसे ज्ञानकी प्राप्ति कैसे हो ? उसका उत्तर स्वयंने दिया है। कृपालुदेवकी पद्धति ऐसी है कि, जहाँ जैसा प्रश्न उठे, उसका उत्तर बिना पूछे ही लिख दिया है। उतने वे समर्थ थे। यहाँ ऐसा ही लिखना चाहिये, क्योंकि ऐसा प्रश्न उठनेका यहाँ संभव है।

`**ज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानीके पाससे होनी चाहिये। यह स्वाभाविकरूपसे समझमें आता है, फिर भी जीव लोकलज्जा आदि कारणोंसे अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ता, यही अनंतानुबंधी**

कषायका मूल है।' यह तीसरा वचन है। क्या कहा ? कि ऐसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति, जो आत्मज्ञानी हैं उनके पाससे होनी चाहिये, ये स्वाभाविकरूपसे समझमें आता है। उसमें कोई विशेष बुद्धिमानीकी जरूर नहीं है। जैसे हमें शरीरमें कहीं भी दर्द होता है, हम नहीं जानते कि ये दर्दका रोग क्या है ? क्यों हुआ है ? और कैसे मिटेगा ? वह कुछ हम जानते नहीं है और जो गँवार है, उसको बहुत कम बुद्धि है, वह भी दर्द होनेसे Doctor के पास जायेगा, वैद्यके पास जायेगा, क्योंकि उसी विषयमें - Medical science में वे इस विषयके Expert होते हैं, तजज्ञ होते हैं। जिस विषयके जो तजज्ञ हैं उसीके पास जाना चाहिये, वह बात तो गँवारको भी समझमें आती है। हम तो विशेष बुद्धिमान जीव हैं। ऐसे गँवार नहीं हैं और कोई (हमें) गँवार कहे तो हम उस बातका स्वीकार करनेके लिये तैयार भी नहीं है। अपने कारोबारमें बुद्धि लड़ाते हैं। लड़ाते हैं कि नहीं लड़ाते ? यह तो स्वाभाविक समझमें आये ऐसी बात है। फिर भी हम आत्मज्ञानीके पास नहीं जाते हैं और लोक-लज्जा आदि कारणोंसे अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ते हैं। लोग क्या कहेंगे ? आप इधर जाते हैं ? हमारे संप्रदायमें महाराज हैं, त्यागी हैं, शास्त्र भी पढ़ते हैं, शास्त्रके ज्ञानी भी हैं; लेकिन आत्मज्ञानी हैं कि नहीं ? उसका पता नहीं है।

मनुष्य किसी-न-किसी संप्रदायमें जन्म लेता है। चारगतिमें सांप्रदायिक व्यवस्था एक मनुष्यगतिमें ही है। पशु-पक्षी-तिर्यंचगतिमें नहीं है। देवलोकमें भी कोई संप्रदाय नहीं (है)। नरकलोकमें भी कोई संप्रदाय नहीं है। मनुष्य है वह किसी-न-किसी धार्मिक संप्रदायके कुलमें जन्म लेता है। जिस संप्रदायमें वह जन्म लेता है, उसी अनुसार उसका पूर्वकर्म (होता है)। यानी पूर्वके भाव थे। पूर्वकर्म हुए - बंधे- मतलब पूर्वके भाव थे। उस अभिप्रायमें उसको वह गति, वह कुल मिला है। जैनिओंको जैन कुल मिला। इसका कारण उसने कहीं-न-कहीं ओघसंज्ञासे भी जैन धर्मकी अनुमोदना की है। (इसलिये) जैन कुल

मिला है। और अन्यमतिओंने जिस-जिस संप्रदायमें उसने जन्म लिया ऐसी बुद्धि उसकी पहले हुई थी। उसका वैसा अभिप्राय था। उस प्रकारकी बात उन्होंने सम्मत की थी। ऐसी बात थी। उसका उसी संप्रदायमें प्रारब्धका योग हुआ और वहाँ जन्म लिया। इस तरहसे कर्मानुसारिणी मति और गतिका संबंध है।

अब जो भी संप्रदायमें जीव जन्म लेता है, वह इस बातको छोड़कर अपने संप्रदायको छोड़कर या संप्रदायकी रूढ़ि-रिवाज, मान्यता, श्रद्धा छोड़कर और जगह जानेमें, उसे दिक्कत होती है, कठिनाई पड़ती है। क्योंकि इनके संप्रदायवाले उसे रोकते हैं कि, तुम ऐसा क्यों करते हो ? हमारे संप्रदायमें भी त्यागी लोग हैं, ज्ञानी हैं, सब कुछ है। हमारे संप्रदायमें कौनसी कमी है ? कि तुम इसको छोड़कर और जगह जाते हो ? और संप्रदायमें जो लोग हैं उसमें सगे-संबंधी वगैरह होते हैं। वह संबंध कहीं टूट नहीं जाये (ऐसा भय रहता है)। हमारे संबंधमें कोई व्यावहारिक संबंध (होता) है, कोई व्यापारिक संबंध होता है। समाजके साथ कुछ-न-कुछ संबंध तो होता ही है। क्योंकि जान-पहिचानमें ये सब बनता है। उसमें कोई दरार नहीं पड़े, उसमें कोई भेद-भाव नहीं हो जाये, क्लेश नहीं हो जाये, हमारे संबंध बिगड़े नहीं। कई प्रकारकी हिम्मत हारनेकी परिस्थिति माने भय उत्पन्न होता है। दूसरा यह है कि हमारा जो समाज-संप्रदाय है उसमें हमारी इज्जत है। दूसरे लोग तो हमें जानते भी नहीं। जो जान - पहचानवाले हैं वही जानते हैं। हमारी इज्जत, आबरू, कीर्ति तो इसमें है। उसका क्या ? हमारी कीमत चली जायेगी, हमारी इज्जत चली जायेगी। इस डरसे भी लोक-लज्जा होती है कि उन लोगोंकी शरम रखनी चाहिये। (कुछ) बोले तो उसकी (बात) माननी चाहिये। ऐसा करके जीव, (सांप्रदायिक व्यक्ति) आत्मज्ञानी नहीं होते हुए, ऐसे अज्ञानी जनोंके संगको नहीं छोड़ता, संगतिको नहीं छोड़ता है।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि, ज्ञानीका भी संग करे और

अज्ञानीका भी करे। ज्ञानीका भी सुने और संप्रदायमें जो ज्ञानी नहीं है उसको भी सुनने चले जाये। क्यों ? (क्योंकि) लोकलज्जा आड़े आती है। लोक किच-किच, किच-किच करके माथा खराब कर दे (तो) चलो न ! चले जाओ न ! अपना क्या जाता है ? इस तरहसे भी लोग जाते हैं।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! वहाँ क्या स्वच्छंद करते हैं कि हमको पता है कि हमको क्या ग्रहण करनेका है !

पूज्य भाईश्री :- हाँ ! ठीक है। (ऐसा कहेगा) कि हमको ग्रहण करने लायक नहीं है, वह नहीं करेंगे और (ग्रहण) करने लायक होगा वह करेंगे। लेकिन ऐसा क्यों करता है ? नहीं ग्रहण करने लायकको नहीं ग्रहण करनेका परिश्रम उठाना पड़े ऐसा क्यों करना ? ये लोक-लज्जा आदि कारणोंसे अज्ञानीका आश्रय जीव नहीं छोड़ता। और ये सामान्य अपराध नहीं। क्या लिखा है कृपालुदेवने ? यही अनंतानुबंधी कषायका मूल है। जो अनंतानुबंधी कषाय, जीवको चारगतिमें परिभ्रमणका कारण है। इसका मूल क्या है ? कि ज्ञानीका आश्रय नहीं करना, अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ना। ये जो परिस्थिति रही है (उसमें) अनंतानुबंधी कषाय पनपेगा। मूल है न ? मूलसे तो पनपता है वृक्ष और वही चारगतिमें परिभ्रमण करायेगा।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! हम जिनमतमें आये, पूर्वमें कुछ अनुमोदनाके कारणसे जिनमतमें आ गये और जिनमतके देव-शास्त्र-गुरुको हम मानते हैं, फिर मेरा क्या दोष रह गया ?

पूज्य भाईश्री :- लेकिन दूसरेको भी मानते हो। (कोई तो) कुदेवको भी मानने लग जाते (हैं)।

मुमुक्षु :- कुदेवको नहीं माने। सिर्फ जिनेन्द्रदेवको ही माने तो क्या दोष रह गया ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, फिर आप अज्ञानीका आश्रय करते हैं कि नहीं करते ? देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि अज्ञानीका आश्रय

करो ?

मुमुक्षु :- इसका मतलब परीक्षा करना जरूरी है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, देव-गुरु-शास्त्र तो कहते हैं कि, ज्ञानीका आश्रय करो, ज्ञानीका संग करो। हमको उनकी आज्ञामें चलना है। फिर भी हम लोक-लज्जावश (अज्ञानीका आश्रय) नहीं छोड़ सकते तो हमारा चारगतिका जो परिभ्रमण है, जिसमें अनंत जन्मका दुःख, अनंत मरणका दुःख, अनंत प्रकारके रोगका, शरीरकी पीड़ाका, रोगके सिवा Accident से भी पीड़ा होती है, और अनेक प्रकारके Tension के दुःख, तनावके दुःख होते रहते हैं। यह भयंकर परिभ्रमण है। (इस) परिभ्रमणकी भयंकरता जब तक भासित नहीं होती है, लगती नहीं है, दिखनेमें नहीं आती, तब तक जीव इसे छोड़नेका दृढ़ निर्धार नहीं कर सकता। अगर वह दुःख स्पष्ट रूपसे समझमें आये तो किसी भी कीमत पर उसे छोड़नेका विचार आये बिना नहीं रहेगा कि, हमको ऐसा दुःख किसी भी कीमत पर नहीं चाहिये। At any cost हमको यह मिटाना है। ऐसा निर्धार किये बिना वह नहीं रहेगा। क्यों ? (क्योंकि) यह अनंत जन्म-मरणका Problem है, यह सबसे बड़ा Problem है। इससे बड़ी समस्या विश्वमें कहीं है ही नहीं। इसलिये जो विचारशील है, बुद्धिमान है, वह तो छोटे-मोटे Problem को छोड़कर सबसे बड़े Problem को ही मिटायेगा। छोटी-मोटी बातमें रुकना और बड़े नुकसानको आने देना, होने देना, इसमें कोई बुद्धिमानी नहीं है।

गुरुदेव एक रूईके व्यापारीका दृष्टांत देते थे। एक रूईका व्यापारी था। गाँवमेंसे किसान लोगोंसे रूई खरीदकर वे Mill में - Jin में बेचते थे। उनका ध्यान कहाँ रहता था ? कि इसका जो बारदाना होता है वहाँ थोड़ी रूई चिपक जाती है, और बारदाना मुफ़्तमें देना पड़ता है। (सिर्फ) जितना Weight होता है (उतनी) रूईका ही पैसा मिलता है। अगर १००, २०० ग्राम उसमें छोटी-मोटी रूई चिपक

है, अपने जिसको पूमडां (फाहा) कहते हैं। तो उसके बारदानाका Weight भी बढ़ जाता है। जो १ किलोका है वह १.२५ किलोका हो जाता है, तो उतना पैसा भी कम मिलता है और उतनी रूई भी मुफ्तमें जाती है और पैसा भी कट जाता है। Double नुकसान होता है। उसका ध्यान वहाँ रहता (था)। वह हमेशा क्या करता ? कि (बारदाना) खाली होता है तो उसको इकट्ठा करनेमें लग जाता है। (उसमें) उतना ध्यान रहता है कि, उसका रूईके भावमें चढ़ाव-उतार रहता है, उस पर ध्यान नहीं जाता ! व्यापारीका ध्यान तो बाजारमें होना चाहिये कि, भाव कैसे बढ़ता है ? कैसे घटता है ? और अच्छेसे - अच्छे भावमें बेचे। क्योंकि बड़ा नफा-नुकसान तो वहाँ है। २००ग्राम रूईमें क्या रखा है ? कितना नुकसान आयेगा ? लेकिन वहाँ पूमडां (फाहा) इकट्ठा करनेमें लग जाये और भावका बड़ा नुकसान सहन करता है, तो दूसरे व्यापारी क्या कहेंगे ? कि मूर्ख है, मूर्ख ! ध्यान कहाँ देना चाहिये वह उसको भान नहीं है, तो दिवाला निकालेगा। क्या होगा ? दिवाला निकालेगा। ऐसे जीव परिभ्रमणकी समस्याको नहीं समझे और संसारकी छोटी-मोटी अनुकूलतामें ही अपना समय और शक्तिका खर्च कर दे, तो वह सबसे बड़ी मूर्खता होगी और इस कारणसे उसे चारगतिके दुःख भोगने पड़ेंगे। यह तो कुदरतकी व्यवस्था है।

(इस) परिभ्रमणका मूल क्या है ? अनंतानुबंधी कषाय और इसका बीज कहाँ रहा है ? कि आत्मज्ञानीकी खोज नहीं करके, संप्रदायके अज्ञानी गुरुओंके आश्रयमें रह जाना। देखो ! कितनी स्पष्ट बात की है ! वहाँ (संप्रदायमें) भी कुछ है। वे लोग त्यागी तो हैं, तप तो करते हैं, उपवास करते हैं, व्रत करते हैं, पंचमहाव्रतकी प्रतिज्ञा ली है। उसकी भी कोई कीमत तो होनी ही चाहिये। उसकी बुद्धि कर्मानुसारीणि है, जिस कर्मका अनुसरण करके जो संप्रदायमें आया है वहीं ओघसंज्ञासे लग जायेगा। स्वतंत्ररूपसे विचार नहीं करेगा कि

क्या योग्य है ? क्या अयोग्य है ? (उसका) विचार नहीं करता। बाकी आत्मज्ञानकी बात सभी आस्तिक्य दर्शन (करते) हैं। छः दर्शनमें आत्मज्ञानकी, आत्मसुखकी थोड़ी-बहुत चर्चा चली ही है, क्योंकि वे सब तो जैनमेंसे ही निकले हैं। (इसलिये बात तो) चली है। बात तो प्रसिद्ध है। पर सामान्य बुद्धिसे ये बात समझमें आनी चाहिये कि, आत्मज्ञानी से ही आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो सकेगी, और जगहसे नहीं हो पायेगी।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! ये सब सुनकर भी जीवको दूसरी जगहका आकर्षण क्यों नहीं मिटता ?

पूज्य भाईश्री :- ओघसंज्ञाके कारणसे और लोक-लज्जा आदि कारणसे (आकर्षण नहीं छूटता)। लोक-लज्जामें कुटुंब प्रतिबंध भी आता है। लोकसंज्ञा तो आती ही है, लोक प्रतिबंध - समाज प्रतिबंध तो होता ही है, (साथ-साथ) कुटुंब प्रतिबंध भी आयेगा। कुटुंबमें भी दूसरे लोग ऐसा कहेंगे कि, आप अपने संप्रदायको छोड़कर इधर-उधर क्यों जाते हो ? वहाँ भी तो सबकुछ है, और हमारे यहाँ कौनसी कमी है ? वह बात शुरू-शुरूमें वह समझा नहीं सकता, जो चर्चा (होती) है उसमें Argument नहीं दे सकता। क्योंकि इस विषयकी पूरी समझ नहीं है। तब ऐसे ही अमूल्य मनुष्यभव, कि जिस मनुष्यभवमें परिभ्रमणका नाशका कारण हम प्राप्त कर सकते हैं, (ऐसा) अमूल्य मनुष्यभव खो देनेका प्रसंग आता है। ये बात बन जाती है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! इसमें आपने जो अज्ञानीके आश्रयकी बात कही (उसमें) अज्ञानीका संग वह वस्तु अलग है और अज्ञानीका आश्रय ये वस्तु अलग है न ? उसका संग कदाचित् कभी हो सकता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, संग (में) तो प्रारब्धवशात् संयोग हो जायेगा। लेकिन उस संयोग होनेमें उनकी बातको मानना, उनको धार्मिक गुरुके रूपमें स्वीकार करना, वह इसका आश्रयभाव है। उनकी बात मानना, गुरु समझकर बात मानना, वह आश्रयभाव है और (उस) आश्रयभावसे

चारगतिका संसार होनेवाला है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- जबतक ज्ञानीका संयोग नहीं होगा, तबतक अज्ञानीके संयोगमें (आयेगा), अगर उसकी आत्मकल्याण करनेकी भावना है, तो आश्रयमें नहीं आयेगा न वह ?

पूज्य भाईश्री :- विवेक करेगा तो (आश्रयमें) नहीं आयेगा। यहाँ विवेककी जरूरत है कि, उसके पास आत्मज्ञान नहीं है तो ठीक है, संजोगवशात् मिलना हुआ। लेकिन हमको इसकी बातमें श्रद्धा - विश्वास नहीं है। ऐसा विवेक हो जाये तो कोई आपत्ति नहीं है। संयोग होनेसे डरना नहीं है। लेकिन विवेकको मुख्य करना है, वह बात है। तो जीव उसके आश्रयमें या आज्ञामें नहीं रहेगा और आगे जाकर संप्रदायको छोड़ देगा। आगे जाकर कहलानेवाला अपना संप्रदाय उसे छोड़ देगा। क्योंकि वह अपना सही संप्रदाय नहीं है। वह तो कहलानेवाला है। क्योंकि आज इधर जन्म लिया तो कल उधर जन्म लेगा। संप्रदाय तो बदलता रहेगा। ये जीव कभी मुसलमान भी हुआ है, कभी Christian भी हुआ है, कभी जैन हुआ है, कभी वैष्णव हुआ है। कोई संप्रदाय बाकी नहीं रहा। अज्ञानके अनंत प्रकार हैं। सभी प्रकारका भाव कर चुका है, और सभी प्रकारका फल भी भोग चुका है। ये सब हो चुका है। अब तो विवेक - परम विवेक करनेकी बात रही और विवेकसे ज्ञानीके आश्रयमें जाता है तो उसका परिभ्रमण छूट जाता है। क्योंकि एक आत्मज्ञान ही संसारके सर्व दुःख, सर्व क्लेश और सभी प्रकारके अज्ञानके नाशका कारण है।

इसलिये ऐसा आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये आत्मज्ञानीके पास ही जाना चाहिये और हम (संसारमें) ऐसा ही करते हैं। Heart-pain होता है तो हम Orthopedic surgeon के पास नहीं जाते। और हड्डी टूट जाती है तो हम Cardiologist के पास नहीं जाते। यह तो स्वाभाविक समझमें आये ऐसी बात है। इसमें नहीं समझने जैसी कौनसी बात है ? नहीं समझमें आवे, ऐसी कौनसी बात है ? इसमें वैसी तो

कोई बात दिखती नहीं है। अल्प बुद्धिमान गँवार होते हैं उनको भी ऐसा तो समझमें आता है। (और) हम तो रहे बुद्धिशाली।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! ज्ञानी है या नहीं इस बातका निश्चय करना जरूरी है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, जरूरी है, अवश्य जरूरी है। निश्चय करना (इतना ही नहीं), परीक्षा करके निश्चय करना। ऐसी बात है। ऐसे नहीं मानना। कोई कहे इसका नहीं मानना। क्योंकि किसीके ज्ञानसे हमको काम नहीं करना है, अपने ज्ञानसे काम करना है। वह ज्ञानीको अज्ञानी कहेगा, अज्ञानीको ज्ञानी कहेगा। कोई कुछ भी कहे, हमें तो हमारे ज्ञानसे सब निश्चय करना है और वही हमको काममें आनेवाला है। दूसरेका ज्ञान हमको काममें आनेवाला नहीं है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! परीक्षा करनेकी जो योग्यता है, वह जबतक परिभ्रमणकी वेदना नहीं आयेगी, उसके पहले ऐसी योग्यता प्राप्त नहीं होगी ?

पूज्य भाईश्री :- सबसे पहले तो वह बात है कि, परिभ्रमण से छूटना है कि नहीं छूटना है ? यह तो Scientific process है। परिभ्रमणसे छुड़ानेकी बात जो कहेगा, (उसकी) बात समझमें आ ही जायेगी। जिसे छूटना है उनको वह बात समझमें आ ही जायेगी। बाकी तो सब लोग कहेंगे कि इसका त्याग करो, उसका त्याग करो, ये छोड़ दो, वह छोड़ दो और ऐसे पूजा करो, भक्ति करो, दान करो, ये करो, वह करो, यात्रा करो, तप करो, तो आपको पुण्यबंध मिलेगा और पुण्यबंधमें आपको संसारके अच्छे-अच्छे सुख मिलेंगे। (लेकिन) ऐसे सुखके पीछे कितने बड़े दुःखकी खानी है। वह बात तो कहनेवाले भी जानते नहीं तो सुननेवाले तो जानेंगे भी कहाँसे ? मानो कि देवलोकका देव हो गया, फिर एकेन्द्रियमें जायेगा, वह बात तो वे लोग जानते नहीं। ज्ञानी कहेंगे कि, ऐसे पुण्यका कोई मूल्य आत्मकल्याणके मार्गमें है ही नहीं। वह बात कौन कहेगा

? ज्ञानी कहेंगे। अज्ञानी पुण्यको उपार्जन करानेकी बात करेगा, ज्ञानी संसारका परिभ्रमण नाश करानेकी बात करेंगे। बस ! (इस) बातसे समझमें आ जायेगा (कि), कौन क्या बात करता है ? वह बात समझमें आयेगी। जिसकी दुकानमें जो माल है वही बेचेगा न ? सब्जी - तरकारीवाले Vegetable market में हीरेका हार कहाँसे मिलेगा ? उसकी दुकानमें (वह) है ही नहीं। जौहरीकी दुकानमें ये होता है। वह Vegetable market में मिलनेवाली चीज नहीं है। वहाँ तो सब्जी-तरकारी ही मिलेगी।

मुमुक्षु :- जिसकी पात्रता होगी और रुपया लेकर जायेगा उसको ही मिलेगा।

पूज्य भाईश्री :- जिसको हीरेका हार खरीदना है उसको इतने पैसे लेकर जाना होगा और सब्जी-तरकारी तो २५-५० रुपयेमें भी मिल जायेगी। कोई हीरेका हार २५-५० रुपयेमें नहीं मिलता। इसलिये इसके लिये योग्यता चाहिये और योग्यता जरूरत महसूस होनेसे प्राप्त होती है। योग्यता बिना ज्ञान प्राप्ति नहीं। सिद्धांत वह है कि,योग्यता बिना ज्ञान प्राप्ति नहीं होती और योग्यता आवश्यकता बिना प्राप्त नहीं होती। आवश्यकता होनी चाहिये। वरना मनुष्य है इसलिये किसी-न-किसी प्रकारसे धर्म तो करेगा। लेकिन अज्ञानीका आश्रय छोड़ेगा नहीं। और वही अनंतानुबंधी कषाय, जो परिभ्रमणका कारण है, इसका मूल तो वही है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! और उसमें भी ज्ञानीकी प्रत्यक्षता मौजूद है तब तक काम कर लिया तो कर लिया। नहीं तो वही Group बादमें संप्रदायमें बदल जाता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उस ज्ञानीके नामसे संप्रदाय बन जायेगा। ये बात बननेवाली है। हम कानजस्वामीवाले, हम श्रीमद् राजचंद्रवाले, ये `वाले...वाले...' हो जायेगा। वे लोग कहे `हम स्थाकवासीवाले' `हम मूर्तिपूजकवाले, हम दिगंबरवाले' वह सब `वाले-वाले' हो जायेगा। ज्ञानी कहते हैं, मैं मतमें नहीं, गच्छमें नहीं, वाडामें नहीं, मैं संप्रदायमें नहीं

हूँ - मैं आत्मामें हूँ। मेरा मार्ग तो, मेरा मार्ग माने जिनमार्ग तो सिर्फ आत्मकल्याण करनेका है। उसमें कोई संप्रदायका बंधन नहीं होता।

भगवान महावीरस्वामीने वह बात सिद्ध कर दी कि, देखो ! मैं संप्रदायमें नहीं मानता। मैं तो वेदांतिओंके गुरु, जो इन्द्रभूति थे, उनको गौतमस्वामी बनाकर उनको गणधर बनाया। जैनियोंकी Line लगी हुई थी। समवसरणमें लाखों जैनी बैठे हुए थे। महावीरस्वामीके संप्रदायमें साधु भी इतने थे, साध्वीयाँ थी, श्रावक थे, (लेकिन) किसीको गणधरपद नहीं दिया। वह Seniority के हिसाबसे नहीं मिलता। यह तो Merits के हिसाबसे मिलता है। उसमें Merits काममें आता है। भगवानके ज्ञानमें दिखा कि, वे सबसे बड़े पात्र हैं और वे आयेंगे तो काम होगा, (यानी) हमारा उपदेश चलेगा। वे नहीं आयेंगे तो हमारा उपदेश नहीं चलेगा।

६६ दिन तक भगवानकी वाणी खूली ही नहीं ! फिर इन्द्रको विकल्प आया। अवधिज्ञानमें देखा कि, है क्या बात ? ऐसा कभी बनता नहीं कि तीर्थंकर समवसरणमें बैठे और उनकी वाणी चले ही नहीं ! एक दिनमें चार बार चलती है। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, ऐसे ऐसे ६५-६६ दिन चले गये ! फिर उनको विकल्प उठा कि, इसमें बात कोई गंभीर है। (उन्होंने) देख लिया कि समवसरणमें; भगवानकी वाणीकी जो कोटी है, कक्षा है, उसे झेलनेके लायक इधर कोई है ही नहीं। कोई इतनी पात्रतावाले नहीं दिखे (कि) जिसको गणधरपद मिले। फिर उन्होंने उपयोग लंबाया (और) देखा (कि) अरे ! वह आदमी तो हजारों शिष्यका गुरु बनके बैठा है।' इधर आयेंगे कैसे ? अज्ञानदशामें जो गुरुपदको प्राप्त होता है वह मानके घोड़ेसे उतरता नहीं है। सब उनको गुरु मानकर मान-सन्मान (देते) हैं। (उन्होंने) युक्ति बनायी (और उनके पास जाकर कहा) `महाराज ! आप तो बड़े ज्ञानी हैं, लेकिन मेरा एक प्रश्न है, कृपया इसका समाधान कर दीजिये।' वह प्रश्न ऐसा रखा (कि) वे समाधान नहीं कर पाये। वे बोले कि, हम तुम्हारे जैसे मामूली आदमीसे बात नहीं करते। आजकलके Doctor वही करते हैं। (कुछ) पूछते हैं (तो कह देते हैं) तुम्हारी समझमें नहीं आयेगा। हम जो लिखते हैं, हम जो करते हैं, वह बराबर करते हैं। तुम दखल मत करो। कोई Explaination नहीं देंगे। क्योंकि उसमें उसका अधूरा ज्ञान है उसकी पोल खूल जाती है। वे कोई (समाधान) देंगे नहीं। वैसे उनका ज्ञान अधूरा था (इसलिये कह दिया) `हम तेरेसे बात नहीं करेंगे, तुम्हारे गुरु कौन हैं ? उनको बुलाओ ! उनसे चर्चा करेंगे' (इन्द्र) बोले (कि), `महाराज ! हमारे गुरु तो यहाँ नहीं आ सकते। आप पधारो तो हम बातचीतका प्रसंग बिठा देंगे।' उनको शंका तो हो गई थी कि, इनके गुरु कोई समर्थ होंगे। जाना तो चाहिये। पात्रता थी न ! (इसलिये) उनके भाव (भी) ऐसे ही चले। (इन्द्रभूतिको ले) आये समवसरणमें। बस ! बात खतम हो गई। तीर्थंकरदेवका अतिशय होता है - प्रभाव होता है। उसकी भीतरकी सारी दुनिया पलट गई। सब परिणाम पलटने लगे। (पात्रता होती है तो) ऐसा होता है।

यह एक बहुत महत्वपूर्ण बात की है कि, जीव मनुष्य है, वह इस प्रकारकी भूल प्रायः करता है। अपने संप्रदायसे निकल नहीं सकता और संसारके परिभ्रमणसे छूट भी नहीं सकता।

चौथा (बोल) `**जो ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करता है, उसे ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना चाहिये, ऐसा जिनागम आदि सभी शास्त्र कहते हैं। अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है।**' यह चौथा वचनामृत है। क्या कहते हैं ? कि `**जो ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करता है,...**' (अर्थात्) आत्मज्ञानकी प्राप्ति जिसको करनी है, उसकी आवश्यकता महसूस हुई है। उसको ज्ञानीकी इच्छा, माने ज्ञानीकी आज्ञा, उसीके अनुसार चलना चाहिये। ऐसी बात सभी शास्त्रोंने कही है। आज्ञाकारिताके

बिना उनके उपदेशकी असर नहीं पहुँचती। आज्ञाकारितामें आना चाहिये। यहाँ इच्छाका अर्थ होता है `आज्ञा'। उनकी जो आज्ञा है, वैसे ही हमको चलना चाहिये। चलना चाहिये माने अनुसरण करना चाहिये, अमलीकरण करना चाहिये। वे कहे कि, ऐसा करो, तो वैसा (करना)। उसकी एक हद है कि, दिनको १२ बजे, गरमीके दिनोंमें वे कहे कि, यह तो अमावस्याकी रात है। और ये सूर्य नहीं है तुमको दिखता है वह चंद्र भी नहीं, यह तो अमावस्याकी अंधेरी रात है; क्योंकि अमावस्याकी रातमें सूर्य-चंद्र (कोई) भी आकाश में नहीं होते। (इस हद तक) स्वीकार करनेकी तैयारी होनी चाहिये। थोड़ी ऐसी बात है। परीक्षा करके नक्की करना। नक्की करनेके बाद विकल्प मत उठाना। उनकी आज्ञाके सामने विकल्प मत उठाना, वह बात है। सम्मत करनेके पहले पूरी परीक्षा करना। फिर पक्का हो गया कि, (इन्हें) आत्मज्ञान है और परिभ्रमणसे छूटनेकी परिस्थिति यहाँ ही है, तो फिर इनकी जो भी आज्ञा है वह शिरोधार्य करनी है। क्योंकि इसमें भी कोई रहस्य होता है। जो बात सामान्यबुद्धिमें नहीं बैठती, वैसी बात कोई विशेष बुद्धिमान करता है, तो इसके पीछे कोई-न-कोई रहस्य होता है। इतना मूल्यांकन शुरूसे ही होना चाहिये। ऐसी अगर समझ नहीं होगी तो कभी-न-कभी शंका पड़े बिना रहेगी नहीं और शंका होगी तो भक्ति चली जायेगी। आज्ञाकारिता चली जायेगी।

`अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है।' धर्म-साधन वे कहे, वैसा करना है। इनकी आज्ञाका मतलब क्या है ? कि धर्म-साधन करनेका विषय इनके पास है और तो कोई बात है नहीं। संसारकी लेन-देनकी तो कोई बात उसमें है नहीं। जो बात है वह तो (इतनी ही है कि) धर्म-साधन कैसे किया जाये ? वे कहे वैसा करना। अपनी इच्छा अनुसार नहीं करना है। अपनी इच्छा अनुसार करते हुए तो परिभ्रमण चालू रहा है और उसीको ही ज्ञानियोंने स्वच्छंद बोला है। स्वच्छंदसे (कुछ) नहीं करना। स्वच्छंद माने अपनी मनमानी करना, अपनी इच्छा अनुसार धर्म-साधन करना। यह स्वच्छंद परिभ्रमणका कारण है।

परिभ्रमणके दो कारण बतायें। एक स्वच्छंद और एक प्रतिबंध। समाज-प्रतिबंध, कुटुंब-प्रतिबंध, शरीर-प्रतिबंध और संकल्प-विकल्प प्रतिबंध। ये सब परिभ्रमणके कारण हैं और स्वच्छंद तो सबसे बड़ा दोष है। स्वच्छंदमें कई बड़े-बड़े दोषका गर्भ पड़ा है। सब बड़े-बड़े दोष स्वच्छंदके कारणसे जन्म लेंगे। स्वच्छंदसे तो दूर रहना है। अपनी मति अनुसार धर्म-साधन करना, उसमें स्वच्छंद जैसा बड़ा दोष है, ये कम लोग जानते हैं। वैसे ही समझते हैं कि, अपन पाप थोड़ी करते हैं ? धर्म-साधन करते हैं ने ? व्रत करते हैं, त्याग करते हैं, तप करते हैं, दया-दान करते हैं, पूजा - भक्ति करते हैं। उसमें क्या बुरा है ? उसमें स्वच्छंद दिखाई नहीं देता कि, इतना महान दोष है। परिभ्रमणके कारणमें वह सबसे बड़ा दोष है। ज्ञानियोंने इसकी मना की है।

वैद्य लोग हैं (वे) ऐसा जानते हैं (और कहते हैं) कि, तुम इस प्रकारकी मिठाई खानेके बाद पानी मत पीना। हमारे एक Cousin brother है, उसको Typhoid हुआ था। पहलेके जमानेमें Allopathy का इतना (चलन) छोटे गाँवमें तो होता नहीं। हमारे यहाँ एक वैद्य आते थे। ८० सालके बूढ़े थे। बहुत जानकार आदमी (थे)। नाड़ीवैद्य थे। ८० सालकी उम्रमें पूरे दाँतसे वे गन्ना खाते थे। बराबर चबाते थे। हमारे यहाँ आते थे (तो) हमारा खाना नहीं खाते थे। अपने हाथसे रसोई पकाकर खाते थे। (मेरे भाईको) बुखार उतरता नहीं था। Continue बुखार जिसको ज्यादा रहता है तो उसको Typhoid बोलते हैं। (गुजरातीमें) `मुदतीया ताव' बोलते हैं। (काफी) मुदतसे उतरता है। उसको पूछा `देखो ! वैद्यजी क्या है ?' उसने नाड़ देखकर बोला कि, १५ दिन पहले इस लड़केने सुखडी (मिठाई) खायी है।

उस पर पानी पीया है और फिर वह बहुत दौड़ा है। (बहुत) दौड़ लगाई है। वह सुखडी इसके आँतमें चोंट (चिपक) गई है। पकी नहीं। पककर, मल होकर निकल जानी चाहिये। वह पका नहीं है। वह मल पका नहीं है तो गरमीसे ही पकेगा। इसके लिये बुखार आना जरूरी है। बुखारके बिना वह पकेगी नहीं। अगर उसका बुखार उतारेंगे तो बात तो खराब होगी। इसलिये उसको २१ दिन तक ये बुखार रहनेवाला है। २१ दिनके बाद अपने आप वह बुखार चले जायेगा उसका मल निकल जायेगा और वह चलने लगेगा। उसको खाने-पीनेका नहीं देना है। मूँगका पानी वगैरह जो भी बताया वह देना है। सुननेवालोंने सोचा कि हाँ, बात तो ठीक है। १५ दिन पहले अपने यहाँ सुखडी बनी है और घरमें सुखडी बनती है तो बच्चेलोग तो खायेंगे ही खायेंगे। जब मिठाई बनाते हैं तो बच्चेलोग तो खायेंगे ही खायेंगे। और खायी है वह बात भी जरूर है और बच्चेलोग तो दोड़ते-फिरते हैं तो वह बात भी बिलकुल संभवित है। ऐसे नाड़ीके धबकारेसे पेटमें क्या चीज पड़ी है वह बताते हैं।

Point क्या है ? नाड़ीके धबकारेसे पेटमें क्या चीज पड़ी है वह दिखा सकते हैं, ऐसे तजज्ञ हैं। वैसे ये ज्ञानी जो हैं, वे (यह) सामान्य धार्मिक प्रवृत्ति है, संप्रदाय अनुसार लोग करते हैं, सामायिक, प्रतिक्रमण जिसके जहाँ जो चलता है वह, उसमें क्या खराबी है? और परिभ्रमणका कैसा रोग होता है ? वह ज्ञानी बताते हैं। सामान्य बुद्धिसे उसमें कोई दोष नजर नहीं आता कि, यह परिभ्रमणका कारण हो सकता है, लेकिन वह ज्ञानी बताते हैं कि देखो ! तुम अपनी मति-कल्पनासे धर्म-साधन करते हो, ये तुम्हारा स्वच्छंद है और वही परिभ्रमण करायेगा। तुमको इसमें कोई दोष नहीं दिखता है। लेकिन संसारमें स्वच्छंद जितना कोई बड़ा दोष है ही नहीं। ऐसा हो जाता है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! सांसारीक कार्योंमें स्वच्छंद कैसे होता है? धर्म-साधन छोड़कर सांसारिक कार्योंमें किस तरह स्वच्छंद होता है?

पूज्य भाईश्री :- उसमें तीव्र विषय-कषायके परिणाम करने, ये स्वच्छंद है। हिचकिचाहटके बिना, तीव्र रससे परिणाम होवे, वह स्वच्छंद है। और धार्मिक क्षेत्रमें ज्ञानीकी आज्ञा अनुसार (धर्मसाधन) नहीं करके, संप्रदायबुद्धिसे अपनी मनमानी करना, वह स्वच्छंद है। दोनों स्वच्छंद परिभ्रमणके कारण हैं।

यह स्वच्छंदका प्रकरण बहुत बड़ा है और इस विषयमें `प्रयोजन सिद्धि'में थोड़ी-बहुत बातें ली हैं। दर्शनमोहका और अनंतानुबंधी कषायका भी मुख्य तौरसे वह (स्वच्छंद) बंधन कराता है। इसलिये इस विषयमें पूरी छान-बीन करके स्वच्छंदको छोड़ना चाहिये और पूरी छान-बीन करनेका मौका नहीं मिले तो ज्ञानीकी आज्ञामें चलना है, वह संक्षेपमें आ जाये, तो वह जीव Safe-guard हो जाता है। यह इसका Short-cut है। दर्शनमोह कम करनेका, पात्रता पानेका यह Short-cut है। इसलिये सभी ज्ञानियोंने अपनी मुमुक्षु भूमिकामें यही रास्ता ग्रहण किया है। सभीने यह रास्ता ग्रहण किया है। इसका यही कारण है।

ऐसे ये ४ वचनामृत हुए हैं। आगेके वचनामृत कलके स्वाध्यायमें लेंगे। समय हुआ है।

भक्ति प्रेमरूप होने पर श्रीगुरुमें सर्वभाव समर्पित होकर, जीव पूर्ण आज्ञाकारितामें आता है, जिससे सहज आत्महित सधता है, आत्महितमें अवरोधक भाव प्रायः उत्पन्न ही नहीं होते।

-पूज्य भाईश्री (अनुभव **संजीवनी-१५२६**)

प्रवचन - ५
'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-२००
दि. ०९-१०-१९९८ - कलकत्ता

(श्रीमद् राजचंद्र) - आंक २०० - वचनावली। चार वचन हो गये हैं। चौथे वचनमें वह बात ली कि, '**जो ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करता है...**' यानी चाहता है कि मुझे आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवे, ऐसी उसको आवश्यकता भी लगी है, '**उसे ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना चाहिये,...**' यानी ज्ञानी जो अमलीकरण करनेको कहें, उसका उसको अमलीकरण करना चाहिये। बात तो संक्षेपमें दो Stage की ही है। एक तो समझनेकी और जो समझी हुई बात है उसका अमलीकरण करना। इससे ज्यादा कोई लंबी-चौड़ी बात उसमें नहीं है। कईको (यह बात) समझमें नहीं आती है। पूर्वके विपरीत संस्कारके बलसे ये बात समझनेमें भी कठिनाई होती है। फिर भी ऐसे जीवको भी जिज्ञासा होवे - भावना होवे, समझनेकी कोशिश करे तो समझ सकता है। उसको देर-सबेर लगती है, लेकिन वह समझ सकता है और सरल परिणामी तो सीधा ही समझ सकता है। क्योंकि आत्म-कल्याणकी बात है। उसमें नहीं समझने जैसी कोई बात नहीं है।

इस तरहसे (जो) बात समझमें आ गई, उस बातको अभी हमारे परिणमनमें लागू करें, उसी अनुसार परिणाम हो जाये ऐसा प्रयास करें, पुरुषार्थमें लगे, तो यह एक ऐसा कार्य है, कि जिसका पुरुषार्थ करनेसे सफलता प्राप्त होती ही है। क्योंकि जीव अपने अवगुणको - दोषको मिटाना चाहता है जो दुःखका कारण है, और सुखी होनेके लिये सद्गुणको प्राप्त करना चाहता है। उसका Main criteria तो उतना ही है। जो अपने दोषको निकालना चाहता है, वह दोष निराधार

हो जाता है। दोष तो वहाँ तक चालू रहता है या पनपता है कि आत्मा खुद उसमें रुचि लेता है, रुचि करता है और खुद उसको आधार देता है। तो वे (दोष) टिकते हैं और पनपते भी हैं। लेकिन जिसको दोष निकालना है और अंतरंगसे ये निर्दोष होनेकी भावना हुई, उसके दोषको आत्माका आधार तो कोई मिलेगा नहीं। आत्मा तो उसका निषेध करता रहेगा। उसका खेद उसको वर्तेगा। किस आधारसे वह टिकेगा ? वह निराधार हो जाता है और आखिरमें वह मिट जाता है। इसलिये इस कार्यमें, इस मार्गमें जो प्रवृत्ति करता है - पुरुषार्थ करता है, उसको नियम (से) सफलता मिलती ही है। नहीं मिले वह बात नहीं है।

संसारके कार्योंमें तो प्रारब्धवशात् सफलता मिलती है। पुरुषार्थके वशात् सफलता नहीं मिलती, प्रारब्धके वशात् मिलती है। आपने एक चीज खरीदी (उसके) भाव बढ़ गये। भाव बढ़ाना आपके हाथकी बात है ही नहीं। और आपने एक चीज खरीदी (उसके) भाव गिर गये और टिकाना चाहे तो टिक नहीं सकता। वह तो जैसा प्रारब्ध है वैसा ही बनता है। उसमें कोई अपने अधिकारका विषय नहीं रहता। अरे ! लड़का School में पढ़ता है (उसमें) अच्छे-अच्छे लड़के Fail होते हैं ! उनका प्रारब्ध ही ऐसा है। मेहनत करता है, परिश्रम करता है, फिर भी Fail होता है। वहाँ संसारके कार्योंमें सब प्रारब्धकी बात है।

मोक्षमार्गमें तो जो पुरुषार्थ करता है उसको सफलता मिलती ही है। (यह) Guaranteed (बात है।) कृपालुदेवने बोला न ? कि मोक्ष हमारेसे ले जाना ! (ऐसी) Guarantee कैसे देते हैं ? दूसरेके मोक्षकी Guarantee कैसे देते हैं ? कि जब (उसने) जैसा कहा वैसा किया। सर्व भाव सत्पुरुषको अर्पण करके वर्तना हुआ। यहाँ वही बात है। ज्ञानीकी इच्छा अनुसार चलना हुआ तो कोई (कठिन) बात नहीं है। उसका मोक्ष हो ही जायेगा। खुदको भी पता चल जायेगा कि मेरा

मोक्ष तो अभी हो ही जायेगा। क्योंकि उसको प्रतिबंध सब छोड़ना पड़ता है। ज्ञानीकी आज्ञामें चलनेमें सब छोड़ना पड़ता है और नहीं छोड़ता है तो ज्ञानी बोलते हैं कि क्यों प्रतिबंधमें खड़े हो ? हम कहते हैं तुम (प्रतिबंध) छोड़ दो। और उनकी आज्ञामें चलता है तो छोड़ देता है। और खुदको भी अपने सामने मुक्ति दिखती है। ज्ञानीको मालूम है कि, वह मोक्ष लेनेके लिये आनेवाला तो है नहीं, (तो) अपना Guarantee देनेमें क्या जाता है ! इसका मोक्ष तो इसके पास आ ही गया। उसको खुदको ही पता चल गया। अरे ! कभी ऐसा कहेगा कि मुझे मोक्षकी जरूरत नहीं है। सत्पुरुष मिल गये ने ! (तो अभी) मोक्षकी भी मुझे जरूरत नहीं है। फिर वह कोई Demand करनेको तो आनेवाला नहीं है।

`**अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है।**' जो परिभ्रमण कर रहा है, इसका कारण स्वच्छंद है और प्रतिबंध है। यहाँ तक कल चला था।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! जैसे कोई जीव दीक्षा लेता है, तो प्रतिबंधको तोड़ता है (लेकिन) स्वच्छंद नहीं तोड़ता है।

पूज्य भाईश्री :- प्रतिबंधको तोड़ता ही है, ऐसा नहीं है। किसीको जंगलमें जाकरके भी घर याद आता है।

मुमुक्षु . :- जैसे कोई जीव द्रव्यलिंगी बनता है।

पूज्य भाईश्री :- (वह) क्रमसे नहीं चला। क्रमसे नहीं चला। वह स्वच्छंद किया, (उसमें) तो प्रतिबंध भी नहीं टूटा और (ना ही) टूटेगा। क्षणिक वैराग्य आयेगा।

मुमुक्षु :- जैसे द्रव्यलिंगीको भी प्रतिबंध नहीं टूटा है क्या ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, द्रव्यलिंगीको कुछ फायदा हुआ ही नहीं। एक Percent भी फायदा नहीं हुआ। प्रवचनसारमें अमृतचंद्रआचार्यदेवने द्रव्यलिंगी मुनिको संसार-तत्त्व बोला है। क्या (बोला है) ? संसार - तत्त्व बोला है, और पूरी निवृत्ति लेकर जंगलमें रहता है, तो गुरुदेव

कहते थे कि, एक Percent भी वह निवृत्त हुआ ही नहीं, कितना ? एक Percent भी निवृत्त नहीं हुआ है, ऐसा बोलते थे। इसका मतलब क्या है ? तात्त्विक बात क्या है इसमें ? एक मेंढक है, वह सम्यक्दर्शनको पाता है, और एक द्रव्यलिंगी मुनि सम्यक्दर्शनको नहीं पाता है। पंचाचारका पालन करता है, (लेकिन सम्यक्दर्शन नहीं पाता है।)

मुमुक्षु :- द्रव्यलिंगी माने क्या ?

पूज्य भाईश्री :- मुनि जैसा द्रव्यचिह्न, भावचिह्न नहीं। द्रव्य माने शरीर और शुभ भाव। कैसा (शुभभाव) ? मुनिके लायक, पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार - पंचाचारका पालन करते हैं। पंचास्तिकायमें १७२ गाथामें ये सब बातें आती हैं। (वह) देवलोकमें जाता है। वहाँसे फिर पटकता है (और) एकेन्द्रियमें चला जाता है। क्योंकि मूलमेंसे स्वद्रव्यका आश्रय हुआ नहीं और परद्रव्यका आश्रय छूटा नहीं। आश्रय करनेमें दो ही द्रव्य हैं - एक स्वद्रव्य और एक परद्रव्य । वह काम नहीं किया। ऐसे ही दीक्षा वगैरह ले ली। क्रमसे चले नहीं। (इसलिये) निष्फलता हुई। क्रमका इतना महत्त्व है। इसलिये कृपालुदेवने ८३ नंबरका पत्र (इस) क्रम पर लिखा है, और वह भी मनसुखराम सुरीराम जैसे प्रखर विद्वानको लिखा है। ये क्रमवाली बात बहुत महत्त्वकी है। क्योंकि ये धार्मिक संप्रदायमें, सभी धार्मिक संप्रदायमें जैन-जैनेत्तर दोनोंमें कुछ-न-कुछ लोग करते ही हैं। धर्मसाधन नहीं करते ऐसी बात थोड़ी है। लेकिन क्रमको नहीं समझते । दर्शनमोहको तोड़नेके लिये जो योजना है, वह योजना समझमें नहीं आयी। और जैसा मन चाहा वैसा स्वच्छंदसे ही कर लिया, सो कर लिया, (वह) सब नुकसानका कारण हो जाता है।

मुमुक्षु :- दर्शनमोह तो चक्रव्यूहकी रचना जैसा है। उसको तोड़कर बाहर आनेके लिये क्रमके अलवा कोई मार्ग नहीं है।

पूज्य भाईश्री :- ऐसा ही है। दूसरा कोई रास्ता है ही नहीं। दूसरा कोई उपाय नहीं है। मूलमेंसे दर्शनमोहको उखाड़कर फेंक

देना चाहिये। इसकी योजना है कि जिससे वह फिरसे पनपे नहीं।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! ये द्रव्यलींग और भावलींगमें इतना फ़र्क होता है कि हम द्रव्यलिंगी जो है उसे एक Percent भी नहीं देते हैं, तो क्या इतना कुछ करने पर भी उसे भीतरमें भावलींग बिलकुल नहीं होता ?

पूज्य भाईश्री :- शुभभाव होता है। शुभभावकी पकड़ होती है। शुभभावकी और बाह्यदृष्टिसे बाह्य त्यागकी पकड़ बहुत होती है। बाह्यदृष्टि होनेसे शुभभाव और तद्अनुसार हुआ बाह्य त्याग - ये दोनोंकी पकड़ बहुत होती है। ऐसा होता है। (जबकि) ये Line ही पूरी अलग है। ये अंतरकी Line है। बाहरकी Line नहीं है। यानी भूल तो भूल ही है। हमारी अंग्रेजीमें २nd Standard में एक कविता आती थी। ``For want of a nail, the battle was lost'' पूरी लड़ाई एक घोड़ेकी नालमें हुई क्षतिके कारण हार गया। उसमें हुआ क्या ? कि जिस घोड़े पर बैठकर वह सैनिक या सेनाधिपति लड़ता था, उस घोड़ेकी नालसे कील निकल गई थी। जिसके कारण वह नाल उसके दूसरे पैरमें अटक रहा था और इस वज़हसे वह ठीकसे दौड़ नहीं सकता था। वह घोड़ा व्यूहके मुताबिक चल नहीं सकता था। सैनिकको जिस व्यूहसे लड़ना था उस व्यूहसे वह लड़ नहीं सकता था। इसप्रकार एक कीलके कारण नालमें दिक्कत हुई, नालके कारण घोड़ेकी चालमें दिक्कत हुई और घोड़ेकी चालके कारण पूरा व्यूह Fail गया ! और लड़ाई हार गया वह आदमी। All for want of a nail - एक कीलके कारण, The battle was lost. उस कवितामें एक पंक्तिमें उसने पूरी Sequence (क्रम) ली है। कि उसने क्या खोया ? उसमें क्या खोया ? उसमें क्या खोया ? इसमें क्या खोया ? वैसे उस वक्त तो कंठस्थ थी तो फटाफट बोलते थे। लेकिन (इतनी सी बात) पूरी लड़ाई हारनेका कारण बन गई। वैसे ही यहाँ इस संसारको जीतना है। और इस तरह संसारको जीतनेवाले जिन हुए, जिनेश्वर हुए। (जिसकी शुरूआत

यथार्थ नहीं होती है) वह लड़ाई हार जाता है। खामी एक शुरूआतकी होती है कि आपने शुरूआत कहाँसे की ?

मैं आपको एक बात करूँ, हमारे सोनगढ़में तत्त्वज्ञानके विषयकी बहुत चर्चा होती हैं। वहाँ सब शास्त्रके अभ्यासी लोग, वर्तमानमें जो-जो आध्यात्मिक शास्त्र हैं उन सबका बहुत अच्छा अध्ययन होता है, (वे) आपसमें बहुत चर्चा करते हैं। अभी आपसमें बहुत चर्चाके बाद अब Problem क्या हुआ है ? क्योंकि गुप्तरूपसे कोई-कोई अभ्यासी लोग (हमारे पास) आते हैं कि, भाई ! ये सब समझमें तो आता है, हमलोग हररोज़ चर्चा करते हैं लेकिन इसका कोई फल नहीं आता है ! और सम्यक्दर्शनकी इतनी-इतनी चर्चा करते हैं ! मिथ्यादर्शन और सम्यक्दर्शन पर गुरुदेवश्रीने ४५ साल तक प्रवचन दिये। वे स्वयं सर्व शास्त्रमेंसे इस (एक) Topic पर ले आते थे कि मिथ्यादर्शन मिटाओ और सम्यक्दर्शन प्राप्त करो ! इसलिये लोग इस विषयमें बहुत सूक्ष्म चर्चा करते हैं। (वह इस प्रकार कि) हमलोग सब करते हैं, समझते हैं, लेकिन कुछ अपना कार्य नहीं हो रहा है, तो अब एक Problem ऐसा हुआ है कि, शुरूआत कहाँसे करें ? प्रश्न क्या आता है सामने ? शुरूआत कहाँसे करें ? इस बातकी क्षति दिखती है, यह बात समझमें नहीं आती है। ऐसा कहते हैं कि सब समझमें तो आता है, लेकिन (कहाँसे, कैसे) शुरूआत करें, यह समझमें नहीं आता। फिर तो समझमें क्या आया ? वास्तवमें तो शुरूआत कैसे करना यही समझमें नहीं आया, मतलब कुछ समझमें नहीं आया। अच्छे-अच्छे विद्वानोंकी ये हालत है। Top level के विद्वान जिसे कहे (उनकी ये हालत है।) उन विद्वानोंको प्रश्न पूछा जाये कि, शुरूआत कहाँसे करें ? तो उलझनमें आ जायेंगे। क्योंकि उसको खुदको ही वह Problem होता है। ऐसी हालत होती है।

अतः कृपालुदेवने तो बहुत बड़ी बात खोल दी है। उन्होंने जो ८६ और १९५ पत्रमें विषय प्रतिपादित किया है कि, मार्गकी इच्छा

जिसको उत्पन्न हुई है उसे सब विकल्पोंके छोड़कर, धर्मसाधनके सब विकल्पोंको छोड़कर, यह एक नीचे लिखा हुआ वाक्य है उसका बार-बार स्मरण करने योग्य है और लिखा है कि, ``इस वाक्यमें अनंत अर्थ समाया हुआ है।'' वह किस तरहसे समाया हुआ है यह समझना मुश्किल है कि, इस एक वाक्यमें अनंत अर्थ कैसे समाया होगा ! यह सब बिना सत्संग समझमें नहीं आता। अगर उस पर सत्संग चले, उसी विषयमें गहरी विचारणा चले, तो ही समझमें आता है, कि इसमें क्या कहना चाहते हैं ? वरना इसमें बहुत बड़ा Problem है।

यह जीव भी भूतकालके अनंतकालमें अंगपूर्वधारी हो चुका है। ग्यारह अंग और नौ पूर्व तक चला गया और तप करके तो लब्धियाँ प्रगट हुई। उस लब्धिसे शास्त्रके अर्थ आदि किये ! लेकिन मूल बात रह गई। For want of a nail, the battle was lost - जैसा है।

इसलिये जगतमें Consultation की ही बड़ी कीमत है। ये जो लोग ५,००० करोड़, १०,००० करोड़के जो Industry plant लगाते हैं, उसका जो Economist होता है, उसका सबसे अधिकतम Charge होता है। Technical side का इतना Charge नहीं होता। Technical advice भी लेनी पड़ती है किन्तु Economical advice का सबसे अधिक Charge होता है। वह उसे ये समझा सकता है कि आपका Production यदि एक दिन भी Late हुआ तो आपको इतने अरबोंका नुकसान होगा। कितनी हद तक समझाता है ? सिर्फ इतने करोड़का नहीं । तो एक घंटा Late होनेसे कितना (नुकसान होगा ?) इसका नाम Economy। इसलिये जो इसे सँभालते हैं वे रात-दिन इसके पीछे लगे रहते हैं। एक दिन भी हमारा Production late नहीं होना चाहिये और Perfect होना चाहिये। उसका Perfection manager अलग होता है। सभी ब्राँचके अलग-अलग Manager होते हैं। सबके साथ विचार-

विमर्श करके Decision लिया जाता है। तो इसकी कीमत कितनी ? वैसे इस चीज़की बहुत कीमत है। वरना तो इसमें अच्छे-अच्छे भूलावेमें पड़ जाते हैं। और हमलोगोंका भी वैसे अनंतकाल बिता कि नहीं बिता ? हमारी उत्पत्तिका कोई काल - समय तो है नहीं। अनंतकालसे संसारमें घूम रहे हैं - भटक रहे हैं, धर्म भी करते हैं, किन्तु फिर भी अनंतकाल ऐसे ही चला गया। तो ऐसी कौनसी बात छूट गई ? यही एक ही समझना है। कृपालुदेवने बहुत अच्छी बात कही कि, तू ज्ञानीकी आज्ञा पर, ज्ञानीके मार्ग पर चल ! ज्ञानीकी आज्ञा पर, ज्ञानीके मार्ग पर चल। तुम अनजाने हो, भूलावेमें पड़ जाओगे, अनजान होगा वह भूला पड़ जायेगा यह तो स्वाभाविक है। साथमें जानकार होगा तो उसे कहीं भूला पड़ने नहीं देगा। उसने सब देखा है, रास्ता देखा है। सीधी बात है।

सोभागभाई तिर गये उसका कारण यही है। वरना वे तो पूरे गृहीत मिथ्यात्वमें पड़े थे। उनकी मान्यतामें तो पहले इश्वरकर्ता, हरि और दूसरा-तीसरा कुछ था, वहाँसे बाहर निकाले। वे निकले कैसे ? (कृपालुदेवने) उनके लिये एक ही विशेषण इस्तेमाल किया था कि `ज्ञानीके मार्ग पर चलनेका उनका अद्‌भुत निश्चय आज भी उनकी गैरमौजूदगीमें बार-बार स्मरणमें आता है।' उस जीवका निश्चय क्या था ? कि ज्ञानीकी आज्ञा माने ज्ञानीकी आज्ञा (बस !) उसमें मुझे कुछ फेरफार नहीं करना है। वे जो कहे वही बराबर। वे जो कहे, वही बराबर। इतना विश्वास उन्हें पहलेसे उत्पन्न हो गया था और परमेश्वरबुद्धिमें ऐसा विश्वास आ जाता है। जैसे परमेश्वरमें शंकाकी गुंजाइश नहीं है वैसे ज्ञानीमें परमेश्वरबुद्धि होने पर उनकी आज्ञामें ही वे कहे उसी प्रकार चलना, और किसी भी कीमत पर चलना। चाहे कैसी भी कठिनाई आये, कोई भी बात सहन करनेका प्रसंग आये, उसे सहन करके भी यही करना है, इस एक ही Point पर वे तिर गये ! आखरी दिनोंमें सिद्धपदका Reservation ले लिया !

वरना वे तो मृत्युशय्या पर थे। ८-९ महिनेसे बुखार उतरता नहीं था। वृद्धावस्था हो गई थी। शरीर एकदम कमज़ोर हो गया था, अशक्त हो गया था, परंतु आत्माका पुरुषार्थ सशक्त था। शरीर कमज़ोर हुआ था लेकिन आत्मिक पुरुषार्थ शक्तिवान - ज़ोरदार हो गया था। अब तो केवलज्ञान ले लूँगा, ऐसा कहते थे। अब तो केवलज्ञान ले लूँगा, ऐसा कहने लगे - इतना ज़ोर आ गया ! बिस्तर पर लेटे-लेटे ऐसी बातें करने लगे। भूल गये कि शरीरमें बिमारी है और अब मृत्यु नज़दीक है, ये सब भूल गये। बड़ी कमाई कर ली। उन्होंने अनंतभवकी अनंतकालकी कमाई कर ली। बहुत बड़ी बात है!

अब पाँचवाँ वचनामृत है। ``**जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार, अर्थात् आज्ञानुसार न चला जाये, तब तक अज्ञानकी निवृत्ति होना संभव नहीं है।**'' `**जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार...**' परोक्ष ज्ञानी नहीं लिये, क्योंकि परोक्षमें तो जिनेश्वरदेव भी आते हैं, और उनकी आज्ञाएँ शास्त्रमें लिखी हैं। प्रत्यक्ष ज्ञानी लेनेका कारण क्या है ? यदि हम Medical science का विचार करें तो, एक रोग पर आदमी Expert हो जानेके पश्चात् उस विषयमें पुस्तकें लिखता है। (किसीने) बहुत Higher degree प्राप्त की हो, और एकदम Expert होनेके बाद उस पर पुस्तक लिखी हो, और दूसरा एक General practitioner हो, इतना पढ़ा लिखा नहीं हो, अब कोई पुस्तक पढ़कर दवाई करने जायेगा तो वह मर जायेगा। उसके लिये डॉकटरकी उपस्थिति आवश्यक है। क्यों ? कि किसी भी बातको पूरी-पूरी लिखना मुश्किल है। इसका कारण क्या है ? कि एक रोग होनेमें जो-जो कारण हैं, उन सबकी Treatment अलग-अलग है। उस रोगके साथ दूसरे कुछ-कुछ Complications होते हैं, और कितने Complications होंगे या किसको होंगे ? ये सब पुस्तकमें तो आता नहीं। प्रत्यक्ष डॉकटर ही समझ सकता है कि ये रोग मुख्य

है, परंतु साथमें इतने-इतने Complications हैं। इसलिये ये सब का Co-ordination करके Treatment देनी पड़े। ये सब पुस्तकमें कैसे आ सकता है ? और कोई एक दवाई उसने लिखी हो, वह यदि लागू न पड़े तो क्या करें ? पुस्तक क्या जवाब देगी ? पुस्तक ऐसा कहेगी क्या कि, इसमें ये दवाई लेनी है ? और मान लिजीये वह दवाई ली लेकिन लागू नहीं हुई तो ? अब क्या करेंगे बताईये ? किसको पूछा जाये ? पुस्तक जवाब देगी ? इसलिये ऐसी परिस्थितिमें प्रत्यक्ष ज्ञानी चाहिये, चाहिये इतना ही नहीं अवश्य चाहिये।

राष्ट्रपति या Prime-minister यदि गंभीर रूपसे बीमार पड़े तो उन्हें भी Hospitalize करते हैं। Hospital को उनके राष्ट्रपतिभवनमें नहीं लायी जाती बल्कि उनको खुदका हास्पिटलमें ले जाना पड़ता है, क्यों ? कि हास्पिटलमें जो सेंकड़ों, हज़ारों साधन होते हैं उसमेंसे कब किसकी जरूरत पड़ जाये इसका कोई नियम नहीं होता। इसलिये हास्पिटल सब सुविधायुक्त बनायी जाती है। और उसका आधे-आधे घंटे पर, घंटे-घंटे पर Reading लेकर Bulletin बाहर प्रसिद्ध करते हैं। प्रति घंटे उनके तजज्ञ सँभाल ले सके वैसी व्यवस्था हास्पिटलमें होती है। उन तजज्ञोंकी कभी-कभी Conference करनी पड़ती है। ४-५ जन जो Treatment करते हैं और दवाई लागू न हो, Treatment लागू न हो तो उन लोगोंको आपसमें सलाह लेनके लिये बैठना पड़ता है। उनकी Conference करनी पड़ती है। ये सबमें परोक्ष पुस्तक क्या काममें आ सकती है ? ऐसे Case में पुस्तक क्या काममें आयेगी ?

वैसे ही यह जो भवरोग है, वह अनादिसे Chronic है और भयंकर है। चारों गतिमें भटकता है। उसको मिटानेके लिये भी `Under strict medical supervision' में जैसे दर्दीको रहना पड़ता है, वैसे यहाँ ज्ञानीकी आज्ञामें रहना पड़ता है और बात-बातमें उनकी जरूरत पड़ती है। ऐसा हुआ और मुझे ऐसा हो गया। ये कहेगा मुझे ऐसा हो गया, वह कहेगा मुझे वैसा हो गया, मैं क्या करूँ ? हरएक का Case

अलग-अलग, हरएकका भूतकाल अलग-अलग, हरएककी योग्यता अलग-अलग, अयोग्यता अलग-अलग। इसलिये कृपालुदेवने ४६६ पत्रमें लिखा कि, कोई ऐसा माने कि योग, ध्यान इत्यादि किसी न किसी क्रियासे कोई कल्याण करने जायेगा तो वह असंभवित है। जीवका कल्याण होना तो ज्ञानीपुरुषके लक्ष्यमें होता है। ऐसा वाक्य (यहाँ) आगे लिखा है। उन्हें मालूम है कि इसको रोगमें क्या गड़बड़ होनेवाली है ? और अगर अचानक गड़बड़ हो तो उसे कैसे ठीक करना ? Family-Doctor क्यों होते हैं ? आधी रातको तकलीफ़ होगी तो क्या करेगा ? क्या करेगा वह ? बिना डॉकटर क्या करेगा ? इसलिये `**जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार, अर्थात् आज्ञानुसार न चला जाये, तब तक अज्ञानकी निवृत्ति होना संभव नहीं है।**' तब तक अज्ञानका नाश होना संभवित है ही नहीं। यह Full and final बात उन्होंने कर दी है।

अब आगे कहते हैं कि, `**ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वह कर सकता है...**' आज्ञामें कौन चल सकता है ? सिर्फ विकल्प करनेकी बात नहीं है। अब यहाँ पर उस जीवकी कितनी तैयारी होती है, यह बात करते हैं कि `**ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वह कर सकता है कि जो एकनिष्ठासे...**' एक ही निष्ठा हो कि बस ! आत्मकल्याणके अलावा मुझे जीवनमें दूसरा कुछ करना नहीं है। यह एक ही काम करना है। अनंतकालमें अनंतबार सब मिल चुका। सब प्रकारके पुण्यके फल भी भोग लिये और सब प्रकारके पापके फल भी भोग लिये। सब प्रकारके पुण्य और सब प्रकारके पाप भोग लिये, अब कुछ बाकी नहीं रहा। इसलिये ज्ञानी तो ऐसे देखते हैं कि `सकल जगत छे एंठवत्' ये सब जो खाना है वह जूठा खाना है, सब खा चुके हैं `अथवा स्वप्न समान' स्वप्नमें मिठाई खानेसे भूख नहीं मिटती, इससे कभी तृप्ति होनेवाली है नहीं। जगतके पदार्थ मिलने से कभी तृप्ति होनेवाली है ही नहीं।

इसलिये `**एकनिष्ठासे, तन, मन और धनकी आसक्तिका त्याग करके उसकी भक्तिमें जुट जाये।**' तन, मन, धन देकर नहीं क्योंकि वह तो काफी लोग देते हैं, इसलिये कहता हूँ। वरना ओघसंज्ञासे बहुत लोगोंने बहुत कुछ दिया। तन, मन, धन सब देते हैं। तनसे २४ घंटे सेवा करें। मनसे, उन्हें जैसा कहा उस प्रकार शास्त्र पढ़े, अर्थ समझे, दूसरा और-और सब कुछ करे, और सारा धन दे दे, लेकिन वैसे नहीं। तन, मन और धनकी `आसक्तिका त्याग' करनेकी बात है। तन-मन-धनका त्याग करनेकी बात नहीं है। बात सामान्य लगे लेकिन इसके भीतरमें क्या है ? तेरे परिणाममें Attachment कितना है ? तेरे शरीरके प्रति (कितना Attachment है ?) मन यानी तेरे मनके परिणाम बेकाबू होते हैं, वह किस प्रकार होते हैं ? उसका अवलोकन करके उसे ठीक करना पड़े, और धनके प्रति अभी भी तुझे आसक्ति कितनी है ? आसक्ति माने अपनत्व।

(कोई भी परपदार्थमें) सुखका निश्चय होता है। जब वह सुखके निश्चयको तोड़े, बदल दे तब वह आसक्ति मिटती है। सुखका निश्चय वैसाका वैसा रहे और आसक्ति मिट जाये, ऐसा कभी नहीं बनता। और आसक्ति मिटे बगैर तन, मन, धन अर्पण कर दे, वह निरर्थक है। अर्पण कर दे तो भी निरर्थक है। नहीं करे उसका तो सवाल नहीं किन्तु यदि कर दे तो भी उसका कोई अर्थ नहीं है। अतः ज्ञानी जो हैं वे आसक्ति छुड़ाते हैं, उसका निश्चय बदलवाते हैं। तेरा निश्चय गलत है, यह तेरा Mis-concept है और वह अनंत दुःखका कारण है। दूसरा कोई कारण नहीं है। पर पदार्थमें सुख है - ऐसा भूलवाला जिसका निश्चय है वह आज नहीं तो कल कतलखाना शुरू करेगा। क्या करेगा ? Slaughter house चलायेगा। क्योंकि जो Slaughter house चलाता है, कतलखाने चलाता हैं, वह इस एक ही परिणामसे चलाता है (कि), इससे मुझे जो पैसे मिलते हैं, उससे मैं सुखी होता हूँ। इससे मैं सुखी हूँ, मेरा कुटुम्ब सुखी है। ये

सब हैं, इससे मुझे सुख है। उसकी आसक्ति चाहे कुछ भी करे, नहीं टूटती और उसका समर्पण भी वास्तवमें कोई सही समर्पण नहीं है। निश्चय बदलकर आसक्ति टूटे, बादमें जो समर्पण होवे, वह समर्पण सही। इसके पहले हुआ समर्पण वास्तविक समर्पण नहीं है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! ये सुखका निश्चय कैसे छूटे ?

पूज्य भाईश्री :- निश्चय बदलना पड़े। स्वरूपका निश्चय होवे, तो स्वरूपमें सुख है उसका निश्चय होवे। १०८ पत्र चला कि नहीं चला ? सुख अंतरमें है, बाहरमें कहीं नहीं है।

मुमुक्षु :- ये आसक्ति जो टूटी उसका Test क्या है ? संयोग-वियोग किसीमें भी परिणाममें फर्क नहीं पड़े - ये Test है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, (फर्क) नहीं पड़े। वह तो बहुत Practical है। आपको दूसरे पर कोई आसक्ति नहीं है तो कोई मरता है तो कुछ लगता है ? एक Paper में आया कि एक लड़का Gutter में चला गया। क्या हुआ अपनेको ? अपना लड़का होवे तो क्या होवे ? क्यों ? आसक्ति है वहाँ, वहाँ अपनापन है। वही तो बात है। वह नहीं समझमें आये ऐसी बात नहीं है। लगे ही नहीं कुछ। कुछ भी हो जाये, लगे ही नहीं। लगे तो आसक्ति है। सीधी बात है।

मुमुक्षु :- आसक्ति रखकर दान और त्याग हो सकता है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, लोग त्याग करते हैं। लाखों-करोड़ो रुपया दान देते हैं और पैसेकी आसक्ति उतनी की उतनी बनी रहती है। अरे ! कुछ लोग तो ऐसा करते हैं कि, ज्यादा कमाओ और ज्यादा दान दो ! ऐसे भी चलते हैं। समझ नहीं है उसको तो कुछ भी चलेगा। वह बात लिखी है।

'**ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वह कर सकता है कि जो एकनिष्ठासे तन, मन और धनकी आसक्तिका त्याग करके उसकी भक्तिमें जुट जाये।**' भक्ति है, वह ज्ञानीके प्रति आसक्ति है और

जो तन, मन, धनके प्रति आसक्ति है, उसमें ज्ञानीके प्रति भक्ति हो ही नहीं सकती। क्योंकि आसक्ति दो विरुद्ध पदार्थमें नहीं हो सकती। तन, मन, धनमें भी आसक्ति होवे और ज्ञानीमें भी भक्ति होवे - दो बात नहीं बनती। ज्ञानीमें भक्ति - आसक्ति होवे तो संसारके तन, मन, धन पर आसक्ति रहेगी ही नहीं।

मुमुक्षु :- उसमें विश्वास ही नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- (आसक्ति) छूट जायेगी। वह उसकी उदासीनतामें आ ही जायेगा। क्योंकि अंगुली सीधी रहती है, तो टेढ़ी नहीं रहेती। टेढ़ी रहती है तो सीधी नहीं रहती। दो अवस्था साथमें कैसे रहेगी? कपड़ा समेटा हुआ भी रहे और खुला भी रहे, दोनों साथमें कैसे बन सकता है ? समेटा हुआ समेटा हुआ है जबकि खुल्ला है वह खुल्ला है। एक साथ दोनों अवस्था कैसे रह सकती है ? वैसे जो एक तरफ झुक गया - तन, मन, धनके प्रति झुक गया, वह ज्ञानीके प्रति नहीं झुक सकता। जो ज्ञानीके प्रति झुका वह तन-मन-धनमें झुकनेवाला नहीं है। एक ही अवस्था है। या तो आसक्ति एक तरफ होगी या आसक्ति दूसरी तरफ होगी।

मुमुक्षु :- ६०९ पत्रांकमें लिया न ! कि एकनिष्ठा और अपूर्वभक्ति नहीं आयी।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, नहीं आयी, इसलिये सत्संग निष्फल गया। उसे सत्संग निष्फल होनेका मुख्य कारण लिया है। उसमें चारों कारण समाविष्ट हैं। पूर्वग्रह, स्वच्छंद, प्रमाद सब कारण समाविष्ट हैं। क्योंकि 'अथवा' ऐसा लिखकर बात ली है जैसे कि 'अथवा ज्ञानीमें एकनिष्ठासे अपूर्व भक्ति नहीं आयी' इसलिये सत्संगकी सफलता नहीं हुई। क्योंकि वह उपदेश लगेगा ही नहीं। पूरी जिंदगी सुने तो भी वह उपदेश नहीं लगेगा। क्योंकि उसकी प्रीति, भक्ति, आसक्ति सब संसारके प्रति है। वह उपदेश कहाँसे चढ़नेवाला है ?

यह बात थोड़ी मंथन करके, गहरा विचार करके अपने परिणामोंसे

मिलान करके, पूरा प्रयत्न करके ठीक करनी होगी। यदि इसमें फेरफार नहीं हुआ तो मूलमें फेरफार नहीं हुआ, फिर दूसरा जो भी करेगा वह 'छार पर लीपणुं तेह जाणो' आनंदघनजीने गाया है न ! छार माने क्या ? राख। राखका बड़ा ढेर हो, ६ इंचका थर हो उसके ऊपर गोबरका लिपन करे तो वह टिकेगा क्या ? नहीं टिकेगा। वह लिपन रहनेवाला है ही नहीं। पहलेके जमानेमें Flooring में गोबरका लिपन करते थे, इसके पहले सारी सफाई करके बिलकुल Dust नहीं रहने देते हैं। बराबर सफाई करके फिर उस पर गोबरका लिपन करते थे वरना उसमें तुरंत दरार पड़ने लगती हैं। नीचे धूल होने पर सूखता है तब दरार पड़ने लगती हैं, वरना Flooring के साथ (बराबर) चिपकेगा नहीं। मेहनत बेकार जाये वैसा करना और वैसा बहुत करना इसका कोई मतलब है ? थोड़ा लेकिन सार्थक हो वैसा करना जरूरी है। इसलिये वह ज्ञानीकी भक्तिमें जुट जाता है, ये दोनों पहलू एक वाक्यमें स्वयंने एकसाथ लिये हैं। दूसरी-दूसरी आसक्तिका त्याग हो और यहाँ (ज्ञानीमें) आसक्ति हो। वहाँसे आसक्ति मिटे और यहाँ आसक्ति हो, बस !

'**यद्यपि ज्ञानी भक्तिकी इच्छा नहीं करते, परंतु मोक्षाभिलाषीको...**' किसको ? जो मुमुक्षु मोक्षका अभिलाषी है, उसकी बात है। उसको भी अर्थात् जो मोक्षका अभिलाषी नहीं है उसकी तो बात ही जाने दो। '**...परंतु मोक्षाभिलाषीको वह किये बिना उपदेश परिणमित नहीं होता,...**' उसका उपदेश जो है वह परिणमित नहीं होता यानी कि उसका असर नहीं आता है। तन, मन, धनकी आसक्तिकी जो परिणति हो चुकी है, वह उपदेशका असर आनेमें अवरोधक होती है। जीव उपदेश सुनता है, उपदेशका यथाशक्ति विचार भी करता है लेकिन आत्मा पर जो उसका असर आना चाहिये, वह असर नहीं आनेमें यदि कोई अवरोधक कारण है तो वह अवरोध है अपने ही तन, मन, धनकी आसक्तिके परिणामोंका - वह अवरोध

है। अतः मोक्षाभिलाषीको ऐसी भक्ति कब आती है ? कि जब आसक्ति टूटती है तब। मोक्षाभिलाषीको ऐसा किये बिना उपदेश परिणमित नहीं होता। उपदेशका असर नहीं होता। जैसे कोई बहरा मनुष्य अपने बहरे कानसे सुनने बैठे तो शब्द उसके कानके परदेको छुकर Rebound होकर वापिस चले जाते हैं, भीतरमें सुनाई नहीं पड़ते। वैसे (यहाँ उपदेशका) असर नहीं पहुँचता है। जीवको उपदेशका असर नहीं होता है। '**और मनन तथा निदिध्यासन आदिका हेतु नहीं होता,...**' वह उपदेश जब भीतरमें परिणमित न हुआ हो, तो उसका मनन करे, और उसको Visualize करे, निदिध्यासन करे अर्थात् Visualize करे, वह सब Stage तो कहाँ से आनेवाले हैं ? ऐसा भी नहीं होता; मतलब जिसको परिणमन होवे उसको ही मनन और निदिध्यासन चलता है, ऐसा कहना है।

'**इसलिये मुमुक्षुको ज्ञानीकी भक्ति अवश्य करनी चाहिये ऐसा सत्पुरुषोंने कहा है।**' अतः मुमुक्षुको ज्ञानीकी भक्ति अवश्य करनी चाहिये, ऐसा जो सत्पुरुषोंने कहा है, उसमें यथार्थ प्रकार ऐसा है कि तन-मन-धनकी आसक्ति छोड़कर अथवा छोड़नेका प्रयत्न करके भी भक्ति करनी चाहिये।

भक्ति क्या है ? भक्ति है वह पूज्यबुद्धि है अथवा उपकारबुद्धि है। जैसे कि, मेरे हितका निमित्त है इसलिये मुझे उपकारी है। इस प्रकार उपकारबुद्धिपूर्वक उसे बहुमान आता है, और उस बहुमानको भक्ति कहा जाता है। ऐसा भक्तिका स्वरूप है।

मुमुक्षु :- इससे विनय आता है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, इसमें तो क्या है ? सर्वाधिक है न ? (ज्ञानीपुरुषके प्रति) सर्वाधिक भाव आता है। तन-मन-धनकी आसक्ति छूटी तब तो उससे अधिक भाव आया न ? अतः भक्ति जो है वह पूज्यबुद्धिसे, उपकारबुद्धिसे, सर्वाधिकतापूर्वक उत्पन्न हुआ भाव है। उसको सबकुछ गौण हो जाता है। भले ज्ञानी नहीं चाहते फिर भी

मोक्षाभिलाषीको तो वैसी स्थिति, वैसी दशा हुए बिना अपने आत्मा पर असर होनेवाला नहीं है, और खुदको कोई लाभ होनेवाला नहीं है।

अतः ज्ञानीकी भक्ति वह निमित्त परख वचन है। ज्ञानी निमित्त हैं न? इसलिये यह वचन निमित्त परख है। वाक्य तो निमित्त परख है लेकिन उसमें समझना है - उपादानकी विशेषताको। उपादानमें ऐसी योग्यतावाले परिणाम हुए बिना, उसके उपादानको लाभ नहीं होगा। निमित्त परख बात है, इसलिये निमित्तकी प्रधानता है, ऐसा नहीं है।

हमारे यहाँ तो ये सब बातें आने पर तर्क उठते हैं। कृपालुदेव पर जितना चाहिये उतना वज़न नहीं है, जितना होना चाहिये उतना नहीं है। वैसे मानते हैं सब, लेकिन उतना वज़न नहीं और उतना समझते भी नहीं है। कृपालुदेवके वचनोंमें जो गहराई है उसे उतनी मात्रामें नहीं समझे हैं। इतना वज़न नहीं होनेसे ऐसी बातोंमेंसे तर्क उठाते हैं कि, इसमें निमित्त प्रधानता नहीं हो जायेगी ? इसमें निमित्ताधिनपना नहीं हो जायेगा ? शास्त्रमें तो उपादानकी मुख्यता करनेकी आज्ञा है, ऐसा है, वैसा है। ऐसी-ऐसी चर्चाएँ चलती हैं। अतः ऐसे उपादानवालोंको उनकी पद्धत्तिसे कान पकड़वाना पड़ता है कि, ये बात निमित्त परक है, लेकिन है तो उपादानकी ही। उपदेश परिणमित कहाँ होगा ? उपादानमें। अतः उपादानकी ऐसी योग्यता हुए बिना उसका काम नहीं होगा। अतः मूल बात तो उपादानकी है।

निमित्त-उपादानमें दृष्टिके फ़र्क के कारण लोगोंको बात समझमें नहीं आती है। देखो ! चश्मा लगाये बिना नहीं दिखता। जिन लोगोंको चश्माके नंबर है, उन्हें क्या है ? देखते वक्त चश्माका निमित्त है। तो कहेंगे देखो ! मेरा चश्मा मैं निकाल दूँ तो मुझे बराबर नहीं दिखता है। आप निकाल देंगे तो आपको भी बराबर नहीं दिखेगा।

जब कि आप तो कहते हैं कि निमित्तका इसमें क्या स्थान है ? लेकिन भाई ! ये चश्माका नंबर आपकी आँखके क्षयोपशमका नंबर दिखाता है। किसको बताता है ? आपकी आँखकी देखनेकी योग्यता कैसी है ? यह चश्मा बतलाता है। लेकिन आप चश्मा पर ज़ोर देते हो। Doctor उसकी आँख पर ज़ोर देते हैं कि, उसकी आँखकी कैसी योग्यता है ? अब उपादानको देखना या निमित्तको देखना ? यह तो देखनेकी नज़रकी बात है। तेरी आँख उतनी कमज़ोर है, यह उसका कारण है और कोई कारण नहीं है। फिर आप आधार चश्माका लेते हो, जब कि मूलमें आपकी आँख कमज़ोर है, उसको देखो न ! उपादानका खयाल नहीं करके सिर्फ निमित्त पर ज़ोर देनेसे उसको ऐसा लगता है कि निमित्तके बिना नहीं चलता। आँखको ठीक किजीये, चश्माकी कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। निमित्त-उपादानकी बहुत चर्चा चली हैं, और इतनी मात्रामें चर्चा चली हैं कि जिसका अंत नहीं आये। दोनों तरफसे इतनी दलील मिलती हैं। हमलोगने तो एक ही दृष्टांत लिया - चश्माका। और भी काफी दलील हैं।

एक दोलतरामजी हो गये। उन्होंने उस पर बहुत पद लिखें हैं। निमित्तवालें कहते हैं कि भाई ! निमित्त और उपादान दोनों चाहिये। दो पहिये बिना रथ नहीं चलता। रथ तो दो पहियेसे ही चलता है। अतः निमित्त और उपादान दोनों चाहिये। उपादानवाला कहता है कि देखो ! सूर्यका रथ एक पहियेसे चलता है। सूर्यका रथ एक पहियेसे चलता है। 'रविका यही स्वभाव।' 'एक चक्रसे रथ चले, रविका यही स्वभाव' ऐसा है।

उसमें तो बहुत विवाद चला है। उपादान -निमित्तका इतना विवाद चला है और लोग इतने उस बातमें उलझ जाते हैं कि फिर उसमेंसे निकल नहीं सकते !

मुमुक्षु :- मूल बात एक तरफ छूट गई !

पूज्य भाईश्री :- मूल बात ही छूट गई। इसमेंसे मुझे आत्मकल्याण

कैसे करना ? यह बात एक तरफ रह गई। अतः आत्मकल्याण कैसे करना इसकी मुख्यतामें जो जीव आ जाये, वह विवादमें नहीं फँसता। विवादमें कौन नहीं फँसता है ? जिसको एकनिष्ठासे आत्मकल्याण करनेकी बुद्धि हो उसे दिक्कत नहीं आती, वरना दोनों तरफसे इतनी-इतनी दलील हैं कि, आदमीका माथा खराब हो जाये और मूल बातको ही भूल जाये।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! जिसको प्रयोजनकी पकड़ होती है वह दोनों बातका उपयोग कर लेता है, कि अभी उपादानकी मुख्यता है तो उपादानसे काम ले लेना, बादमें निमित्तसे लेना।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, बराबर है। उसमें तो क्या है कि निमित्तकी मुख्यता करके अपने पुरुषार्थको न छोड़े। और जहाँ उसे देव-गुरु-शास्त्र व सत्पुरुष मिले, वहाँ उपादानमें भक्ति जागृत हो जाये और अपना आत्मकल्याण करना न चुके। क्योंकि वह भक्ति तो खुदके आत्मकल्याणके वश आयी है। ऐसे ही भक्ति थोड़ी न आयी है ? भक्ति करने खातिर या राग करने खातिर, व्यक्तिराग करनेके लिये कोई भक्ति नहीं है। वास्तवमें तो जिन्हें गुण प्रगट हुए हैं, ऐसी व्यक्तिका बहुमान, वह गुणोंका बहुमान है - व्यक्तिका बहुमान नहीं, वह तो गुणोंका बहुमान है। इसलिये पंच परमेष्ठिपदमें `णमो अरिहंताणं' ऐसा लिया है, `णमो आदिनाथाय' ऐसा नहीं लिया है कि चलो ! आदिनाथ भगवानको नमस्कार करो। क्योंकि कोई आदिनाथ है नहीं। अनंत तीर्थंकर हुए, उसमें पहले तीर्थंकर ये हुए ऐसा तो है नहीं। कोई पहले तीर्थंकर नहीं हैं। इस चौबीसीमें ऋषभदेव भगवान - आदिनाथ हैं, लेकिन ऐसी तो अनंत चौबीसी हो चुकी। उसमें कौनसी चौबीसी पहले और कौनसे तीर्थंकर पहले ? ऐसा कुछ है नहीं। वैसा उसका गणित ही नहीं है। और सिद्धालयमें कोई पहले सिद्ध गये और इसके पहले सिद्धशीला खाली थी, बादमें किसी एक दिन पहले सिद्ध होकर वहाँ बिराजमान हुए (ऐसा नहीं है।) वहाँ सर्वकाल अनंत सिद्ध हैं।

अनंतकाल पहले भी सर्वकाल वहाँ अनंत सिद्ध हैं, २-४-५ नहीं। (यदि ऐसा होता) तब तो पहले सिद्ध कौन आये ? ये नक्की हो जाये। लेकिन अनंत सिद्ध हैं। ऐसी बात है। दिमाग छोटा पड़ता है। इतनी बड़ी बात है कि इसमें दिमाग छोटा पड़े।

इसलिये पंचपरमेष्ठिमें `णमो अरिहंताणं' ऐसी बात ली है। जिसने भीतरके दुश्मनोंका - दोषरूपी दुश्मनोंका घात कर डाला, यानी कि जिन्होंने गुण प्रगट किये, आत्माके सर्वगुण प्रगट किये, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। वहाँ जैसे गुण प्रधानता ही है, वैसे यहाँ भक्तिमें भी गुण प्रधानता है। और जिसको गुणकी महिमा आये उसे स्वयंको गुण प्रगट होते हैं। जिसको गुणकी महिमा हो वह गुण प्रगट कर सकता है। पैसेकी महिमा हो वह पैसा कमाने जायेगा, और जिसको कुछ पड़ी न होगी वह कोई प्रयत्न नहीं करेगा। (उसको ऐसा लगेगा) जाने दो ना ! उसमें क्या है ? ऐसा बनता है। जिसको जिसकी कीमत होगी, उसका उस तरफ पुरुषार्थ चलेगा। अतः भक्तिका विषय ऐसा है, उसमें गुणकी महिमा है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! कृपालुदेवने कहा न ! कि ..

`उपादाननुं नाम लई ए जे तजे निमित्त'

पूज्य भाईश्री :- पामे नहीं सिद्धत्वने, रहे भ्रांतिमां स्थित' उपादानके बहाने उसको निमित्तकी महिमा नहीं आती। बहाना पकड़कर उसने छल ग्रहण किया। उसने वहाँ छल ग्रहण किया है। और निमित्तके प्रति जो भक्ति आनी चाहिए, वह यदि नहीं आये तो उसकी सिद्धि कभी नहीं होगी। जीव भ्रांतिमें पड़ा है। ऐसी तो बहुत गहरी-गहरी बातें उन्होंने की हैं।

मुमुक्षु :- वास्तवमें जो निमित्तका सही विवेक करता है उसीको उपादानका विवेक जागृत होता है।

पूज्य भाईश्री :- (उसमें) वास्तवमें तो उपादानका ही विवेक है। निमित्तका विवेक है वह Indirectly उपादानका ही विवेक है, ऐसा

ही है। यह बात गुरुदेवश्रीने की है, कि यह जो निमित्तका विवेक है, वही उपादानका विवेक है। यहाँ भी कोई यदि निषेध करता है तो वह उपादानको तो समझा, ही नहीं और निमित्तको भी नहीं समझा, ऐसा कहा है। आत्मसिद्धिके बहुत अच्छे अर्थ किये हैं। (पूज्य गुरुदेवश्रीके) व्याख्यान हुए हैं। अभी तक `आत्मसिद्धि शास्त्र' पर हुए व्याख्यानकी ६० से ७० हज़ार नकल छप चुकी हैं। ८-९ Re-edition हुई हैं। इतना कुछ लोगोंको उसमेंसे मिला है। उन व्याख्यानोंका अभी तक हिन्दी नहीं हुआ है। अगर हिन्दी अनुवाद हो जाये तो हिन्दीभाषी क्षेत्रमें कृपालुदेवका बहुत अच्छा प्रचार हो सकता है। यहाँ तक रखें।

सत्पुरुषकी वाणीमें आत्महितका - परमार्थका विषय चाहे कितना भी स्पष्टरूपसे व्यक्त हुआ हो, फिर भी जिस मुमुक्षुने आज्ञांकितपने सत्संगकी उपासना नहीं की हो उसे परमार्थ समझमें नहीं आता। आज्ञांकितपनेके कारण मुमुक्षुकी मति परमार्थ समझनेके लिए निर्मल-सरल होती है। अतः ऐसा नियम सिद्ध होता है कि, अगर मुमुक्षुजीव सत्संगकी उपासना आज्ञांकितपने करे तो ही सत्संग सफल होता है, अन्यथा नहीं; क्योंकि इसके बिना स्वच्छंद जो महादोष है उसकी हानि नहीं होती। आज्ञांकितपना मुमुक्षुके दर्शनमोहके रसको कम करता है, जिससे वह उपशांत होनेके योग्य होता है।

-पूज्य भाईश्री (अनुभव संजीवनी-१०३३)

प्रवचन - ६
'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-२००
दि. १०-१०-१९९८ - कलकत्ता

(श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत - २००) १४में से ७ वचन हुए हैं। ८ वाँ वचन है। २०१ पत्रमें उन्होंने लिखा है कि (सोभागभाईके पुत्र) मणीभाईके लिये ये वचनावली हमने भेजी है। उसमें हमने संतका अद्‌भुत मार्ग प्रकाशित किया है। यदि कोई मुमुक्षु एक ही वृत्तिसे, एक ही वृत्तिसे माने सिर्फ आत्मकल्याणके हेतुसे, उसका आराधन करेगा, और उसी पुरुषकी आज्ञामें लीन रहेगा, यानी सत्पुरुषकी आज्ञामें लीन रहेगा, तो अनंतकालसे प्राप्त हुआ परिभ्रमण मिट जायेगा। इतने वचन उन्होंने इस वचनावलीके लिये २०१ पत्रमें लिखे हैं।

संक्षेपमें कहे तो जीव अपने स्वरूपको भूल गया है इसलिये उसे सुखकी प्राप्ति नहीं हुई। हमेशा उसको दुःख भोगना पड़ा है। स्वयंको भूल जानेरूप अज्ञान है, उस आत्मज्ञानकी प्राप्तिसे अज्ञानका नाश होता है, ऐसा कहा है। परंतु ऐसे ज्ञानकी प्राप्ति जिसे करनी हो, उसे ज्ञानीकी इच्छासे, ज्ञानीकी आज्ञासे चलना चाहिये। ज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानीसे होती है, यह सहजरूपसे समझमें आये ऐसी बात है। परंतु ज्ञानी संप्रदायमें नहीं मानते और सभी जीव संप्रदायवासी होते हैं। अपना संप्रदाय छोड़ नहीं सकते, उसमें मुख्यतया लोकलज्जा या समाज प्रतिबंध आड़े आता है। (उसको ऐसा लगता है) कि लोग क्या कहेंगे ? हम हमारा संप्रदाय छोड़ देंगे तो लोग हमारी चर्चा करेंगे। हमारी इज्जत कम होगी, और हमारे सगे-संबंधी सब संप्रदायमें हैं, तो उनके साथ संबंधमें भी कहीं क्षति पहुँचेगी। एक दूसरेके प्रति जो स्नेह है उसमें फ़र्क आ जायेगा। ऐसे अनेक कारणोंसे जीव

अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ता। यानी कि जो संप्रदायके गुरु हैं, जिसको आत्मज्ञान नहीं है, उसका आश्रय नहीं छोड़ता और वह अनंतानुबंधी कषायका मूल है। यह बात उन्होंने तीसरे वचनामृतमें ली है।

अनंतानुबंधी कषायका मूल अर्थात् परिभ्रमणका मूल। अब संप्रदायके गुरुके पास जाये और वे हमको व्रत, उपवास कराये तो इसमें हमें क्या नुकसान है ? इसमें हम कौनसा बड़ा पाप करते हैं कि जिसके कारण वह परिभ्रमणका मूल कहा जाता है ? देखो ! यह बात जीवकी समझमें नहीं आती है, इसलिये बहुत Lightly - हलकेरूपमें ले लेता है। (वह ऐसा मानता है कि,) हमको ज्ञानीके पास भी जाना और हमें संप्रदायमें भी जाना - दोनों जगह जाना, उसमें हमें क्या दिक्कत है ? क्या नुकसान है ? परंतु कृपालुदेवने ध्यान खींचा है कि, जीव अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ता - यह उसको परिभ्रमणका (कारण है)। अनंतानुबंधी कषायका मूल तो वहाँ पड़ा है।

इसलिये जीव यदि ज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानीसे चाहता हो तो एकनिष्ठासे ज्ञानीके सत्संगका और उनके आश्रयका आराधन करना चाहिये। जिसे ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा हो, उसे ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना चाहिये, ऐसा जिनागम आदि सर्व शास्त्र कहते हैं। अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है। अपनी इच्छानुसार कहो या स्वच्छंदसे कहो। स्वच्छंदसे धर्मसाधन करके, खुद अपनी इच्छानुसार धर्मसाधन करके अनादिसे भटक रहा है। भटकनेका कारण कुटुंब-परिवार - वह सब बादमें लिया किन्तु पहले यह लिया। इस वचनावलीमें दूसरी ऐसी कोई बात नहीं ली। खास करके धार्मिक क्षेत्रमें जो भूल करता है, वह (भूल) उसे सत्‌धर्ममें, सन्मार्गमें, जिनागममें, ज्ञानीके मार्ग पर चढ़ने नहीं देती। उस पर ध्यान खींचा है।

फिरसे (लें), ऐसा नहीं कहा कि तुम व्यापार-धंधा करते हो और गृहस्थाश्रममें हो इसलिये तेरा चार गतिमें परिभ्रमण होगा, ऐसा नहीं

कहा। यहाँ तो ऐसा कहा कि, तू तेरी मनमानीसे धर्मसाधन करता है, अज्ञानीका आश्रय छोड़ता नहीं और ज्ञानीके आश्रयमें आता नहीं, इसलिये तेरा परिभ्रमण हो रहा है। इसलिये (तेरा) भटकना चालू रहा है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि जो मार्ग नहीं है उसे मार्ग मानता है। उपाय नहीं है उसे उपाय मानता है, वह गृहीत मिथ्यात्व है, यानी तीव्र अज्ञान है।

जीवको विषय कषायका दोष दिखता है। कोई क्रोध करे, कोई चोरी करे, जुआ खेले, दारू पीये, तो वह दिखता है परंतु अज्ञानका दोष नहीं दिखता। अज्ञानका दोष कितना बड़ा है यह नहीं दिखता। अब जीवका जो परिणमन है, उस परिणमनमें Leading part ज्ञानका है। ज्ञान उलटा तो सब उलटा चलेगा। जैसे नेता भूल करे तो उसका अनुसरण करनेवाले सब भूल करते हैं। वैसे परिणमनमें ज्ञानका Leading part है। यह ज्ञान Leader है। ज्ञान गोता खा जाये तो सभी गुण उलटे चलने लगे, और जीवको नुक़सान हो जाये।

इसलिये ऐसा कहते हैं कि अज्ञान छोड़नेके लिये अज्ञानीका आश्रय छोड़ना चाहिये। ज्ञानप्राप्तिके लिये ज्ञानीका आश्रय करना चाहिये। यह बात सहज ही समझमें आये वैसी है। फिर भी जीव लोकलज्जादि कारणोंसे वैसा फेरफार नहीं कर सकता है तब तक वह स्वच्छंदसे भटकता है, और अपनी इच्छा अनुसार धर्मसाधन करके भटकता है। उन्होंने दो बात ली हैं। इसलिये पाँचवे (वचनामृतमें) ऐसा कहा कि जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छासे, यानी आज्ञानुसार नहीं चला जाये, तब तक अज्ञानकी निवृत्ति - अज्ञानका नाश होना संभव नहीं है। यह बात स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष ज्ञानी और उनकी आज्ञा पर चलना, इसके अलावा अज्ञानका नाश होनेका दूसरा कोई सरल उपाय नहीं है। ऐसा नहीं है कि शास्त्र पढ़े इसलिये अज्ञानका नाश हो जायेगा। अज्ञानका नाश होनेके लिये ज्ञानीकी आज्ञामें चलना यह एक ही उसका उपाय है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! ये जो प्रत्यक्ष (ज्ञानी) पर ज़ोर दिया है, उसका थोड़ा स्पष्टीकरण देंगे ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उसका कारण है कि परोक्ष आज्ञाएँ तो शास्त्रमें हैं। शास्त्र भी ज्ञानियोंने लिखे हैं और परोक्ष आज्ञाएँ तो शास्त्रमें हैं - यह आखिरमें कहेंगे। बारहवें (वचनामृतमें) देखो ! '**शास्त्रमें कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष है**' बारहवें वचनमें है। '**और वे जीवको अधिकारी होनेके लिये कही है...।**' यानी पात्र होनेके लिये कही है। परंतु '**मोक्षप्राप्तिके लिये ज्ञानीकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करना चाहिये।**' यह बात उन्होंने अलगसे कही है। वरना कोई-कोई जीव ऐसा संतोष भी लेते हैं कि जो महाज्ञानी हैं ऐसे आचार्योंके शास्त्र विद्यमान हैं, जो हम पढ़ते हैं तो ज़रूर इससे हमारा आत्मकल्याण हो जाना चाहिये। परंतु वह परोक्ष आज्ञा है, उसे आत्मकल्याणके हेतुसे पढ़ा जाये तो अवश्य पात्रता प्रगट होवे। परंतु मोक्षमार्गमें प्रवेश करना हो तो, वह प्रत्यक्ष ज्ञानीकी आज्ञा बिना मोक्षमार्गमें प्रवेश नहीं होता। अथवा प्रत्यक्ष ज्ञानीके आश्रय बिना (मोक्षमार्गमें प्रवेश) नहीं होता है उसका कारण क्या ?

यहाँ प्रश्न उठना चाहिये कि उसका कारण क्या ? ऐसा क्या है उसमें ? क्या रहस्य है ? क्या भेद है ? शास्त्रमें भी ज्ञानी लिख गये हैं और वह भी कोई बड़े-बड़े ज्ञानी लिख गये हैं। प्रत्यक्ष ज्ञानी तो आचार्यसे कम भी हो सकते हैं, जैसे कि कृपालुदेव गृहस्थ थे जबकि आचार्य तो त्यागी थे। छट्ठे-सातवें गुणस्थानवर्ती थे। कृपालुदेव चतुर्थ गुणस्थानवर्ती थे। प्रत्यक्ष ज्ञानी पर क्यों इतना ज़ोर देते हैं? (इसका कारण यह है) कि आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये कुछ एक जो Practical side हैं, वह शास्त्रमें-लिखावटमें आना संभवित नहीं है। इसलिये उन्होंने ऐसा कहा कि जिनागम आदि शास्त्र भी ऐसा कहते हैं कि ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना। प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना, ऐसी आज्ञा शास्त्र भी करता है। शास्त्र इससे विरुद्ध बात नहीं करता।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! परोक्ष ज्ञानी जो हो गये इनकी इच्छामें कैसे चला जा सकता है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, (वे) मौजूद नहीं है तो इनकी इच्छा कहाँ रहेगी ?

मुमुक्षु :- भाईश्री ! एक जगह ऐसा पढ़ा था कि परोक्षको प्रत्यक्षरूप मानना।

पूज्य भाईश्री :- वह बात देखने पर ही बराबर तो नहीं लगती। परोक्ष है सो परोक्ष है और प्रत्यक्ष है सो प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्षका कोई Alternative इस जगतमें है नहीं ! प्रत्यक्षका कोई Alternative नहीं है। उसका एक बहुत बड़ा समर्थ दृष्टांत यह है कि हमारे विश्वमें जो महासत्ता है, जैसे कि अमरिकाके President हैं, रशियाके President हैं, ब्रिटनके President हैं, वे लोग Communication साधन इस्तमाल करके, एक दूसरेके संपर्कमें रहकर कोई भी निर्णय ले सकते हैं; इसमें प्रत्यक्ष Meeting करनेकी क्या आवश्यकता है ? Terrorist (आतंकवादी) का जमाना है। अमरिकाके President को बीच बाज़ार मारा जा सकता है, खून किया जा सकता है, जैसे की केनेडीको मारा था। यानी कि घरसे बाहर निकलनेमें इन लोगोंको जोख़िम है। फिर भी उनको सिर्फ घरसे बाहर नहीं बल्कि देशसे बाहर निकलकर भी Meeting करनी पड़ती है। प्रत्यक्ष Meeting करनेका क्या कारण है ? अभी इतने सारे Communication के साधन हैं कि आप Screen पर एक-दूसरेसे Meeting कर सकते हो। परदे पर एक-दूसरेको बुलाकर आमने-सामने बातचीत कर सकते हो। (लेकिन) वह भी परोक्ष है, प्रत्यक्ष नहीं है। तो ऐसा क्या है ? कि जो प्रत्यक्षमें (ही) समझमें आता है और परोक्षमें नहीं आता ? ऐसा कुछ है तो सही। और वह Practical knowledge है। ये तो स्थूल दृष्टांत है।

ज्ञानीकी प्रत्यक्षताका सिद्धांत तो बहुत सूक्ष्म है। ज्ञानी प्रत्यक्ष होते हैं तो उनकी परिणति आपको देखने मिलती है। शास्त्रमें परिणति

देखने नहीं मिलती। शास्त्रमें शब्द और शब्दका वाच्य समझना रहता है। प्रत्यक्ष कुछ नहीं दिखता। जब कि प्रत्यक्ष ज्ञानीमें ज्ञानीकी परिणति - जागृत चैतन्यकी चेष्टा आपको देखने मिलती है। आत्मजागृति क्या ? आत्मज्ञान क्या ? आत्माका अनुभव क्या ? यह बात जो है, वह सबसे अधिक रहस्यमय विषय है, Top secret (है)। अध्यात्मका एक Top secret है। जिसका कोई Alternative नहीं है। और इस परिणतिमें जो आत्मरस है वह (दूसरेके) आत्मरसको पैदा करता है। कोई भी तीव्र रस जो है वह दूसरेके रसको उत्पन्न करता ही है। जहाँ बहुत खुशीका वातावरण हो वहाँ सब हँसते हैं। कोई मर गया हो और जहाँ शोकान्वित वातावरण हो वहाँ नया आदमी जायेगा तो वह रोने लगेगा। वहाँ वह हँस नहीं सकता। क्योंकि वहाँ सबके चेहरे पर उस प्रकारका रस चल रहा है। वैसे ज्ञानीको जो आत्मरस है वह प्रगट होता है। उनके सानिध्यमें उनके वचन, उनकी चेष्टामें वह देखनेको मिलता है। उसका कोई Alternative नहीं है। और उससे जो ज्ञानप्राप्ति है अथवा उसके निमित्तसे परिणमनकी जो उत्पत्ति है, वह जो प्रसंग है, वह प्रसंग बिना प्रत्यक्षता बननेकी संभावना नहीं है। ज्ञानीको ज्ञानवेदन है और वैसे ज्ञानवेदनकी उत्पत्ति उस ज्ञानवेदनको देखनेवालेको होती है। इसके अलावा ज्ञानवेदनकी उत्पत्ति नहीं होती। (स्वयंके भीतर चल रहा ज्ञानवेदन) दिखाई नहीं देता, आवरित है। ज्ञान ज्ञानका वेदन करता है, यह विषय मालूम नहीं पड़ता। उसके लिये प्रत्यक्ष सत्संग बहुत ज़रूरी है। ये तो Top level की बात हुई।

अब इससे निम्न स्तरकी बात ले तो यह जीव कदम-कदम पर भूल करता है। अब इसको यदि प्रत्यक्ष योग मिले (और) वह अपनी बात करे तो उसका उकेल आ जाये। डॉक्टरके पास जाकर ऐसा कहे कि मुझे यहाँ दर्द हो रहा है तो उसका उपाय हो सके, परंतु कहाँ दर्द है यह नहीं बताये, तो क्या होगा ? और वह दवाई

कैसे करेगा ? अगर मरीज़ अपना दर्द नहीं बताये तो डॉक्टर उसका इलाज कैसे करेगा ? यानी वह तो प्रत्यक्ष बिना नहीं होता। इसलिये जिसको दर्द हुआ है उसको Medical books पढ़ना, यह अच्छी सलाह नहीं है, समझदारीवाली बात नहीं है। उसके लिये सीधा Medical store में जाकर अपनी मनचाही दवाई ले लेना, यह भी समझदारीवाली बात नहीं है। उसको तो डॉक्टरके पास जाकर डॉक्टरके Prescription के मुताबिक दवाई लेना आवश्यक है। यदि डॉक्टर ही नहीं होगा तो उक्त दोनों बातें काममें नहीं आयेगी - न तो दवाई काममें आयेगी, न तो पुस्तक काममें आयेगी। ऐसी बात है। अतः शास्त्र भी यही कहते हैं कि तुम प्रत्यक्ष ज्ञानीके आश्रयमें जाओ, तभी तुम्हारा छुटकारा होगा। दूसरे किसी भी प्रकारसे छुटकारा नहीं होगा, ऐसी यह परिस्थिति है। क्योंकि Practical knowledge का क्या ? शास्त्रोंमें सब Theoretical knowledge है। सब Theory - व्याख्या है। उसमें Practical knowledge जो है वह नहीं आता, लिखा नहीं जाता। ये बात वे स्वयं करते हैं। और इसलिये शास्त्रोंने भी; सर्व जिनागम आदि शास्त्रोंने भी यह बात कही है - यहाँ वह बात है ऐसा उन्होंने कहा है। शास्त्रकी साक्षी भी दी है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! कृपालुदेवने एक जगह लिखा है न ? कि तू मानमें चढ़ गया तो प्रत्यक्ष ज्ञानीके बिना कौन दिखायेगा, कि ये तुझे यहाँ मान हो रहा है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, दृष्टांतरूपसे ऐसा ले सकते हैं कि, कोई बुद्धिशाली आदमी हो, क्षयोपशम ज्ञान अच्छा हो, और शास्त्र पढ़ते-पढ़ते उसको कुछएक बात ज्यादा समझमें आयी हो, तो ऐसी जो नयी बातें उसकी समझमें आयी, उसका यदि मान चढ़ गया, तो शास्त्र कैसे उसको ऐसा कहेगा कि मुझे पढ़ते हुए, मेरा पठन करते-करते ही तुझे मान चढ़ गया है, यह दोष तुझे छोड़ना चाहिये। यह शास्त्र कैसे कहेगा ? जब कि ज्ञानीको तो तुरंत मालूम पड़ता

है कि ये किस भावसे बात करता है ? ये मैं कुछ जानता हूँ, उस भावसे बात करता है। ये तो उसको पहले छोड़ना होगा कि, मुझे समझमें आता है - ये बात तो तू पहले ही छोड़ दे। प्रथम जिज्ञासामें आ जाओ। इसतरह कुछएक बातें ऐसी हैं कि, प्रत्यक्ष ज्ञानीके बिना उसमें सुधार होना असंभवित है। और दूसरे-दूसरे प्रकारसे जीव गलत रास्ते पर चढ़ जाये, ऐसी पूरी शक्यता है। इसलिये ज़ोर देकर कहा है कि, '**जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार, अर्थात् आज्ञानुसार न चला जाये, तब तक अज्ञानकी निवृत्ति होना संभव नहीं है।**' यह सिद्धांत तीनोंकाल कायम है। पाँचवें वचनमें उन्होंने बहुत सैद्धांतिक बात की है।

(आगे कहते हैं) ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन करनेकी तैयारी किसकी होती है ? कौन योग्य है ? कि '**ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वह कर सकता है कि जो एकनिष्ठासे, तन, मन, और धनकी आसक्तिका त्याग करके उसकी भक्तिमें जुट जाये।**' तन, मन, धनका त्याग करके नहीं। ऐसा नहीं कहा कि तू घर, व्यापार, धंधा छोड़ दे और ज्ञानीकी भक्तिमें जुट जा ! ऐसा नहीं कहा। उसकी 'आसक्ति' छोड़ (देनेकी बात की है।) संयोग, संयोगकी ज़गह रहने दे। उसमें तुझे जो अपनत्वके कारण प्रेम है, राग है, उसे छोड़नेकी बात है। अपनत्व छोड़नेकी बात है, स्वामित्वबुद्धि, अधिकारीपना छोड़नेकी बात है। प्रारब्धयोगसे जो भी संयोग मिला है, उसने अर्थात् प्रारब्धने तुझे Manager के रूपमें Appoint किया है, ऐसा समझ लों। You have to well manage और कुछ नहीं। Manager होता है वह अच्छी तरह Manage करता है परंतु Manager होता है वह सेठ नहीं बन जाता।

इसप्रकार तू आसक्तिका, अपनत्वका, स्वामित्वका त्याग करके भक्तिमें जुट जा ! शुष्क भक्तिमें जुड़ना ऐसा भी नहीं। 'भाई ! मैं तो ज्ञानीके गुण गाया करता हूँ, मुझे इनके गुणोंका गुणग्राम करना

बहुत अच्छा लगता है, इसलिये मैं गाता हूँ - ऐसे नहीं। जब कि तन, मन, धनकी आसक्ति उतनी की उतनी रखता हूँ, उस प्रकारसे नहीं। ये Conditional बात है। ज्ञानीकी भक्तिमें जुटनेमें ये शर्त है, Conditional बात है।

इस तरह बातको उन्होंने रखी है। कि ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वही कर सकता है। वरना (जीव) ज्ञानीका संग कर सकता है, ज्ञानीकी भक्ति कर सकता है, गुणग्राम कर सकता है परंतु आज्ञाका आराधन नहीं कर सकता। क्योंकि ज्ञानी प्रतिबंध छुड़ाते हैं। ज्ञानीकी आज्ञा भवभ्रमणमें जानेके लिये प्रतिबंधरूप है, रोकती है उसे कि, तुझे भवभ्रमण नहीं करने देंगे। ऐसी बात उन्होंने दूसरे पत्रमें ली है (पत्रांक - ५११) कि ज्ञानीकी आज्ञा भवमें जानेके लिये प्रतिबंधरूप है। (आज्ञा) अवरोध करती है, तुझे भवभ्रमणमें नहीं जाने देगी। तू परिभ्रमणमें क्यों जाता है ? कि तन, मन, धन आदि जो कुछ संयोग हैं, उस पर तेरी जो स्वामित्वकी पकड़ है, वह तुझे परिभ्रमण करवाती है। अपनत्व होगा वहाँ तुझे कर्तृत्व होगा, भोक्तृत्व होगा, आधारबुद्धि होगी, सब हो जायेगा, और वही परिभ्रमणका कारण है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! स्वामीत्व कैसे छोड़ा जाये ?

पूज्य भाईश्री :- बहुत सीधी सादी बात है, कि जहाँ तुम स्वयं हो नहीं, और जहाँ स्वयंकी सत्ता नहीं चलती वहाँ स्वामीत्व करना, यह तो देखत भूल है। अपनी हयातीकी मर्यादा अपने द्रव्य, गुण, पर्यायमें समाप्त होती है। इससे (आगे) अपनी कोई हयाती नहीं होनेसे (अपनी) सत्ता नहीं है। सत्ता नहीं है मतलब खुदकी कोई चलनेवाली नहीं है। यह एक स्पष्ट वस्तुस्थिति है। अब जहाँ खुदकी सत्ता नहीं है वहाँ अपनी सत्ता भोगना, यह तो देखत अपराध है। हमारी बात ही लिजीये न ! पड़ोसीके घरमें अपनी चलाने जाये तो ? चलती है ? (पड़ोसी) धीरेसे कह देगा कि, 'भाई ! आप माथा मत लगाईये, हमारे घरमें आप हस्तक्षेप मत करो।' तो वह कहेगा कि लेकिन

मैं तो आपके हितकी बात कह रहा हूँ। तो कहता है `बात तो आपकी सही है लेकिन आप अपनी मर्यादामें रहकर बात किजीये, सत्ता चलानेकी बात मत करो।' यह जीव क्या करता है ? कि जो पदार्थ स्वतंत्र पदार्थ हैं - दूसरे जीव व दूसरे परमाणु, वे जगतके स्वतंत्र पदार्थ हैं - उसके ऊपर अपनी सत्ता, अपना अधिकार जताना चाहता है, और जहाँ अधिकार नहीं चले वहाँ उसको कषाय होता है। (और सत्ता) नहीं चलेगी ये बात नक्की है। अनंतकालसे अनंत जीवोंने पर पदार्थ पर Control करनेके लिये अनंतानंत पुरुषार्थ किया है। फिर भी एक परमाणु या एक जीव पर भी कभी किसीकी सत्ता नहीं चली। अर्थात् जो वस्तु अशक्य है, उसे शक्य करनेका मिथ्या प्रत्यन करता है इसलिये स्वयं दुःखी होता है। दुःखी होनेका कारण ही यह है।

परदेशमें ये जो Multi-millionaire लोग हैं वे बैचेन क्यों रहते हैं ? क्योंकि उसने जितना अपने (संयोगोंमें) रस लिया है, परपदार्थ पर स्वामीत्व करनेका जो रस लिया है, उसने आत्माका जो शांत स्वभाव है उसमें Disturbance उसने खुदने ही खड़ा किया है। Disturbance तो स्वयंने ही खड़ा किया है। लेकिन वह इस विज्ञानसे बेखबर है कि मेरी शांतिमें Disturbance क्यों हुआ ? मेरे पास सबकुछ होते हुए भी मुझे चैन (क्यों) नहीं पड़ता है ! (ज्ञानी कहते हैं) कि नहीं पड़नेवाला है। यह सब मेरा है (यह मान्यता) ही तेरी शांतिको Disturb करती है। Disturbance तो उसीसे होता है। तेरे ही परिणाम करते हैं। वस्तु वस्तुमें रही है, और अगर तेरी होती तो तेरे साथ रहती। परंतु शरीरका एक परमाणु या दूसरे संयोगोंका कोई परमाणु या दूसरा कोई जीव साथमें तो रहता नहीं। अमुक काल पर्यंत संयोग है, उसका वियोग हो जाता है। कोई साथमें नहीं रहता। अतः उसे साथमें रखनेकी मेहनत करना ही व्यर्थ है और झूठी है। ठीक है, कुदरती व्यवस्था है और जो संयोग हुआ सो हुआ। उन संयोगोंके

बीच ममत्व सहित रहना या ममत्व छोड़कर रहना, इसका आधार खुदकी समझ पर है और कुछ नहीं है।

सुखी-दुःखी होनेमें समझ और नासमझका ही Problem है। समझसे सुखी होता है और नासमझसे दुःखी होता है। ज्ञानी भी उन संयोगोंमें रहते हैं। तीर्थंकर जैसे ज्ञानी चक्रवर्ती थे। शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ - तीन चक्रवर्ती हुए। बारह चक्रवर्तीमेंसे तीन तो ये थे। देवलोकके इन्द्र ज्ञानी हैं। सौधर्म इन्द्र एकावतारी हैं। वे दैवी वैभवके बीच रहते हैं लेकिन अपनत्व छोड़कर रहते हैं, इसलिये उन्हें कोई तकलीफ़ नहीं है। परिभ्रमण होनेकी तकलीफ़ नहीं है।

संयोग तो संयोग है। (संयोगमेंसे) अपनत्व छोड़ने पर उसका रस छूटता है। तकलीफ़ तो जीवको इसकी है। भीतरमें जो तकलीफ़ है वह इसकी है कि अपनत्वके कारण जो रस है, वह रस मीठा लगता है इसलिये जीव उसको छोड़ नहीं सकता। परंतु उसका फल उसको मालूम नहीं। यह मीठा ज़हर है, ये जो रस लेते हैं वह मीठा ज़हर है और उसका फल बहुत खराब है, यह जीवको मालूम नहीं है। अतः Instant उसको जो अच्छा लगता है, उसे वह छोड़ नहीं सकता।

हमारे एक संबंधी थे. उनको छोटी उम्रमें - ३८ वर्षकी उम्रमें गलेका Cancer हो गया। गलेका Cancer इसलिये हुआ क्योंकि (खुद) Chain-smoker था, साथ-साथ चायकी भी उतनी आदत थी। अफ़ीम डाली हुई चाय पीने जाता था। पूरे दिनमें ८, १०, १२ कप पीनेको चाहिये। वहाँ एक ज़गह ऐसी चाय मिलती है। चायमें अफ़ीमके पत्ते डालनेसे थोड़ा Toxication हो जाये और फिर वह उसको ही चाहेगा। पूरा दिन बीड़ी और चाय। नहीं खाने से चलेगा लेकिन बीड़ी और चाय उसको चाहिये। छोटी उम्रमें Cancer हो गया। उसको इतनी तलब लगती थी। Doctor ने कहा कि `अगर बीड़ी पी लिया तो समझना मर गये।' तो वह भाई शौचालयमें जाकर बीड़ी पी लेता

था। बास आने से उसकी स्त्री कहती `अरे ! डॉकटरने मना किया है।' तब वह कहता `वैसे भी पाँचमकी छट्ठ कहाँ होनेवाली है ?' क्या कहा ? कि `मैं यदि पाँचमके दिन मरनेवाला हूँ तो उसकी छट्ठ कहाँ होनेवाली है ? मैं तो पाँचमके दिन मर ही जानेवाला हूँ, मुझे बीड़ी पी ने दो !' संसारमें जीवके अपनत्वके रसकी हालत ऐसी ही है। कल (इस अपनत्वका) कितना भयंकर परिणाम आयेगा यह नहीं देखता ! आज तो मुझे रस आता है न इसमें (ऐसा मानकर) वह रस ले लेता है। क्योंकि उस प्रकारका Toxication हो चुका है। अनंतकालसे - अनादिकालसे अपनत्व कर-करके, कर-करके तो भटक रहा है। अब उसे छोड़ना थोड़ा मुश्किल पड़ रहा है।

(अतः यहाँ कहते हैं) **`एकनिष्ठासे...'** देखो ! छट्ठे (वचनमें) ऐसा लिया (ज्ञानीकी आज्ञाका) आराधन एकनिष्ठासे करेगा तो ही छूट सकेगा, वरना नहीं छूट सकता। इतना बल पहलेसे ही आना चाहिये।

हमारी अभी रास्तेमें ही चर्चा हुई थी कि परिभ्रमणसे छूटनेकी तीव्र भावना वेदनाके माध्यमसे व्यक्त होती है । किससे ? परिभ्रमणकी चिंतना और वेदनासे व्यक्त होती है। वह (वेदना) जब तक जीवको नहीं आती है तब तक वास्तवमें परिभ्रमणसे छूटनेका जो पुरुषार्थ और उपाय है, वह जीव नहीं करता है। इसलिये कृपालुदेवने यह बात लिख डाली कि, भूतकालमें, वर्तमानमें, या भविष्यमें किसीको ऐसा हुए बिना मार्ग सूझनेवाला नहीं है। छूटनेका जो मार्ग है, मुक्तिका मार्ग है वह (सूझनेवाला नहीं है) । (परिभ्रमणकी वेदना नहीं आयेगी तब तक) मार्गकी दिशाकी सूझ भी आनेवाली नहीं है, और वैसा होनेके पश्चात् क्या करना, यह समझमें आता है। इसके पहले क्या करना ? यह (जीवने) नक्की कर लिया है। जीवने स्वच्छंदसे - अपनी मनमानीसे (नक्की कर लिया है कि) ये करना और ये नहीं करना, ये करना और ये नहीं करना।

(परिभ्रमणकी वेदना नहीं आ रही है) उसका दूसरा पहलू स्पष्ट

करे तो जीवको दरअसल परिभ्रमण प्रिय है। अभी जीवको परिभ्रमण प्रिय है। (और) जब प्रिय है तो परिभ्रमण करता रहेगा। इस एक विषय पर दो पत्र लिखे हैं - ८६ नंबरका पत्रांक और पत्रांक - १९५। जिसको मृत्युसे छूटनेके उपायकी चाहत है, जिसको इच्छा है, मार्गकी जिसको इच्छा है, उसको (सब) धर्मसाधनके विकल्पोंको छोड़कर पहले ये करना चाहिये। आप सबको यही खोजना है, कि कैसे (इसकी नीव डाली जाये ?) आप सबको यही खोजना है, ऐसा लिखा है कि नहीं ? पोस्टकार्ड लिखा है उसमें एक-एक बात पर्याप्त महत्वके साथ लिखी है। एक-एक वाक्य बहुत सोच-समझकर लिखा है। इसकी बहुत बड़ी कीमत है। उसका स्थान समझमें आये, यथास्थानमें वह बात (परिणमनमें) आये तो इसकी बहुत बड़ी कीमत है। ऐसा हुए बिना कोई जीव मुक्त हुआ ही नहीं है। उन्होंने भी अपने अनुभवसे ही लिखा है, और सभी ज्ञानियोंके अनुभवको देखा जाये तो ऐसा ही मालूम पड़ता है। कोई इसके बिना ज्ञानी हुए हो ऐसा है नहीं। अतः उन्होंने जो नीवकी बात कही है, वह अनुभवसिद्ध है। अनुभवसे सिद्ध हुई बात है।

ये (परिभ्रमणसे छूटनेकी वेदना) उदासीनताको उत्पन्न करती है। जहाँ अपनत्व है वह कमज़ोर पड़ जाता है। प्रथम दरजेमें ही अपनत्व कमज़ोर पड़ जाता है। जैसे कि ये (सारे संयोग) परिभ्रमणके निमित्त हैं। जिसमें मैं रस लेता हूँ, जिसकी मुझे आसक्ति है, वे परिभ्रमणके निमित्त हैं। उपादानमें मेरा भाव है। निमित्त भले ही निमित्तकी जगह हो, मुझे भीतरसे बदल जाना होगा। खुदको Turn लेना है।

आगे किसीको विकल्प आये कि ये ज्ञानीकी भक्तिमें जुड़नेकी बात करते हैं और वे स्वयं ज्ञानी होकर बात करते हैं, इसलिये बात किसी दूसरे ढंगसे नहीं चली जाये, इसलिये स्पष्टीकरण करते हैं कि **`यद्यपि ज्ञानी भक्तिकी इच्छा नहीं करते,...'** इच्छा नहीं करते ऐसा इसलिये लिखा है कि उन्हें कोई इसकी जरूरत है,

सो बात नहीं है। कोई उनकी भक्ति करे, ऐसी जरूरत ज्ञानीको नहीं है, क्योंकि वे तो वीतराग मार्ग पर जा रहे हैं। उन्हें किसीकी अपेक्षा नहीं होती और अपेक्षा होती है वह ज्ञानी नहीं होता। इस प्रकार अपेक्षा छोड़नेका पुरुषार्थ तो मुमुक्षुकी भूमिकामें करता है तब जाकर ज्ञानी होता है। कोई भी अपेक्षा दुःखका कारण है। क्योंकि अपेक्षा दूसरे पदार्थकी होती है, जबकि उसका परिणमन बिलकुल स्वतंत्र है। सौ के सौ प्रतिशत स्वतंत्र है। उसकी अपेक्षा रखना यह जीवकी बड़ी भूल है। वह उसके अनुसार परिणमन करेगा, तू अपनेमें रहे तो तेरे खजानेमें कौन सी कमी है ?

मुमुक्षु :- भक्तिमें आता है न ! `तू किण बाते अधूरा' ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, `प्रभु ! तू सब बाते पूरा... परकी आश कहाँ करे प्रीतम ! तू किण बाते अधूरा...' तू किसी भी बातसे अधूरा नहीं है। तेरेमें बेहद आनंद है। तेरेमें बेहद सुख-शांति है, और इसके अलावा तो तुझे कोई प्रयोजन है नहीं, वह तेरेमें भरा है लेकिन बेभानपनेमें जीव सुख-शांति और आनंदके लिये परकी अपेक्षा रखता है। (परंतु) सुख मिलनेके बजाय दुःखकी प्राप्ति होती है। ऐसा है।

इसलिये ऐसा कहा कि, `**यद्यपि ज्ञानी भक्तिकी इच्छा नहीं करते, परंतु मोक्षाभिलाषीको वह किये बिना उपदेश परिणमित नहीं होता,...**' ज्ञानीकी भक्तिमें उपदेश परिणमित होनेकी योग्यताकी प्राप्ति है। योग्यता बिना कहीं भी ज्ञानप्राप्ति नहीं होती। योग्यता बिना ज्ञानप्राप्ति नहीं है। क्योंकि ज्ञानकी बातें तो प्रसिद्ध हैं, लेकिन योग्यता आये बिना ज्ञानप्राप्ति नहीं है। इसलिये जीवको अपनी ओर देखना पड़ता है कि मेरी योग्यता ज्ञानप्राप्तिकी है कि नहीं ? और (मेरी योग्यता होगी) तभी ज्ञानप्राप्ति होगी। अतः भले ही मोक्षका अभिलाषी जीव हो, तो भी ज्ञानीकी भक्ति किये बिना उसको ज्ञानीका उपदेश परिणमित नहीं होगा, ऐसा है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! आपने कहा कि परिभ्रमणकी वेदना Start

होनेके बाद ही मोक्षमार्गमें प्रवेश होता है ?

पूज्य भाईश्री :- (हाँ) तत्पश्चात ही मोक्षके मार्गकी दिशाका अल्प भान आता है अभी तो, इसके पहले तो भान भी नहीं आता। ऐसे शब्द उन्होंने इस्तेमाल किये हैं। जब तक जीव परिभ्रमणकी चिंतना और वेदनामें नहीं आता और इसके उपायके लिये तरसता नहीं है, तब तक मार्गकी दिशाका अल्प भान होना भी संभवित नहीं है, ऐसे शब्द हैं। क्यों (ऐसा है ?) क्योंकि उसको वास्तवमें छूटना है यह बात तब ही पक्की होती है, वहाँ तक पक्की नहीं होती। हमलोग नहीं कहते हैं भाई ! बातें तो कोई चाहे कितनी भी करे ले परंतु सही वक्त आने पर मालूम पड़ता है। सही वक्त आने पर मालूम पड़ता है कि भाई कहाँ खड़ा है।

हमारे यहाँ ऐसा एक प्रसंग हुआ था। (ऐसा विचार किया) कि मुंबईमें एक मंदिर बनाया जाये। कहाँ ? मुंबईमें। मुंबईमें मंदिर करना हो तो कम से कम ६० से ७० लाखका बजट होता है, कितना ? ६०, ७० लाखका बजट कमसे कम होता है। Construction हम १५ लाखका गिने, परंतु वहाँ जमीनके दाम इतने हैं कि ५० लाखके करीब तो जमीनमें चाहिये। (उन्होंने) कहा अरे ! हो जायेगा इसमें क्या है ? इसकी व्यवस्था तो हो जायेगी। मुझे लगा कि आदमी बहुत जोशवाला लगता है, कोई Source होगा। उनकी खुदकी परिस्थिति नहीं दिखती थी, परंतु कोई अच्छा Source होगा। (उन्होंने कहा) उसमें क्या ? व्यवस्था तो हो जायेगी । और गुरुदेवश्रीका नाम बड़ा, इसलिये गुरदेवश्रीकी कृपासे हो जायेगा, ऐसा कहा। लेकिन एक १०-२० हज़ार भी उनके नहीं आये, उनके खुदके बोले हुए। उतना पैसा आना भी मुश्किल हो गया था। उलटा-सुलटा खर्च करे लेकिन वह १०-२० हज़ार देनेकी बात ही नहीं। इस तरह आदमीका पता कब चलता है ? कि वक्त आने पर ही मालूम पड़ता है। कि आदमी बोलता है क्या ? भाव कितने दर्शाता है ? और सही वक्त आने

पर वह क्या कर सकता है ? इसके पहले पता नहीं चलता।

वैसे यहाँ परिभ्रमणसे छूटना है, परिभ्रमणसे छूटना है, जन्म-मरण नहीं चाहिये, ये सब बात तो ठीक है, परंतु इसके लिये तुझे जिस जगह आना चाहिये, उस जगह जब तक नहीं आयेगा तब तक वह बातका स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिये (पत्रांक - १९५) उन्होंने लिखा है कि मार्गकी दिशाका अल्प भी भान नहीं होगा। क्योंकि वह अंतरसूझका विषय है। (तब तक) सूझ ही नहीं आयेगी, कि मेरे कौनसे परिणाम अहितकारक हैं ? मेरे कौनसे परिणाम हितकारक हैं ? इसकी जो सूझ आनी चाहिये, ऐसी मतिज्ञानकी जो निर्मलता है, वह निर्मलता इस वेदना और तड़पनके बिना नहीं आती ।

दूसरे प्रकारसे विचार करे तो परिणमनमें अभिप्रायका Role बहुत बड़ा है। इस जीवका संसारकी उपादेयताका और उपासनाका अभिप्राय अनादिसे गाढ़-अवगाढ़ हो चुका है। अतः वह अभिप्राय बदले बिना जीवने जो-जो धर्मसाधन किये उसमें संसारकी प्राप्ति हुई, कहीं भी मोक्ष नहीं आया। ये अभिप्राय सर्व प्रथम बदलता है - इस वेदनाके कालमें। अंतरमेंसे दुःखपूर्वक वह बात उठती है कि अब किसी भी कीमत पर संसार नहीं चाहिये, तभी वह अभिप्राय बदलता है कि, अब मुझे मोक्षकी ही उपासना करनी है। उसीकी मुझे उपादेयता है। एक मोक्षके लिये ही प्रयत्न करना है। (कृपालुदेवने) २५४ पत्रांकमें क्या लिया ? मोहासक्तिसे अकुलाकर एक मोक्षके लिये ही पुरुषार्थ और प्रयत्न - प्रयास करनेवाला जीव - मुमुक्षु है। अर्थात् उन्होंने मोक्षाभिलाषीका ऐसा स्वरूप लिया है। उस स्वरूपमें जब तक खुद नहीं आये, तब तक वास्तवमें उसको संसार छोड़ना है और मोक्ष चाहिये - यह बात पक्की नहीं होती है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! परिभ्रमण किसका हो रहा है ?

पूज्य भाईश्री :- जीवका।

मुमुक्षु :- तो अभी जीवने जीवको तो नहीं जाना, तो ऐसेमें उसकी वेदना कैसे आयेगी ?

पूज्य भाईश्री :- जीवने भले जीवको जाना नहीं, परंतु दुःख तो भोगता है न ? दुःख तो भोगता है कि नहीं ? दुःखका अनुभव है कि नहीं ? तो यहाँ परिभ्रमणसे मुक्त होना मतलब दुःखसे मुक्त होना है। परिभ्रमणके दुःखोंसे मुक्त होना है। परिभ्रमणके दुःख प्रत्यक्ष हैं। खुदको भी रोग होता है, खुदको भी मृत्यु आनेवाली है। दूसरे तिर्यंच जीव तो नज़रके सामने दिखते हैं। नरकगति नहीं दिखती, परंतु तिर्यंचगति तो अच्छी तरह दिखती है। एकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय जीव तो कितने दुःखमें तड़पते हैं ! हमने अभी एक कुत्तेका बच्चा देखा, पिल्ला था, महिने - दो महिनेका होगा। दर्दपूर्वक आवाज़ करता हुआ पड़ा था। जैसे ही नीचे देखा तो पीठमें इतना बड़ा घाव पड़ा था, उसमें पिल्लू हो गये थे। सड़ गया था। उसको तो डॉकटरकी दवाई करनेकी परिस्थिति है नहीं। हमलोग तो थोड़ा कुछ होने पर उसका इलाज कर लेते हैं। वह किसके पास जाये ? इतना बड़ा छिद्र हो गया था ! अंदर बड़े-बड़े, इतने बड़े-बड़े पिल्लू थे। पिल्लू उसको खाते थे। भीतरकी मिट्टी को खाते थे। अब ये सारे दुःख नज़रके सामने तो दिखायी देते हैं, फिर भी और देखना हो तो किसी Hospital में चक्कर मार लेना। मनुष्यगतिके दुःख देखने हो तो Hospital में एक चक्कर मारनेसे पता चल जायेगा कि लोग कैसे-कैसे रोगसे पीड़ित हैं। तिर्यंच किस तरह पीड़ित हैं। एक कुत्ता होता है (उसे) भूख लगती है तो ५-२५ घर घूमने पर भी पेट भरे उतना खाना नहीं मिलता है। उसके पास कोई व्यवस्था नहीं है कि शामको क्या खाऊँगा ? सुबह क्या खाऊँगा ? कब क्या खाऊँगा ? ऐसी परिस्थिति क्यों हुई ? वह भी जीव है। वह भी जीव है (तो) उसकी ये परिस्थिति क्यों हुई ? बिना कारण कोई कार्य नहीं होता। और वस्तुस्थिति नज़रके सामने है और अगर जीवको दुःखसे छूटना है उसका अर्थ ही यह है कि उसे परिभ्रमणसे छूटना

है।

अतः जीवका स्वरूप पहले मालूम हो बादमें परिभ्रमणकी वेदना आयेगी, ऐसा नहीं है। परिभ्रमणकी वेदना आये तो जीवका जो निर्मल स्वरूप है, वह ज्ञान निर्मल होकर जानने लगेगा। क्योंकि जीवका मूल स्वरूप निर्मल है, मलिन नहीं। और उस निर्मल स्वपदार्थको जाननेके लिये मतिश्रुतज्ञानकी निर्मलता अपेक्षित है। उस मतिश्रुतज्ञानकी वर्तमानमें निर्मलता नहीं है, अनादिसे मलिन है। उस मलिनताको दूर करनेके लिये किस प्रकारका Chemical चाहिये ? कैसा Detergent चाहिये ? यह बात कृपालुदेवने अपने अनुभवसे कही है। कि तू सर्वप्रथम इस ज़गह पर आ। जब तक यह परिस्थिति नहीं होगी तब तक तेरा अभिप्राय नहीं बदलेगा। तेरे ज्ञानकी निर्मलता नहीं होगी। तुझे सूझ नहीं आयेगी, कि क्या करना और क्या नहीं करना ? (यह वेदना आनेके) बाद क्या करना, वह समझमें आता है, ऐसा लिया है।

अतः बहुत व्यवस्थित बात की है। पूरी योजना अनुभव सिद्ध और बहुत व्यवस्थित है। ये तो आपको हज़ारों शास्त्र पढ़ने पर भी समझमें नहीं आये, ऐसी योजना उन्होंने प्रसिद्ध कर दी है। यह उनका (कृपालुदेवका) बहुत बड़ा उपकार है। ज्ञानी तो बहुत हुए हैं, बहुत सी बातें कर गये हैं परंतु मुमुक्षुकी भूमिकामें से अनंतकालसे जीव बाहर नहीं निकला। अनंतकाल उसीमें निकाला है। ज्ञानदशामें अनंतकाल नहीं जायेगा। आत्मज्ञान होनेके पश्चात् तो असंख्य समय है, अनंतकाल नहीं। अनंतकाल जो जाता है वह पहले जाता है, ज्ञानप्राप्तिके पहले जाता है और उसमें जीव बहुत गोते खाता है। मोक्षमार्ग तो चौदह गुणस्थान (पर्यंत) व्यवस्थित है, खुल्ला है। पहले चतुर्थ गुणस्थान, फिर पंचम गुणस्थान फिर छठा-सातवाँ आता है। इसप्रकार मोक्षमार्गमें आरोहण हो सकता है। यह बात बहुत व्यवस्थितरूपसे शास्त्रमें है। मुमुक्षुकी भूमिकामें मोक्षमार्ग तक पहुँचनेकी

व्यवस्था बनाना, कहना यह तो गहरे अंतर-संशोधनका विषय है। बहुत अनुभवका विषय है, और उन्होंने बहुत अनुभवसे, अनेक भवके अनुभवके बाद, इस बातको निष्कर्षके रूपमें रखी है। ऐसे ही नहीं कह दी। खुदको जातिस्मरण था और बहुतसे भवोंके अनुभवपूर्वक उन्होंने बात रखी है। और वह भी यहाँ Outline है। Underline में तो प्रत्येक Stage में जीव कहाँ-कहाँ भूल करता है, यह तो प्रत्यक्ष ज्ञानीके बिना उसका मार्गदर्शन मिल ही नहीं सकता। उस वेदनामें मैं क्यों नहीं आता हूँ ? सबके कारण भिन्न-भिन्न, सबका भूतकाल अलग, सबका इतिहास अलग, सबकी वर्तमान योग्यता अलग-अलग। उसे कैसे कहाँ तक ले आना, पहला अंक कैसे सिखाना ? यह भी सत्संगके बिना, प्रत्यक्ष ज्ञानीके बिना समझमें आये ऐसा नहीं है। ऐसी परिस्थिति है। और इसके बादमें भी कौन-कौनसी भूमिकामें जीव कहाँ गोता खा जायेगा, यह कहना मुश्किल है। उसमें भी उसको प्रत्यक्ष योगकी बहुत जरूरत पड़ती है।

जैसे गंभीर रोगमें Under strict medical supervision treatment लेनी पड़ती है, ऐसा यह विषय है; जबकि उसमें तो एक शरीर रोगसे मुक्त होना है, यहाँ तो अनंतकालके भवरोगसे मुक्त होना है। इतना बड़ा गंभीर रोग है, Chronic हो चुका (रोग है)। इसलिये उन्होंने बहुत ज़ोर दिया है। प्रत्यक्ष ज्ञानी पर जो ज़ोर दिया है इसके पीछे भी उनका अनुभव है। खुद भी (मोक्षमार्गकी प्राप्ति हेतु भूतकालमें) तनतोड़ मेहनत कर चुके हैं, और Fail गये हैं, फिर कोई ज्ञानीपुरुष मिले हैं और खुद सहज मात्रमें मोक्षमार्गमें प्रवेश कर पाये हैं। इस बातका जिक्र उन्होंने पत्रांक - १९४ में किया है। 'इससे हमें ज्ञानप्राप्ति हुई थी।' देखिये ! १९४ पत्र देखो पीछे पासमें ही है। पन्ना - २६४।

'**जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुए बिना...**' अब अचल प्रेमकी व्याख्या

कैसी है, मालूम है ? सब काम एक तरफ छोड़कर जो भाव हो, उसका नाम प्रेम है। सब काम एक तरफ छोड़कर '**...और सम्यक्प्रतीति आये बिना...**' यह सम्यक्प्रतीति आने पर भक्ति उत्पन्न होती है। अतः परमेश्वरबुद्धिपूर्वक, उपकारबुद्धिपूर्वक उसको पूज्यबुद्धि आये बिना '**सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, और आने पर अवश्य वह मुमुक्षु, जिसके चरणारविंदकी उसने सेवा की है, उसकी दशाको पाता है। सर्व ज्ञानियोंने इस मार्गका सेवन किया है, सेवन करते हैं और सेवन करेंगे। ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी,...**' उन्हें भी कोई ज्ञानीपुरुष भूतकालमें मिले हैं तब ज्ञानप्राप्ति हुई है। इसके पहले उन्होंने बहुत इधर-उधर माथा मारा है। थोड़ी मेहनत नही की। (अतः) बहुत भवोंके अनुभवसे उन्होंने यह बात कही है। '**ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी, वर्तमानमें इसी मार्गसे होती है और अनागतकालमें भी ज्ञानप्राप्ति यही मार्ग है।**' (अनागतकालमें यानी कि) भविष्यमें भी। और '**सर्व शास्त्रोंका बोध-लक्ष्य देखा जाये तो यही है। और जो कोई भी प्राणी छूटना चाहता है उसे अखण्डवृत्तिसे इसी मार्गका आराधन करना चाहिये। इस मार्गका आराधन किये बिना जीवने अनादिकालसे परिभ्रमण किया है।** इस मार्गका आराधन नहीं किया तो क्या किया है ? कि जीवने स्वच्छंदरूपी अंधत्वका सेवन किया है। (इस स्वच्छंदका जब तक सेवन करता है) तब तक उस मार्गका उसे दर्शन नहीं होता। जब तक मुझे अपनेआप करना है, मेरी इच्छासे धर्मके क्षेत्रमें प्रवृत्ति करनी है, तब तक स्वच्छंदरूपी अंधत्व है। और यह अंधत्व उसे मार्गका दर्शन करने नहीं देगा। उसको मार्ग नहीं दिखेगा। इसलिये '(**अंधत्व दूर होनेके लिये) जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये, दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये; इस विचारमें अप्रमत्त रहना चाहिये, तो मार्गकी प्राप्ति होकर अंधत्व दूर होता है, यह निःशंक मानें। अनादिकालसे जीव उलटे मार्ग पर चला है।**' उलटे मार्ग पर

चला है इसका मतलब कि व्यापार-धंधा किया है, वैसे नहीं। '**यद्यपि उसने जप, तप, शास्त्राध्ययन इत्यादि अनंतबार किया है;...**' और उलटे मार्ग पर चला है। ऐसा कहते हैं। '**तथापि जो कुछ भी अवश्य करने योग्य था, वह उसने किया नहीं है; जो हमने पहले ही बताया है।**'

'**सूयगडांगसूत्रमें ऋषभदेवजी भगवानने जहाँ अट्ठानवें पुत्रोंको उपदेश दिया है, मोक्षमार्गपर चढ़ाया है वहाँ यही उपदेश किया है।**' अतः उन्होंने क्या कहा ? कि इस कालकी चौबीसीके पहले तीर्थंकरने भी यही मार्ग बताया था, यही रास्ता दिखाया था। ऐसा कहते हैं।

'**हे आयुष्यमानों ! इस जीवने सब कुछ किया है...**' क्या एक नहीं किया ? '**एक इसके बिना, वह क्या ? तो कि निश्चयपूर्वक कहते हैं कि सत्पुरुषका कहा हुआ वचन, उसका उपदेश सुना नहीं है, अथवा सम्यक्प्रकारसे उसका पालन नहीं किया है, और इसे ही हमने मुनियोंकी सामायिक (आत्मस्वरूपकी प्राप्ति) कहा है।**' मुनियोंकी सामायिक (अर्थात्) यहाँ मुमुक्षुकी भूमिकाकी यह सामायिक है। (संप्रदायमें) जो सामायिक लेकर बैठना, यह सामायिक नहीं है, ऐसा कहते हैं। ये सामायिक है और अब अंतिम केवलीकी बात (करते हैं।) पहले केवली ऋषभदेव भगवान हुए। इनके पहले कोई केवली नहीं हुए, उन्होंने यह उपदेश दिया है। अंतिम केवली कौन हुए ?

महावीरस्वामीके बादमें जो अंतिम केवली हुए वे - '**सुधर्मास्वामी जंबुस्वामीको उपदेश देते हैं कि सारे जगतका जिन्होंने दर्शन किया है, ऐसे महावीर भगवानने हमें इस प्रकार कहा है - 'गुरुके अधीन होकर आचरण करनेवाले अनंत पुरुषोंने मार्ग पाकर मोक्ष प्राप्त किया है।**'

'**एक इस स्थलमें नहीं, परंतु सर्व स्थलों...**' अर्थात् पहले

और अंतिम केवलीके बीच हुए सब केवलीको ले लेना `**और सर्व शास्त्रोंमें यही बात कहनेका लक्ष्य है।**' लक्ष अर्थात् Intention - यही इरादा है। अब यदि शास्त्रके आशय और इरादेको नहीं समझा, तो शास्त्रमें क्या पढ़ा ? शास्त्र तो पढ़ा किन्तु उसके आशय और इरादेको नहीं समझा। जब कि कृपालुदेव तो इतने समर्थ पुरुष थे कि शास्त्र पढ़ते ही उसका आशय पहले ग्रहण कर लेते थे। उन्होंने जो-जो शास्त्र पढ़े हैं, उन सेंकड़ों शास्त्रोंके आशयको उन्होंने अलगसे छाँटकर बात लिखी है कि, सर्व शास्त्रोंका आशय तो यही है, लक्ष्य तो यह है। लोग दूसरी तरहसे समझते हैं।

`**आणाए धम्मो आणाए तवो।**' बादमें उन्होंने आचारांगसूत्र रखा है। '**सब जगह यही महापुरुषोंके कहनेका** लक्ष्य है।' (लक्ष्य है) अर्थात् आशय है। `**यह लक्ष्य जीवकी समझमें नहीं आया। इसके कारणोंसे सबसे प्रधानकारण स्वच्छंद है।**' अपने आप, अपनी मनमानीसे चलना यह एक ही उसे अवरोधका कारण है। `**और जिसने स्वच्छंदको मंद किया हैं, ऐसे पुरुषके लिये प्रतिबद्धता** (**लोकसंबंधी बंधन, स्वजनकुटुंब बंधन, देहाभिमानरूप बंधन, संकल्प-विकल्परूप बंधन**) **इत्यादि बंधनको दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय जो कोई हो उसका इसपरसे आप विचार कीजिये; और इसे विचारते हुए जो कुछ योग्य लगे वह हमें पूछिये; और इस मार्गसे यदि कुछ योग्यता प्राप्त करेंगे तो चाहे जहाँसे भी उपशम मिल जायेगा।**' (उपशम) अर्थात् उपशम सम्यक्दर्शन होगा। `**उपशम मिले और जिसकी आज्ञाका आराधन करें ऐसे पुरुषकी खोजमें रहिये।**' ये Total लगाकर यहाँ रख दिया।

`**बाकी दूसरे सभी साधन बादमें करने योग्य हैं। इसके सिवाय दूसरा कोई मोक्षमार्ग विचारने पर प्रतीत नहीं होगा।** (**विकल्पसे**) **प्रतीत हो तो बताइयेगा ताकि जो कुछ योग्य हो वह बताया जा सकें।**'

मुमुक्षु :- उपशम चाहे जहाँसे मिल जायेगा। मतलब क्या ?

पूज्य भाईश्री :- माने उपशम सम्यक्दर्शन। मिथ्यात्वका उपशम जैसे कैसे भी होगा। यदि इस तरह आप करेंगे तो जरूर आपको उपशम मिलेगा। यानी कि मिथ्यात्वका उपशम होकर (सम्यक्दर्शन होगा)। क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टिको सर्व प्रथम उपशम सम्यक्दर्शन होता है; फिर क्षयोपशम या क्षायिकमें आता है। सर्वप्रथम उपशम सम्यक्दर्शन होता है। उसका कारण यह है कि मिथ्यात्वकी जो प्रकृति है और जीवका जो मिथ्यात्व भाव है वह उतना बलवान है, उतना बलवान है कि उसके बलकी जो तारतम्यता है वह पहले दबती है। कोई जीव पहले सीधा नाश नहीं कर सकता, कोई जीव उसका सीधा नाश नहीं कर सकता है, पहले दबता है। वह दबता कब है ? कि जब ज़ोर कम हो तब। कमज़ोर हो, वह दबता है, बलवान नहीं दबता। यह तो इतना अधिक बलवान है कि उसको पहले कमज़ोर करना पड़ता है। और इसे कमज़ोर करनेकी योजना - यह कृपालुदेवका कहा हुआ मुमुक्षुकी भूमिकाका पूरा विषय है। (मिथ्यात्वको) कमज़ोर करके पहले उसको बीमार कर दे, कमज़ोर कर दे फिर उपशममें आयेगा, और उसके मुख्य उपायमें उन्होंने ये सत्पुरुषका प्रत्यक्ष योग लिया है। पूरा जो (मुमुक्षुता) आरोहणक्रम है, उसमें सबसे अधिक उन्होंने सत्पुरुषके योग पर ज़ोर दिया है। २५४ पत्रमें - स्वच्छंद प्रायः दबनेके पश्चात् मोक्षमार्ग तक पहुँचनेमें, अवरोधरूप तीन कारण रहते हैं, उसमें उन्होंने मुख्य कारण लिया है `सत्पुरुषके प्रति प्रेम-विनयमें कमी' यानी कि सत्पुरुषमें परमेश्वरबुद्धि आती है तब परम विनय आता है। उसमें क्षति - कमी होती है तब तक पदार्थनिर्णय (नहीं होता।) (और इसके पहले) जो दूसरा कारण है - जगतके सुखकी अल्प भी सुखेच्छा, वह मिटती नहीं, और उसके आने पर (प्रथम जो कहे) वे दोनों मिटते हैं। इन तीनोंमें भी (सत्पुरुषके विनयकी) बात ली है। ऐसा पत्र है।

इसतरह (कृपालुदेवने) बहुत व्यवस्थित अनुभवसिद्ध बातें की हैं और उसप्रकार उन्होंने उस बात पर ध्यान खींचा है। इसलिये कोई ऐसे झूठा संतोष पकड़ ले कि परोक्षको हम प्रत्यक्ष मानकर चलें, तो इससे कोई काम (नहीं होता।) खुदकी भूल होने पर कौन बतायेगा उसको ? भूल कौन बतायेगा ? अतः उसके ऊपर एक विचार चला था, कि कृपालुदेवको या किसी भी ज्ञानीको प्रत्यक्ष मानना हो तो उनके उपदेशको प्रत्यक्ष करना चाहिये। उनके वचन पढ़े (तब उस प्रकारसे पढ़ने चाहिये कि) 'ये मुझे कह रहे हैं। मेरे सामने बैठकर कह रहे हैं। ये मेरे लिये लिखा है, हज़ारों आदमीने भले पढ़ा हो, लाखों लोगोंने भले पढ़ा हो, (परंतु) मेरे लिये ही यह लिखा गया है।' ऐसे अंदरमें वह बात लग जाये तो उसने वह उपदेशको प्रत्यक्षवत् करके अंगीकार किया (कहा जायेगा।) परंतु वे पुरुष जब प्रत्यक्ष नहीं है तो उनके वियोगकी वेदना तुझे आनी चाहिये। तेरे स्वजनके वियोगकी वेदना आती है कि नहीं आती है ? जब स्वजनका वियोग होता है तो वेदना आती है कि नहीं ? अरे ! बेटीको शादीके वक्त एक ही गाँवमें विदाय करते वक्त भी रोने लगता है ! कल सुबह ही बेटी-दामादको खाने पर बुलायेंगे, फिर भी उसको विदाय देते वक्त आदमी एकदम रो पड़ता है। तो फिर परोक्षको प्रत्यक्ष मानकर संतोष लेनेका तो सवाल ही कहाँ है। उसकी वेदना आनी चाहिये। यदि उसकी वेदना आयेगी तो अभी शायद तुझे सत्पुरुष नहीं भी मिले, तो मरकर तू सीधा उनके चरणोंमें पहुँचेगा, वहीं तेरी उत्पत्ति हो जायेगी। अगर तुझे वियोग लगा होगा तो उनके (चरणोंमें जा सकेगा)। परंतु वियोग नहीं लगता हो तो क्या कामका ? तुझे तो संतोष है, कोई तकलीफ़ नहीं है, भले ही वे चलें गये, मुझे क्या हर्ज है ? उनका उपदेश तो है न ! ऐसे नहीं होता। प्रत्यक्ष नहीं (हैं तो उनका) वियोग लगना चाहिये, उसकी वेदना होनी चाहिये और उपदेशको प्रत्यक्ष करके ग्रहण करना चाहिये, अंगीकार करना चाहिये - ऐसा प्रकार

हो तो वह यथार्थ है, वरना तो झूठा संतोष मानने जैसा हो जायेगा। यहाँ तक रखते हैं।

आत्मकल्याणका अपूर्व विचार - निर्धार प्रायः प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुषके चरणसेवनके बिना दूसरे प्रकारसे संभवित नहीं है। ऐसे अपूर्व विचार बिना अपूर्व ऐसा आत्मज्ञान उत्पन्न होना असंभवित है। अपूर्व ऐसे आत्मज्ञानके बिना जीव कोई भी साधन करता है तो वह कल्पित है। ऐसे कल्पित साधनसे आत्मा छूटनेके बजाय उलटा और बंधता है। इसलिए उन सभी कल्पित साधनको नुकसानकर्ता साधन जानने चाहिए, क्योंकि इससे 'साधना कर रहा हूँ' - ऐसा दुष्ट अभिमान होता है, जो कि संसारका मुख्य हेतु है। जो - जो साधन इस जीवने पूर्व कालमें किये हैं, वे साधन ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा अनुसार नहीं किये हैं। ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा अनुसार चलनेसे जीवको परिभ्रमण नहीं रहता क्योंकि ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा जीवको भवमें जानेसे रोकती है, और एकांत आत्मार्थ प्रेरक है। इससे ऐसा सिद्धांत ग्रहण होता है कि ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाका आराधन वह 'सिद्धपद' की प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ व सर्वसे सुगम और सरल उपाय है। जीवको लौकिकभाव छोड़कर, अपनी कल्पनासे - छंदसे चलनेका छोड़कर, एक आत्मकल्याणके लक्षसे प्रत्यक्ष ज्ञानीकी आज्ञा अनुसार चलनेका निर्धार कर्त्तव्य है।

-पूज्य भाईश्री (अनुभव संजीवनी-**११२२**)

प्रवचन - ७
'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-२००
दि. २४-०८-१९९८ - भावनगर

(श्रीमद् राजचंद्र वनचामृत - पत्रांक - २०० चल रहा है)। आठवाँ वचनामृत है। `**इसमें कही हुई बात सब शास्त्रोंको मान्य है।** (अर्थात्) कोई भी शास्त्र इस बातके विरुद्ध बात, कोई बात करेंगे नहीं। सभी शास्त्रोंने ऐसा मान्य किया है कि, (मार्ग) ऐसा ही होना चाहिये। तब ही मुमुक्षुको - मोक्षाभिलाषीको कुछ अंशमें लाभ हो सकता है।

आगे कहते हैं, `**ऋषभदेवजीने अट्ठानवें पुत्रोंको त्वरासे मोक्ष होनेका यही उपदेश किया था।**' यह बात क्यों लिखी ? (क्योंकि) एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरके पहले भरतक्षेत्रमें जैनधर्मका प्रारंभ हुआ, तब यहाँसे ही भगवानने यह बात शुरू की थी। यह बात नयी हुई है, (ऐसी) बात नहीं है। वैसे तो अनंतकालसे वही बात (चल रही) है। लेकिन अनंतकालका इतिहास मिलता नहीं (है)। चौबीस तीर्थंकरोंके इतिहास मिलते हैं। उनमें प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवजी हैं। ऋषभदेव भगवान एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरके पहले चतुर्थकालके प्रारंभमें हुए। चतुर्थकाल एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरका है। इसके पहले इस क्षेत्रमें जैनधर्म नहीं था। युगलीयाका क्षेत्र था। धर्म ही नहीं था। कर्मभूमि नहीं थी (और) धर्मभूमि भी नहीं थी। यह भरतक्षेत्र है वह सिर्फ भोगभूमि थी। (इस चौबीसीके) पहले अनंत चौबीसी हो गई हैं। (लेकिन) जब इस चौबीसीका धर्म शरू हुआ (तो) उसमें ऋषभदेव भगवानने भी यही बात कही थी कि, अगर ज्ञान प्राप्ति करनी है तो (वह) ज्ञानीसे होगी। और इसके लिये एकनिष्ठा, तन-मन-धनकी आसक्तिका त्याग और

ज्ञानीके प्रति अत्यंत भक्ति हुए बिना किसीको ज्ञान प्राप्ति हुई नहीं है और होती (भी) नहीं है। इसलिये भगवानने भी यहाँसे ही बात कही थी।

(अब १० वाँ वचन है) `**परीक्षित राजाको शुकदेवजीने यही उपदेश किया है।**' यह पीछेके कालकी बात है। परीक्षित राजा और शुकदेवजीका जो जमाना आया उस (समय) भी यही उपदेश चला है। यानी उपदेश पद्धतिमें भी कोई फेरफार नहीं हुआ है। क्योंकि मार्गमें (मोक्षमार्गमें) फेरफार होता नहीं। तीनकालमें (मोक्षका मार्ग) एक ही होता है।

मुमुक्षु :- मनकी आसक्तिका त्याग माने क्या ?

पूज्य भाईश्री :- (मनकी आसक्ति त्याग माने) मनमें इच्छाएँ होती हैं, वह आसक्तिके कारण होती हैं, आसक्ति सुखबुद्धिके कारणसे होती है और मन इच्छाएँ करता रहता है। एक तो इसीको मन कहते हैं। दूसरा मन इसे कहते हैं, जो ज्ञानका क्षयोपशमभाव है वह मनके साथ काम करता है। किसीकी विचार शक्ति ज्यादा होती है, कोई मनमें ज्यादा समझता है, कोई कम समझता है, (किसीको) इसका अहंभाव होता है कि, मैं समझता हूँ, मैं जानता हूँ, मैं बहुत जानता हूँ; उसका भी त्याग करना। आसक्ति माने खिँचाव। तनकी ओर, मनकी ओर, धनकी ओर जो भी परिणामका खिँचाव रहता है, वह (परिणाम) आत्माकी ओर नहीं जाता। (यह) ज्ञानप्राप्ति करनेका प्रकरण चल रहा है, तो जिसे ज्ञानप्राप्ति करनी है, उसे ज्ञानभंडार जो आत्मा है उस पर झुकना होगा। अगर इधर (आत्माकी) ओर नहीं झुकता है, तो उधर (परपदार्थके प्रति) झुकता है। वहाँ तक काम होता नहीं।

(आगे कहते हैं) `**अनंतकाल तक जीव स्वच्छंदसे चलकर परिश्रम करे तो भी अपने आप ज्ञान प्राप्त नहीं करता; परंतु ज्ञानीकी आज्ञाका आराधक अंतर्मुहूर्तमें भी केवलज्ञान प्राप्त कर**

लेता है।' ज्ञानीकी आज्ञाका आराधक माने क्या ? कि, ज्ञानी जो रास्ते (पर) चले हैं, वही रास्ता दिखायेंगे। वही रास्ते (पर) चलना है। ज्ञानी अंतर्मुख होते हैं ? कैसे होते हैं ? अंतर्मुख होते हैं। कैसे अंतर्मुख हुआ जाये ? यह कोई कथनका विषय नहीं है। यह कोई वचनका विषय नहीं है। वचनके विषयकी हद (मर्यादा) वहाँ पूरी होती है कि, `अंतर्मुख हो जाओ !' लेकिन अंतर्मुख कैसे होना ? यह एक बहुत बड़ी समस्या रही और यह अध्यात्मके विषयका Top secret है। एक बहुत (ही) रहस्यमय घटना है जो देखनेसे मालूम पड़ती है। क्योंकि इसे (दर्शानेके लिये) वचन हैं ही नहीं। (ऐसा) वचनातीत विषय है, मनातीत विषय है। और वह (अंतर्मुखता) ज्ञानीके परिणमनमें प्रत्यक्षतौरसे दिखनेमें आती है। किसे दिखनेमें आती है ? कि जिसे इस प्रकारकी - तथारूप योग्यता - होती है, उसे दिखनेमें आती है - सबोंको दिखनेमें नहीं आती। इसके लिये योग्यता भी चाहिये।

मुमुक्षु :- तथारूप योग्यता किस प्रकारकी होती है ?

पूज्य भाईश्री :- ६७४ (पत्रकी) बात तो अपने यहाँ बहुत चली है। दृढ़ मुमुक्षुता होवे माने जीवनमें शीघ्र पूर्ण होनेका (यानी) पूर्ण शुद्धिका ध्येय होवे और प्राप्त उपदेशका अमलीकरण (तुरंत होने लगे)। उसी वक्त (उपदेशका अमलीकरण करे)। कब ? `सुनते ही चोट लगे और प्रयास चालू हो जाये।' सोगानीजीके कथन (अनुसार)। ऐसे (उपदेशको) अवधारण करनेकी योग्यता होवे। प्राप्त उपदेशको अवधारण करनेकी योग्यता होवे, अंगीकार करनेकी योग्यता होवे, अमलीकरण करनेकी योग्यता होवे और इसके पश्चात् अन्तरात्मवृत्ति जागृत होवे तभी अंतर्मुख होनेके विषयको देखनेकी क्षमता प्राप्त होती है - योग्यताकी प्राप्ति होती है। इसके पहले किसीको नहीं होती। इतनी योग्यता होनेसे वह ज्ञानीकी अंतर्मुख परिणतिको देखता है, तब उसे प्रथम समकित होता है। (ज्ञानीकी) पहचानवाला (प्रथम समकित होता है) फिर स्वरूपकी पहचानमें अनुभवांशसे प्रतीति आती है तो दूसरा समकित

होता है। और फिर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होते ही वास्तविक सम्यग्दर्शन - परमार्थ सम्यग्दर्शन जिसे कहते हैं, वह तीसरा समकित (होता है)। तभी आत्मज्ञानकी प्राप्ति है, तभी आत्माका साक्षात्कार है, तभी अंतरमें रहे हुए परमात्माका साक्षात्कार है, वही भगवानके दर्शन है। बाकी कोई भगवानके दर्शन है ही नहीं।

(यहाँ कहते हैं) `**अनंत काल तक जीव स्वच्छंदसे चलकर परिश्रम करे...**' स्वच्छंदसे माने अपनी मनमानी - अपनी इच्छानुसार कल्पनासे - विचारसे ग्रंथ पढ़करके या प्रवचन सुनकरके अपनी कल्पनासे अनंतकाल तक परिश्रम करे न ! (तो भी) उसको ज्ञानप्राप्ति नहीं होती। परंतु ज्ञानीकी आज्ञाका जो आराधक होता है (इस बात पर) सबसे पहले ज्यादा वज़न दिया है कि, हमें एकांत आज्ञामें रहना है, दूसरी (कोई) बात हमें नहीं चाहिये। हम कुछ जानते नहीं, हम कुछ समझते नहीं। किस विषयमें (कुछ नहीं जानते) ? कि, अंतर्मुख होनेके विषयमें। बाकी जो जानकारी है, उस जानकारीका कोई मूल्य नहीं है। (जीव) अंतर्मुख होनेकी (विधिको) जाने नहीं और दूसरी-दूसरी जानकारीका अहम् करे कि, मैं जानता हूँ, मैं भी समझता हूँ, बात ऐसी है - वैसी है। उसमें अनंतकाल तक कोई पता लगनेवाला नहीं है। हम शुरू-शुरूमें जानकारीके (विषयमें एक) बात करते थे कि, जानकारीवाला क्या कहता है ? कि हमको पता है, इस बातका भी पता है, (कोई दूसरी बात कहे तो कहे) इसका भी पता है। और बहुत पता है उसमें खुद ही लापता है। क्या है ? खुद ही लापता है। पता है... पता है... उसमें (खुद) लापता है। ये बात हो जाती है।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानीकी आज्ञामें रहनेवाला अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। सम्यग्दर्शन नहीं लिया (केवलज्ञान लिया है)। समवसरणमें ऐसे (भी) जीव होते हैं। (जिन्होंने) मुनिदीक्षा पहले ही ले ली हो (अर्थात्) मिथ्यात्व अवस्थामें द्रव्यलिंगी हो जाये, शुद्ध द्रव्यलिंगी

(होते हैं)। शुद्ध माने क्या ? (बाह्य आचारमें) कोई भूल नहीं होवे। समझमें और क्रियामें कोई भूल नहीं होवे। जिनोक्त व्यवहारका शुद्ध प्रतिपालन होवे। कैसा प्रतिपालन (होवे) ? शुद्ध प्रतिपालन होवे। ऐसा तो पहले ही हो गया हो लेकिन आज्ञामें नहीं आया हो। (परंतु) आज्ञामें आते ही सम्यग्दर्शन, मुनिदशा और केवलज्ञान सब अंतर्मुहूर्तमें (प्राप्त कर लेता है) क्या ? सम्यग्दर्शन, मुनिदशा और केवलज्ञान सब एक घंटेमें (प्राप्त) कर सकता है।

(अब १२ वाँ वचन है) `**शास्त्रमें कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष हैं;...**' शास्त्रमें बहुत उपदेश दिया है वह सब परोक्ष है, लिखनेवाले प्रत्यक्ष नहीं है। इसलिये सभी आज्ञाएँ परोक्ष हैं। `**...और वे जीवको अधिकारी होनेके लिये कही हैं;...**' (अर्थात्) पात्रता लानेमें वह (आज्ञाएँ) काममें आती हैं। पात्रता आने पर, पात्र जीवको अगर ज्ञानी मिलते हैं तो ज्ञान प्राप्ति हो जाती है। पात्रता बिना ज्ञानी मिलते हैं तो भी ज्ञान प्राप्ति नहीं होती। पात्रता होती है और ज्ञानी नहीं मिलते हैं तो भी ज्ञान प्राप्ति नहीं होती। (इसलिये) शास्त्रमें जो उपदेश दिया है वह अधिकारी होनेके लिये कहा है। उससे पात्रता आ सकती है (लेकिन) मोक्षमार्ग नहीं आ सकता। पात्रता अवश्य आ सकती है।

`**...मोक्षप्राप्तिके लिये...**' या ज्ञान प्राप्तिके लिये `**...ज्ञानीकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करना चाहिये।**' उसमें तो प्रत्यक्ष (ज्ञानी) ही चाहिये। उसमें कारण क्या है ? कि कभी किसीको ज्ञानीकी पहचान हुए बिना आत्माकी पहचान हुई नहीं। और कभी किसीको आत्माकी पहचान हुए बिना आत्मानुभूति हुई नहीं, सम्यग्दर्शन हुआ नहीं। यह इसका क्रम है। ज्ञानीकी पहचान प्रत्यक्ष ज्ञानीके बिना होती नहीं। क्यों (ऐसा है) ? क्योंकि यह एक व्यक्तिगत पहचान है। वह व्यक्तिकी अनुपस्थितिमें कैसे हो सकती है ? इसमें तो परिचय करना पड़े। पहचानकी तो एक ही प्रक्रिया है कि, परिचय हुए बिना किसीकी पहचान होती नहीं। बिना परिचय किसीको किसीकी पहचान

हुई हो, ऐसा बनता नहीं है। जो ज्ञानी महात्मा तीर्थंकर भूतकालमें हो गये उनका परिचय कैसे करोगे ? वह तो संभवित ही नहीं। इसलिये भूतकालमें अनंत ज्ञानी, अनंत तीर्थंकर हो गये हैं, लेकिन किसीकी पहचान हो सकती नहीं। इसलिये `**मोक्षप्राप्तिके लिये...**' यानी मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिये भी `**...ज्ञानीकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करना चाहिये।**'

दूसरी बात वह है कि, जीव कदम-कदम पर भूलता है और कदम-कदम पर ठोकर खाता है। ऐसा अनजाना रास्ता है तो उसे (प्रत्यक्ष ज्ञानीकी) बहुत जरूरत पड़ती है। प्रत्यक्ष मार्गदर्शनकी बहुत जरूरत पड़ती है। इसलिये प्रत्यक्ष ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन किये बिना किसीको ज्ञान प्राप्ति हो सकती नहीं है।

`**यह ज्ञानमार्गकी श्रेणि कही,...**' जिन्हें ज्ञान प्राप्ति करनी है, उनके लिये यह ज्ञानमार्गकी श्रेणि (कही)। श्रेणि माने वर्ग - पहले ऐसा करो, फिर ऐसा करो, फिर ऐसा करो (इसे श्रेणि कहते हैं)। `**..इसे प्राप्त किये बिना दूसरे मार्गसे मोक्ष नहीं है।**' इसके सिवा कोई दूसरे मार्गसे परिभ्रमण मिटे - चार गति चौरासी लाख योनीका जन्म-मरण मिटे, (ऐसा नहीं बनता)। कोई दूसरा मार्ग - कोई दूसरा उपाय इस विश्वमें नहीं है। जगतमें कहीं भी नहीं है। `**एक होय तीनकालमें परमार्थका पंथ**' कृपालुदेव तो कहते हैं कि, जगतमें दो जैन ही नहीं होते हैं। दो प्रकारके जैन नहीं होते, एक ही प्रकारके (जैन) होते हैं।

आज हमारे यहाँ बहुतसे मत-मतांतर हो गये और जैनोंमें भी बहुतसे संप्रदाय हो गये वह बात ठीक नहीं हुई है। वह बात उचित नहीं हुई। तीर्थंकरदेवका तो एक ही मार्ग है और (इस) एक ही मार्ग पर सबको चलना पड़ेगा तभी मोक्ष होगा। इसके सिवा किसीका मोक्ष होनेका सवाल नहीं है।

अब जो बात कही है वह महत्वपूर्ण बात कही है। `**इस गुप्त**

तत्त्वका जो आराधन करता है, वह प्रत्यक्ष अमृतको पाकर अभय होता है।' (ऐसा) कौनसा गुप्त तत्त्व है ? प्रत्यक्ष ज्ञानी चाहिये। और आगे जो छट्ठे वचनमें बात कही न कि, प्रत्यक्ष ज्ञानीके प्रति एकनिष्ठासे, तन-मन-धनकी आसक्तिका त्याग करके, अत्यंत भक्तिसे अगर आज्ञामें रहता है तो उसे प्रत्यक्ष अमृतकी प्राप्ति होती है और वह निर्भय हो जाता है। ज्ञानीकी उपस्थितिका यह जो विषय है यह हमेशा-हमेशा जगतमें गुप्त रहा। क्या रहा ? गुप्त रहा। इसलिये गुप्त रहा है कि, ग्रंथ तो बहुत लोग पढ़ते हैं, फिर भी इस विषयमें भूल कर लते हैं। और अनंतकालमें यहाँ ही भूल हुई है कि, प्रत्यक्ष (ज्ञानीका) क्या फायदा है ? वह मालूम नहीं पड़ा।

इस गुप्त तत्त्वका जो आराधन करते हैं, यानी जिसे प्रत्यक्ष ज्ञानीकी जरूरत महसूस हुई, परिचय किया और पहचान की - यह विषय हमेशा गुप्त रहा है कि, ऐसी (ज्ञानीपुरुषकी) पहचानसे स्वरूपकी पहचान आ सकती है। सत्पुरुषकी पहचान है वह ज्ञानकी पर्याय है न ? पहचान (हुई) वह ज्ञानकी पर्याय है, उसके गर्भमें दूसरा समकित आ गया। (दूसरे समकितका) जन्म बादमें होगा। मनुष्य भी पहले तो गर्भमें आता है बादमें जन्म होता है न ! तो स्वरूपकी पहचानवाला जो दूसरा समकित है, जो तीसरे परमार्थ सम्यक्त्वका अंगभूत कारण है, उसका गर्भमें आना - (वह) प्रथम समक्तिमें होता है। उसे (आत्मसिद्धिकी) १७ गाथामें समकितका प्रत्यक्ष कारण कहा है। `स्वच्छंद मत आग्रह तजी वर्ते सद्गुरु लक्ष' - (इसमें) आज्ञाकारीताका वर्णन किया। `स्वच्छंद मत आग्रह तजी वर्ते सद्गुरु लक्ष' आग्रह क्या होता है ? अपनी समझी हुई बातका आग्रह होता है। अपने मतका - अपने अभिप्रायका आग्रह रहता है। यही स्वच्छंद है। `समकित तेने भाखीयुं, कारण गणी प्रत्यक्ष' - वह प्रत्यक्ष सम्यग्दर्शनका कारण है। ज्ञानीकी नज़रमें प्रत्यक्षरूपसे सम्यग्दर्शनका कारण यहाँ पर देखा गया है कि, हमको तो प्रत्यक्ष दिखनेमें आता है। अब इसका सम्यग्दर्शन

हमको प्रत्यक्ष दिखनेमें आया।

`इस गुप्त तत्त्वका जो आराधन करता है,...'** यह गुप्त तत्त्व है। **`वह प्रत्यक्ष अमृतको पाकर अभय होता है।' वह आत्माके आनंद अमृतको पीकर अजर-अमर हो ही जायेगा। फिर उसे बार-बार मरना नहीं पड़ेगा। **`इति शिवम्'** ऐसा कहकर `इति' माने (पत्र) पूरा कर दिया। यह जो कल्याणकारी मांगलिक बात है, उसे यहाँ हमने समाप्त किया। यहाँ २०० नंबरका पत्र समाप्त होता है।

ज्ञानीपुरुषके आश्रयमें आत्मार्थको समझे बिना जीवने अनन्तबार अनेक प्रकारके कल्पित धर्मसाधन किये हैं; परन्तु इससे आत्मकल्याण तो नहीं हुआ उलटा जब-जब जो साधन किया तब-तब पर्यायबुद्धिके कारण उस साधनके कर्तृत्वका दुष्ट अभिमान किया है, जो कि संसारका मुख्य कारण है। इस प्रकारसे चली आ रही भूलको मिटानेके लिए, `अपूर्वज्ञान' के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। `अपूर्वज्ञान' अपूर्वविचारके बिना उत्पन्न नहीं होता; अर्थात् आत्महितका अपूर्व भावनासे, अपूर्व जागृत्तिसे वर्तता जो विचार, वह आत्मविचार है और ऐसे प्रकारके कारण उत्पन्न जो `परिणति' वह जीवको ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा पर चलनेसे होती है। अतः (यदि) ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाका आराधन एकनिष्ठा पूर्वक हुआ तो वह सिद्धपदका श्रेष्ठ व सुगम उपाय है। इस तरह सद्गुरुकी आज्ञाका / आज्ञाके अत्यंत अंगीकृतपनेका महत्त्व अपार है।

-पूज्य भाईश्री (अनुभव संजीवनी-**५९६**)

ॐ

`श्रीमद् राजचंद्र'
पत्रांक - ५११

मोहमयी, आषाढ सुदी ६, रवि, १९५०

ॐ

श्री अंजारस्थित, परमस्नेही श्री सुभाग्य,

आपका सविस्तर एक पत्र तथा एक चिट्ठी प्राप्त हुए हैं। उनमें लिखे हुए प्रश्न मुमुक्षुजीवके लिये विचारणीय हैं।

इस जीवने पूर्वकालमें जो जो साधन किये हैं, वे वे साधन ज्ञानीपुरुषकी आज्ञासे हुए मालूम नहीं होते, यह बात संदेहरहित प्रतीत होती है। यदि ऐसा हुआ होता तो जीवको संसारपरिभ्रमण न होता। ज्ञानीपुरुषकी जो आज्ञा है वह भवभ्रमणको रोकनेके लिये प्रतिबंध जैसी है, क्योंकि उन्हें आत्मार्थके सिवाय दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है और आत्मार्थ साधकर भी जिनकी देह प्रारब्धवशात् है, ऐसे ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा सन्मुख जीवको केवल आत्मार्थमें ही प्रेरित करती है; और इस जीवने तो पूर्वकालमें कोई आत्मार्थ जाना नहीं है, प्रत्युत आत्मार्थ विस्मरणरूपसे चला आया है। वह अपनी कल्पनासे साधन करे तो उससे आत्मार्थ नहीं होता, प्रत्युत आत्मार्थका साधन करता हूँ ऐसा दुष्ट अभिमान उत्पन्न होता है कि जो जीवके लिये संसारका

मुख्य हेतु है। जो बात स्वप्नमें भी नहीं आती, उसे जीव यदि व्यर्थ कल्पनासे साक्षात्कार जैसी मान ले तो उससे कल्याण नहीं हो सकता। उसी प्रकार यह जीव पूर्वकालसे अंधा चला आता हुआ भी यदि अपनी कल्पनासे आत्मार्थ मान ले तो उसमें सफलता नहीं होती, यह बात बिलकुल समझमें आने जैसी है। इसलिये यह तो प्रतीत होता है कि जीवके पूर्वकालीन सभी अशुभ साधन, कल्पित साधन दूर होनेके लिये अपूर्व ज्ञानके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है, और वह अपूर्व विचारके बिना उत्पन्न होना संभव नहीं है, और यह अपूर्व विचार, अपूर्व पुरुषके आराधनके बिना दूसरे किस प्रकारसे जीवको प्राप्त हो, यह विचार करते हुए यही सिद्धांत फलित होता है कि ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाका आराधन, यह सिद्धपदका सर्व श्रेष्ठ उपाय है; और यह बात जब जीवको मान्य होती है, तभीसे दूसरे दोषोंका उपशमन और निवर्तन शुरू होता है।

(पत्रांश)

प्रवचन - ८

'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-५११

दि. २५-०१-१९९९ - भावनगर

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत। पत्रांक - ५११ वाँ।

`**इस जीवने पूर्वकालमें जो जो साधन किये हैं, वे-वे साधन ज्ञानीपुरुषकी आज्ञासे हुए मालूम नहीं होते, यह बात संदेहरहित प्रतीत होती है।**' साधन अर्थात् धर्मसाधन, धर्मक्रिया। साधनका अर्थ ऐसा होता है। धर्मप्राप्तिके जो-जो बाह्य साधन हैं, वे जीवने पूर्वकालमें किये हैं - परंतु अपनी मतिकल्पनासे किये हैं, स्वच्छंदसे किये हैं, मनमानी करके किये हैं। जहाँ खुदका मन नहीं माना वह नहीं किया - इस बातमें संदेह अर्थात् शंका (नहीं होती है।) इस बातमें बिलकुल शंका नहीं होती है। यदि ज्ञानीपुरुषकी आज्ञासे हुआ होता तो (जीवको और परिभ्रमण नहीं होता।)

(स्पष्ट करें तो) ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा मुमुक्षुको दर्शनमोहको काटनेकी है। सीधी एक पंक्तिमें बात करें तो इतनी सी है। और इसकी योजना, और तत्संबंधित स्पष्टता ज्ञानीके लक्षमें होती है। योजना तो कृपालुदेव २५४ पत्रांकमें - मुमुक्षुता आरोहण क्रममें Registered करके गये हैं। परंतु वहाँ पत्रांक - २५४में परिभ्रमणकी वेदनाका विषय नहीं चला है। वह (विषय) पत्रांक - ८६ और १९५में चला है। जब कि `पूर्णताके लक्ष' को उन्होंने पत्रांक - १२८में थोड़ा Elaborate (विस्तार) किया है। (मुमुक्षुका) निश्चय कितना दृढ़ होता है ! मुमुक्षुता संबंधित कितना ताकतवर निश्चय होता है ! कि चाहे कोई भी परिस्थिति खड़ी हो जाये - At any cost (मुझे) परिभ्रमणसे छूटना है सो छूटना ही है। इसके लिये किसी भी चीज़का भोग नहीं दे सकते, सो

बात नहीं है। चाहे किसी भी चीज़का भोग दे सकते हैं, वह बात इसमें आ गई। परिभ्रमणकी चिंतनाके पत्रमें (जो) Elaborate नहीं किया था, वह उन्होंने पत्रांक - १२८में चार पैराग्राफसे किया है, कि ये जो पूर्णताके लक्षका निर्णय होता है या आत्मकल्याणका निर्णय होता है, वह ऐसी वेदनापूर्वक होता है। अतः प्रत्येक पैराग्राफके अंतमें अत्यंत वैराग्य उत्पन्न होता है, वैराग्य उत्पन्न होता है, ऐसा लिया है। यानी कि चिंतना और वैराग्यका Stage चार - पैराग्राफमें लिया और तीसरा Stage जो छूट ही जाना है, परिभ्रमणसे छूट ही जाना है, वह इसके बाद नीचे लिया है। उस विषयका वहाँ संक्षेप हो गया, पूरा हो गया। फिर उसी विषयको फिरसे पत्रांक - २५४ में Elaborate उन्होंने नहीं किया है।

पत्रांक - २५४में तत्पश्चात् आगेकी बातें ली हैं कि, जीवको दृढ़ मुमुक्षुता प्राप्त होने पर मोहासक्तिसे अकुलाकर एक `मोक्ष' के लिये ही यत्न करना चाहिये। इतनी बात करके आगे अपने दोषोंको अपक्षपातरूपसे देखना, यह लेकर बादमें तीन प्रकारके दोष (लिये और) वह सारी बातें बतायी। उन्होंने यह योजना तो व्यवस्थित की है। स्वयंने अनुभवसिद्ध बात की है। और सबका अनुभव (एक सरीखा) होनेसे जितने ज्ञानी होते हैं उन्हें खयाल आ जाता है कि, बराबर है ! जीव इसी क्रमसे आगे बढ़ता है। वे अपने परिणमनसे Tally कर लते हैं।

अभी (सब Stage में आनेके) पहले Problem ये हुआ है कि, परिभ्रमणकी चिंतनामें प्रवेश होना चाहिये, वही न हो पाता हो तो क्या करना ? ये जो Problem है, बहुत बड़ा Problem है। इसलिये बड़ा Problem है कि, जीवको दर्शनमोह कितना बलवान चल रहा है, इसकी खबर ही नहीं होती। बहुभाग जीव ऐसी गफ़लतमें होते हैं कि, मैं तो काफी स्वाध्याय करता हूँ, मैं तो बहुत सत्संग करता हूँ, सत्शास्त्रोंका पठन करता हूँ, इसके विचार भी मुझे आते हैं -

इसलिये मेरा दर्शनमोह तो कम होगा। (परंतु) ऐसा नहीं होता। सच्चे देव, गुरु, शास्त्रको मानता हूँ इसलिये मेरा दर्शनमोह कम होगा, ऐसा नहीं होता। रोज-बरोजके जीवनमें दर्शनमोहको बहुत दृढ़ किया जाता है। एक तो, कुटुंब-परिवारके बीच रहकर अपनत्व करके, संपत्ति आदिमें अपनत्व करके और एक खाने-पीनेमें, भोग-उपभोगके प्रसंगोंमें भी सुखबुद्धि और आधारबुद्धिसे खुद जो दर्शनमोहको प्रतिक्षण, प्रत्येक कार्यमें और प्रत्येक प्रसंगमें दृढ़ करता है, उसे पकड़ नहीं पाता। बड़े अपराधको तो पकड़े नहीं, उसे कमज़ोर करे नहीं इसलिये प्रवेशकाल ही नहीं आता है।

इसके अलावा भी दर्शनमोह प्रबल होनेका एक दूसरा बड़ा कारण है - `परलक्ष्य'। इन दिनों उस पर तो हमारा काफी स्वाध्याय चल चुका। (जीवको मार्ग प्राप्तिमें) अवरोधक कारण कौन-कौनसे हैं ? उसमें परलक्ष्य है, वह भी एक बहुत बड़ा अपराध है। जीव स्वलक्ष्यसे स्वाध्याय नहीं करके परलक्ष्य से करता है। और जहाँ भी सामूहिक स्वाध्याय चलता हो वहाँ भी उसका कोई न कोई परलक्ष्य चलता है, जो पकड़में नहीं आता, और नतीजा ये आता है कि (खुद) चिंतनामें प्रवेश नहीं कर सकता। अतः इसके लिये Individually सबका Case अलग-अलग है। इसके लिये कोई Fix योजना नहीं है।

परिभ्रमणकी चिंतनामें आनेके पश्चात् पदार्थ निर्णय तककी योजना Fix है, और पदार्थ निर्णयके बाद तुरंत अल्पकालमें जीव मोक्षमार्गमें प्रवेश करता है। यानी कि चतुर्थ गुणस्थानसे लेकर चौदह गुणस्थान तककी योजना Fix है। अभी तक तो सब साधनाकालमें चतुर्थ (गुणस्थानसे) चौदहवें गुणस्थान तक ही समझते थे। मुमुक्षुताके Stage और मुमुक्षुता आरोहण क्रमके बारेमें तो आज भी कोई चर्चा नहीं करते हैं। यह विषय कहीं नहीं चलता यानी कि, दर्शनमोहको मारनेका विषय कहीं नहीं चलता है। जब कि `ज्ञानीका मार्ग' क्या है ? कि दर्शनमोहको मारना, वह ज्ञानीका मार्ग। मार्ग अर्थात् उपाय। दर्शनमोहको

जो मारे वह ज्ञानीका उपाय।

ज्ञानीका मार्ग है सो तीर्थंकरका मार्ग और तीर्थंकरका मार्ग है सो ज्ञानीका मार्ग। तीर्थंकरके नामसे चले इसलिये तीर्थंकरका मार्ग, ऐसे नहीं। वैसे तो जैनके सभी संप्रदाय चल ही रहे हैं। तीनों संप्रदाय ऐसे ही चल रहे हैं। इसमें कोई तीर्थंकरका मार्ग नहीं है। वहाँ सब जगह आपको व्रत, पच्चखान, त्याग, दूसरा-दूसरा (करवाकर) चारित्रमोह पर ही (ले जायेंगे।) दान दिजीये, त्याग करो, व्रत कीजिये, इतना छोड़ो, इतना छोड़ो, कम से कम इतना त्याग करो, इसके सिवा कुछ नहीं है। क्योंकि वहाँ उपदेश देनेवाले त्यागी होकर बैठे हैं। वे खुद ही गलत तरीकेसे त्याग करके बैठे हैं इसलिये वे भूल सहित त्याग करायेंगे, और तो क्या करायेंगे ? ये परिस्थिति है। और तो और उन लोगोंके पास जानकारी भी नहीं है। (उनलोगोंके पास) तथारूप ज्ञान है भी नहीं जो आपको दे सके। बोध दे सके ऐसा ज्ञान भी उनके पास नहीं है। अतः ज्ञानीकी आज्ञाका अर्थ ऐसा है कि, दर्शनमोहको मारो। दर्शनमोहको मार-मारकर कमज़ोर कर दो। मृत्युतुल्य मारकर उसका उपशम कर डालो, अभाव कर डालो; तो मोक्षमार्गमें प्रवेश कर सकेंगे। फिर आगेका रास्ता सुगम है और मोक्ष भी निश्चित ही है। अतः ज्ञानीकी आज्ञाका अर्थ इतना ही है कि, (दर्शनमोहको मारना।) (अभी तक जीवने) जो-जो साधन किये हैं, वे दर्शनमोहको मारनेके लिये नहीं किये।

गुरुदेवश्री (कानजीस्वामी) ने द्रव्यानुयोगकी प्रधानतासे तत्त्वज्ञानका उपदेश बहुत दिया, और श्रद्धा प्रधानतासे भी (बहुत उपदेश दिया) क्योंकि उनका मुख्य विषय था सम्यक्‌दर्शन। इसलिये दर्शनमोहका अभाव करनेका (उपदेश मुख्यरूपसे था) तो तत्त्वज्ञानके अभ्यासियोंके लिये इसकी चरमसीमाकी बात यहाँ तक चली कि, एक समयकी पर्याय और त्रिकाली द्रव्य - भिन्न है। त्रिकाली द्रव्य शाश्वत् है, तीनोंकाल एकरूप है। (जब कि) एक समयकी पर्याय दूसरे समय नहीं रहती,

चाहे वह केवलज्ञानकी हो चाहे सिद्ध परमात्माकी हो। पर्याय एक समयकी ही होती है। अतः पर्यायबुद्धिसे पर्यायमें अपनत्व नहीं करना है, यह इसका परमार्थ है। प्रवचनसारकी ९३ वीं गाथामें ऐसा कहा, `पर्यायमुढ़ा परसमयाः'। पर्यायमुढ़ पर समय है - वह जैन समय नहीं है। अन्यमतका समय अर्थात् संप्रदाय है - धर्म है।

अब, एक समयकी पर्यायमें भी अपनत्व नहीं करना है, लेकिन घर जाकर स्त्री - संतानोंमें अपनत्व करते वक्त विचार तक नहीं आये, विकल्प भी नहीं आये कि, ये मैं क्या करता हूँ ! तो ज्ञानकी स्थूलता कितनी हुई ! आप तत्त्वज्ञावका अभ्यास तो सूक्ष्मबुद्धिसे करते हो, लेकिन ! परिणमनमें स्थूलता कितनी ! कि, कूड़े-कचरेमें पूरा मूसल ही चला जाये ! (एक तरफ) इतनी सूक्ष्म शुकलध्यानकी पर्यायकी चर्चा करते हो, `परद्रव्यम् परभावं हेय इति' कहते हो; जैसे क्षायिकभावको नियमसारकी ५० वीं गाथामें (हेय कहा है), तो वहाँ तक चर्चा करनेमें तो आपको कोई दिक्कत नहीं आती, परंतु कुटुंब-परिवार और पैसेका मामला सामने आये तो, खतम ! वहाँ इतनी हद तक अपनत्व करता है, और खुदको इतना अंधापन होता है कि, खुदको पता तक नहीं चलता है कि मैं क्या करता हूँ ! ज्ञान इतना स्थूल हो जाता है, उसे अज्ञान कहा जाता है। (जब कि) अब वह खुद तो क्या समझता है ? कि मैं ये जो शुकलध्यानकी - केवलज्ञानकी पर्यायको परद्रव्य मानता हूँ न ! इसलिये मेरा ज्ञान तो सूक्ष्म है। पुण्य हेय है, क्षयोपशम ज्ञान हेय है और क्षायिकज्ञान भी हेय है। `हेयं इति' ऐसा लिखा है। (उसे ऐसा लगता है कि) मेरा ज्ञान तो बहुत सूक्ष्म! और बहुतसे लोग ऐसे अपनेको ज्ञानी मानने लगे !! जब कि शरीरकी बात आये, कुटुंबकी बात आये, पैसेकी बात आये, तो वहाँ तो गाढ़ एकत्व चलता हो ! गाढ़ अपनत्व हो ! जो कि स्थूल अज्ञान है। बहुत मोटा हो चुका अज्ञान है। इसलिये ज्ञानीकी आज्ञाकी बात ही पूरी अलग है।

मुमुक्षु :- आप जब सुरत पधारें थे तब आज्ञाके बारेमें आपने

दो बात कही थी कि, एक तो ज्ञानीके समष्टिगत उपदेशमेंसे खुदको लागू पड़ता हो वह ले लेना, वह भी आज्ञा है, दूसरा यदि ज्ञानी कोई Personally आज्ञा करें तो वह तो अद्‌भूत ही है !

पूज्य भाईश्री :- सही बात है। और वे दर्शनमोहको तोड़नेकी ही आज्ञा देंगे। समष्टिगत उपदेशमें से भी वही छाँटना है कि, मेरा मोह यहाँ-यहाँ काम करता है। मेरा मोह यहाँ काम करता है - यही पकड़ना है। बात तो एक ही है। ज्ञानीकी आज्ञा एक ही प्रकारसे होती है।

`**यदि ऐसा हुआ होता,...**' यानी कि ज्ञानीकी आज्ञा से साधन किये होते `**तो जीवको संसारपरिभ्रमण न होता।**' कबका छुटकारा हो गया होता। क्यों ? क्योंकि ज्ञानीकी आज्ञा पर चलनेसे `मोक्षपट्टन' सुलभ ही है। और (मोक्ष प्राप्तिके लिये) ज्यादा समय भी नहीं जाता। चैतन्यस्वरूपी आत्मा ऐसी अनंत चमत्कारिक शक्तियोंका धारक है। उसका चमत्कार भी अनंत है कि, जिसमें अनंतकालसे चले आ रहे अज्ञान और मिथ्यात्वको जानेमें बहुत अल्पकाल लगता है। बहुत अल्पकालमें सिद्धि हो जाती है। अनंतकालके आगे थोड़ेसे भव तो कुछ नहीं है। वह तो समुद्रमें बिंदु जितना उसका काल है। कालका इतना महासागर है। वह तो अनादि अनंत है। इसके आगे थोड़ेसे भवकी क्या गिनती ? (ज्ञानीकी आज्ञाके) रास्ते पर चढ़ा हो, उसे अधिक भव नहीं हो सकते।

इस कालमें कोई मुनिदशा तक पहुँचे तो वे तो निश्चितरूपसे एकावतारी ही होते हैं। परंतु कृपालुदेव जैसे और निहालचंद्रजी सोगानीजी जैसे तो चतुर्थ गुणस्थानमें (थे फिर भी) एकावतारी हैं। यानी कि जीव कितने अल्प कालमें सिद्धिको प्राप्त होता है ! इसका ये प्रगट दृष्टांत है। फिर भी किसीको मान लो २-४-६-८ भव बाकी हो तो ये कोई बड़ी बात नहीं है। वह कोई बड़ी बात नहीं है।

पूज्य सोगानीजी साहबका ऐसा दृष्टांत है कि, (मार्ग प्राप्तिमें)

बहुत कम समय लगता है - इसके वे सबूत हैं। कोई भी जीव मार्ग पर चढ़े तो उसे बहुत कम समय लगता है, और कम से कम समयमें काम कर लेता है, वे स्वयं तो इसके सबूत हैं।

(कोई भी धर्मसाधन ज्ञानीपुरुषकी) आज्ञासे हुआ होता तो जीवको संसार परिभ्रमण नहीं होता। **`ज्ञानीपुरुषकी जो आज्ञा है वह भवभ्रमणको रोकनेके लिये प्रतिबंध जैसी है,...'** भव कौन बढ़ाता है ? दर्शनमोह। ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा उसे रोकनेके लिये बीचमें आकर खड़ी हो जाती है - कि `नहीं, (तुझे) मोह नहीं करने दूँगी - मोह नहीं करना है।' आगे एक पत्र आयेगा कि, जिसे सत्संगकी चाहत रखनी हो उसे कुटुंब-प्रतिबंधकी चाहत नहीं रखनी।

लिजीये ! ऊपर ही है, पत्रांक - ५१० सामनेवाले पन्ने पर अगले पत्रका बीचवाला पैराग्राफ है न ! उसकी आखरी पंक्ति। **`अनुत्पन्न ऐसे इस जीवको पुत्ररूपसे मानना अथवा ऐसा मनवानेकी इच्छा रहना,...'** (इच्छा रहना) माने अभिप्राय रहना। **`यह सब जीवकी मूढ़ता है,...'** कठोर शब्द इस्तेमाल किया है। **`यह सब जीवकी मूढ़ता है,...'** परंतु हमें असर नहीं हो तो क्या कामका ? (ऐसा होना चाहिये कि) अरे ! मुझे मूढ़ कहते हैं फिर भी मैं नहीं मानता हूँ ! मूढ़ कहने पर भी मैं नहीं मानता हूँ। **`और यह मूढ़ता किसी भी प्रकारसे सत्संगकी इच्छावाले जीवको करना योग्य नहीं है।'**

इसलिये एक बार हमने ऐसा कहा था कि सत्संगमें बैठना हो तो कुटुंब प्रतिबंधवालेके लिये यहाँ `No admission' का Board है। उसको Admission नहीं है। यद्यपि यहाँ ऐसा नहीं लिखा है, Board नहीं लगाया है, लेकिन आनेवालेको ऐसा समझ लेना है। ये एक बात हुई, दूसरा - मान लिजीये कि फिर भी आप यहाँ आकर बैठते हैं, तो भी हम आपका नाम सत्संगियोंमें Registered नहीं करते हैं। Catalogue में नहीं लिखते हैं कि ये भाई हमारे सत्संगी हैं, इस तरह मान्य नहीं करते। (हम तो समझते हैं कि) ठीक है, आज आता

है परंतु कभी न कभी वापिस चला जायेगा। अभी भले ही आता हो परंतु वापिस कभी न कभी चला जायेगा। इसलिये उसका बीमा नहीं लेते। उसका Premium भी नहीं लेते। इसका मतलब क्या ? कि भले आप आते हो परंतु आपको (सत्संगके) वर्गमें बैठने देते हैं ये हमारी भलमनसाहत समझो, वरना उठाकर निकाल देना चाहिये। चलो ! उठो ! भागो यहाँसे, क्यों कुटुंब प्रतिबंध करते हो ? क्यों (करते हो) ? कृपालुदेव सत्संगीको (कुटुंबमें मोह करनेकी) मना करते हैं। आज्ञा पर क्यों पैर रखते हो ? मूढ़ कहते हैं फिर भी नहीं मानते हो !! सत्संगकी इच्छावालेको ये नहीं हो सकता। ये रखना ही नहीं चाहिये। अतः ये तो समझ लेना कि, अच्छा है हमें बैठने देते हैं ऐसा समझकर ही आना, वरना या तो हम चले जायेंगे या हमें निकाल देंगे। यानी अगर हमने प्रतिबंध नहीं छोड़ा तो दोमेंसे एक होगा, यह समझ लेना, ऐसी चर्चा की थी। अतः बात (ही) कुछ ऐसी है कि जीव बहुत मोह दृढ़ करता है। बहुत ही मोह दृढ़ करता है, और यह मोह जब तक है तब तक परिभ्रमणकी चिंतना नहीं आयेगी। फिर आगेकी कोई बात बननेका तो प्रश्न रहता ही नहीं।

**`ज्ञानीपुरुषकी जो आज्ञा है वह भवभ्रमणको रोकनेके लिये प्रतिबंध जैसी है, क्योंकि जिन्हें आत्मार्थके सिवाय दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है..'** जिसे (सिर्फ) आत्माका प्रयोजन है आत्मार्थ माने आत्मकल्याणका प्रयोजन है। (आत्मार्थ शब्दमें) समास है। बीचमें `कल्याण' शब्द समाहित है। (ज्ञानीपुरुषको) आत्मकल्याणके प्रयोजनके अलावा दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है।

`और आत्मार्थ साधकर भी जिनकी देह प्रारब्धवशात् है,...' ज्ञानी कैसे होते हैं ? कि जिन्होंने आत्मार्थ साधकर सिर्फ प्रारब्ध अनुसार जिनकी देह है। (ज्ञानीपुरुष भविष्यका) Planning इसलिये नहीं करते हैं। (उनके अभिप्रायमें ऐसा है कि), प्रारब्ध अनुसार शेष आयुष्य

भोगना होगा। ज्ञान होनेके पश्चात् क्या मालूम होता है ? जो (आयुष्य) बीत गया सो बीत गया। वह भी प्रारब्ध अनुसार ही बीता है, परंतु तब कर्ताबुद्धि थी इसलिये `मैं ऐसा करूँ और ऐसा करूँ, ऐसा करूँ और वैसा करूँ, ये सब चलता था। अब तो मालूम पड़ गया कि, जो बीत गया वह भी प्रारब्ध वशात् था और शेष आयु भी प्रारब्धवशात् ही भोगनी है।' फिर Planning करनेका सवाल कहाँ खड़ा होता है ? (मैं परपदार्थमें कुछ) कर नहीं सकता, ऐसा जिन्हें ज्ञान हैं, उन्हें Planning करनेका प्रश्न कहाँ रहता है ? और यदि कोई Planning करता है तो `कर सकता हूँ' यह बात आकर खड़ी होती है, तो वह तो कर्ताबुद्धि हो गई, सीधी ही बात है।

`**जिनकी देह प्रारब्धवशात् है, ऐसे ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा...**' सिर्फ ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा नहीं ली। आत्मार्थ साधकर प्रारब्धवशात् जिनकी देह है, ऐसे ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा है, ऐसा कहा है। `**सन्मुख जीवको केवल आत्मार्थमें ही प्रेरित करती है;...**' तेरा आत्मकल्याण हो, बस एक ही बात है। हमारे यहाँ दूसरी बात नहीं है। दूसरा विषय यहाँ नहीं चलेगा। एक ही विषय चलता है। तेरा अकल्याण कहाँ हो रहा है ? यह देख ! और तेरा कल्याण कहाँ हो रहा है ? यह देख ! दो ही बात है। अस्ति और नास्तिसे देख लो।

`**और इस जीवने तो पूर्वकालमें कोई आत्मार्थ जाना नहीं है;...**' आत्मकल्याण कैसे हो ? यह भूतकालमें कभी मालूम नहीं पड़ा। `**प्रत्युत आत्मा विस्मरणरूपसे चला आया है।**' उसमें भूला पड़ गया है। तू भूल गया है। आत्मार्थ कैसे होगा ? यही भूल गया है।

प्रायः विभिन्न संप्रदायोंमें जीव कोई न कोई धर्मसाधन करता है। सबसे बड़ा दोष `लोकसंज्ञा' तब कर लेता है। (जीव) लोकसंज्ञासे धर्म करता है। जिन लोगोंमें, जिस संप्रदायमें जिस समाजमें, जिस समुदायमें मैं जाता हूँ, वहाँ ये मेरा स्थान (ऐसा मान लेता है।) उस

स्थानको (झुटानेके लिये और टिकानेके लिये) फिर वह चाहे जैसे भी प्रयत्न करता है। त्याग करता है, दान देता है, जो भी करे या चाहे ज्ञान (भी) करे। वह सब फिर लोकसंज्ञासे ही करता है। लोकसंज्ञासे कभी धर्म होनेका सवाल ही नहीं है। प्रत्युत दर्शनमोह तीव्र होता है। कृपालुदेवने तो उसे `कालकूट ज़हर' ही बताया है। लोकसंज्ञाको कालकूट ज़हर बताया है।

`**वह अपनी कल्पनासे साधन करे तो उससे आत्मार्थ नहीं होता,...**' अपनी कल्पनासे साधन करनेसे कोई आत्मकल्याण हो जाये ऐसा नहीं बनता। `**प्रत्युत आत्मार्थका साधन करता हूँ ऐसा दुष्ट अभिमान उत्पन्न होता है...**' मैं मेरा आत्मकल्याण करता हूँ, करता हूँ न ! इतना तो करता हूँ न ! आत्मकल्याण हेतु इतना तो करता हूँ न ! (इस प्रकारका अभिमान होता है।) ऐसा `दुष्ट अभिमान' कहा, सिर्फ अभिमान नहीं कहा।

मुमुक्षु :- अभिमान कहा, ये तो समझमें आया परंतु दुष्ट अभिमान क्यों कहा ?

पूज्य भाईश्री :- (क्योंकि ये अभिमान) ज्यादा खराब अभिमान है। दूसरे अभिमानसे तो कोई छुड़ा भी देवे - जैसे कोई पैसेवाला हूँ, पैसेवाला हूँ, ऐसा करता हो, तो कोई कह भी देगा कि, `रहने दो भाई ! तेरेसे, शेर पर सवाशेर काफ़ी बैठे हैं, चुपचाप बैठ जा तेरे पास कुछ नहीं है।' ऐसा कहकर दिखा भी देगा। (लेकिन यहाँ इस अभिमानसे) छुड़ाना मुश्किल पड़ता है। दूसरे प्रकारके अभिमान भी करते हैं न ! कोई कुलका, कोई शरीरबलका, कोई पैसेका - धनबलका, तो कोई रूपका। किसी न किसी प्रकारका अभिमान करता है, लेकिन सबमें उसे शेर पर सवाशेर मिलते हैं। जब कि यहाँ तो उसे (ऐसा ही लगता है कि) बस ! मैं, मैं धर्म करता हूँ, मैं धर्म करता हूँ, इसमें से बाहर निकालना बहुत मुश्किल पड़ता है।

दूसरे अभिमानसे पीछे हटना (आसान है इसका) क्या कारण

है ? वे सब पापके स्थूल परिणाम हैं, जब कि यहाँ पुण्यके परिणाम होते हैं। पापमें फँसा हुआ सरलतासे निकलता है, पुण्यमें फँसा हुआ सरलतासे नहीं निकल सकता। ये बहुत धोखेवाली ज़गह है। इससे भी ज्यादा अगर कोई फँसता है तो वह क्षयोपशम ज्ञानमें। परलक्ष्यी क्षयोपशमज्ञानमें फँसा हो, उसे निकालना तो बहुत मुश्किल है। उसे (बाहर निकालना) सबसे ज्यादा मुश्किल है। पापवालेसे पुण्यवालेको निकालना मुश्किल और पुण्यवालेसे क्षयोपशमज्ञानमें - शास्त्रज्ञानमें चढ़ा हो उसे निकालना मुश्किल पड़ता है। इतनी खराब परिस्थिति हो जाती है। इसलिये उसे दुष्ट अभिमान कहा है।

प्रत्युत दुष्ट अभिमान उत्पन्न होता है `**कि जो जीवके लिये संसारका मुख्य हेतु है।**' (परिभ्रमणके) दूसरे सब (कारण) गौण हैं। ये मुख्य हेतु है। अधर्ममें धर्म मानना, अकल्याणमें कल्याण मानना, ये संसारका मुख्य हेतु है। आप जो संसारके परिणाम करते हो, वे तो संसारके हेतु हैं ही, परंतु (ये अभिमान) इससे भी ज्यादा (कारणभूत) है, ऐसा कहना है। इसलिये (हमारी) जिम्मेदारी बढ़ जाती है। धर्मके क्षेत्रमें आनेवालेकी जिम्मेदारी (बढ़ती है)।

(कोई) ध्यानके रास्ते पर चढ़ जाता है। फिर वह योगकेन्द्रमें जाये, ध्यानकेन्द्रमें जाये, ध्यानकी शिबिरोंमें जाये, ये दूसरी बात है, और अभी इन दिनों तो जो कृपालुदेवके नामसे आश्रम होते हैं, वहाँ भी ध्यान करनेका एक नित्यक्रम, कार्यक्रम रख देते हैं। ये सब उलटे रास्ते पर चढ़नेके प्रकार हैं। फिर उसमें क्या होता है ? कि, ध्यानमें बैठने पर मनकी एकाग्रता कैसे होती है ? (कि ध्यानमें बैठने पर थोड़ी चंचलता तो कम होती है), चंचलता कम होने पर बादमें परिस्थिति थोड़ी नाजुक हो जाती है। किसीको कुछ दिखता है तो किसीको कुछ दिखता है; किसीको कुछ तो किसीको कुछ। कोई कहता है मुझे तेजकी लकीर दिखती है, तो कोई कहता है मुझे चक्र-चक्र जैसा तेजका चक्र दिखता है ! कोई कहता है मुझे बहुत

ही शांति लगती है, तो कोई कहता है मुझे आनंदका अनुभव आता है। उसमें तो फिर अनेक प्रकार होते हैं।

(देखो ! कृपालुदेव आगे क्या लिखते हैं) कि `**जो बात स्वप्नमें भी नहीं आती, उसे जीव यदि व्यर्थ कल्पनासे साक्षात्कार जैसी मान ले..**' देखो ! ध्यानमें साक्षात्कार हुआ, ऐसा ले लेते हैं। (मानसिक) शांति हुई और आनंद आया न ! तो (ऐसा मान लेते हैं कि) मुझे आत्माका साक्षात्कार हो गया ! ऐसे ध्यानमें कहाँसे होगा ? क्योंकि उसने अमुक वस्तु देखी उसे साक्षात्कार माना है। अमुक प्रकारका चित्र-विचित्र अनुभव हुआ उसे साक्षात्कार गिन लिया। तो यहाँ कहते हैं, कि सच्चा ध्यान करनेवालेको तो ऐसा स्वप्न भी नहीं आता है। `**जीव यदि व्यर्थ कल्पनासे साक्षात्कार जैसी मान ले तो उससे कल्याण नही हो सकता।**'

`**उसी प्रकार यह जीव पूर्वकालसे अंधा चला आता हुआ भी यदि...**' अभी तक तो उसे आत्मज्ञान संबंधी सूझ नहीं होनेसे अंधा ही है। इस मार्गके लिये तो अंधा ही है। अनभिज्ञ कहो या अंधा कहो, ये तो एक ही बात है। (अंधा होकर) चला आता हुआ भी `**अपनी कल्पनासे आत्मार्थ मान ले तो उसमें सफलता नहीं होती, यह बात बिलकुल समझमें आने जैसी है।**' अपनी कल्पनासे मान ले कि, मेरा कल्याण हो चुका है, मेरा कल्याण मैं कर रहा हूँ, या तो कल्याण हुआ है, उस बातमें कोई दम नहीं है।

`**इसलिये यह तो प्रतीत होता है कि जीवके पूर्वकालीन सर्व अशुभ साधन,...**' (अशुभ साधन) में सब आ गया। अशुभ साधनमें त्याग, व्रत, तप, ज्ञान, ध्यान, दान सब आ गया। `**जीवके पूर्वकालीन सर्व अशुभ साधन, कल्पित साधन...**' दो (साधन) लिये। एक अशुभ साधन कहा, दूसरा कल्पित साधन कहा। अपनी कल्पनासे किये हैं, इसलिये कल्पित कहा। (और अशुभ माने अहितकर साधन इसलिये कहा क्योंकि) खुदका परिभ्रमण बढ़ानेवाले हैं और दर्शनमोहको दृढ़

करानेवाले हैं। (दर्शनमोह बढ़ने पर) गृहीत मिथ्यात्वमें आया न ? गृहीत मिथ्यात्वमें आया। अतः जब दर्शनमोह तीव्र होता है तब अगृहीतमें से गृहीत मिथ्यात्व हो जाता है।

अगृहीत मिथ्यात्वमें जब तक जैन कुलमें जन्म लिया हो, सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको मानता हो, तत्त्वज्ञानका अभ्यास बराबर करता हो, (तब तक) अगृहीत मिथ्यात्वमें है। फिर जब इसमेंसे आत्मा संबंधित कल्पना करे या आत्माकी प्राप्तिके साधन संबंधित कल्पना करे, तब गृहीत (मिथ्यात्व) में आ जाता है। (बुद्धिपूर्वक) नया (साधन) ग्रहण कर लिया इसलिये उसे अशुभ साधन कहा। वहाँ मिथ्यात्व तीव्र हो गया।

`**अशुभ साधन, कल्पित साधन दूर होनेके लिये अपूर्व ज्ञानके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है,...**' (अपूर्व अर्थात्) अभी तक नहीं हुआ वैसा अपूर्वज्ञान (प्रगट करने) सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। `**और वह अपूर्व विचारके बिना उत्पन्न होना संभव नहीं है,...**' अपूर्वज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान, ऐसे ले लेना। आत्मज्ञान है सो अपूर्व ज्ञान है। कभी प्राप्त नहीं हुआ। और यह अपूर्वज्ञान `**अपूर्व विचारके बिना उत्पन्न होना संभव नहीं है;...**'

अपूर्व विचार माने आत्मकल्याण संबंधित अपूर्व विचार। जिसे हम प्रारंभिक आत्मकल्याणकी भावना कहते हैं। ये विषय थोड़ा और स्पष्ट करने जैसा लगता है। जो भी जीव धार्मिकक्षेत्रमें प्रवृत्ति करते हैं, वे सभी जैसे आत्मकल्याणकी भावनासे ही करते हैं, ऐसा मानते हैं। सब जीवमें (जो) अन्य हेतुसे करते हैं उसे तो हम अभी नहीं गिनते हैं। दूसरे हेतुसे प्रवेश करके अन्यथा प्रवृत्ति करते हो, उसका तो काम नहीं है। परंतु सामान्यतः दूसरा हेतु न हो और (इस विषयमें) बराबर दिमाग लगाते हो कि, यहाँ क्या कहते हैं ? ये मुझे बराबर समझना है। मुझे (आत्महित) करना है। मुझे समझना है, करना है। वह ऐसा मानता है कि हम आत्मकल्याणकी भावनासे करते हैं। परंतु वह ऊपर-ऊपरकी भावना ऐसी होती है कि इसका कुछ फल नहीं

आता। यहाँ अपूर्व विचार अर्थात् अपूर्व आत्मकल्याणकी भावनासे आत्मकल्याणके लिये उत्पन्न हुआ विचार। इतनी बात इसमें गर्भित है।

पूज्य बहनश्री (चंपाबहन) की भाषामें कहे तो, `**अंतरसे उत्पन्न हुई भावना**' ऊपर-ऊपरकी नहीं। (ये जीव) ऊपर-ऊपरकी भावना करके द्रव्यलिंगी तक जा चुका। ऊपर-ऊपरकी भावना करके ग्यारह अंग तक जा चुका है। बाह्य क्षयोपशम ज्ञान और बाह्य क्षयोपशम चारित्रमें (इतनी हद तक जा चुका।) दोनों क्षयोपशम भावसे हुआ है, लेकिन अंतरकी भावना नहीं हुई। आत्मज्ञानके लिये अपूर्व आत्मभावना और अपूर्व आत्मकल्याणका निर्धार (होना चाहिये।) विचार अर्थात् निर्धार-निर्णय कि, (आत्महित) कर ही लेना है। किसी भी कीमत पर कर लेना है - ऐसा जब तक नहीं होता, तब तक जीव चिंतनामें नहीं आयेगा। इस तरह अपूर्व ज्ञान होनेके लिये अपूर्व विचार चाहिये।

`**और यह अपूर्व विचार,...**' अब वापिस मूल मुद्दे पर आते हैं, `**यह अपूर्व विचार, अपूर्व पुरुषके आराधनके बिना दूसरे किस प्रकारसे जीवको प्राप्त हो,...**' कि नहीं, दूसरे किसी भी प्रकारसे नहीं हो सकता। अपूर्व पुरुष अर्थात् ज्ञानीपुरुष कहो चाहे सत्पुरुष कहो, उनके `**आराधन बिना...**' देखा ? इनके `सत्संग बिना' ऐस शब्द यहाँ नहीं लिखा, क्योंकि यहाँ आज्ञा लेनी है न ! आज्ञाका आराधन करना है। आपको जो Homework दिया, वह आप क्यों करके नहीं आते हो ? स्पष्ट बात है। Homework दिया है कि, घर जाकर परिवारमें अपनत्व नहीं करना, फिर क्यों हो रहा है भाई ? `परलक्ष्य नहीं करना है' फिर क्यों परलक्ष्य होता है ? जो Homework दिया है, वह करके आओ। इस तरह जो काम किया उसका नाम `आराधन', सिर्फ सुना इसका नाम आराधन नहीं, विचार किया इसका नाम आराधन नहीं। (जो काम दिया था) वह किया कि नहीं किया ? वह `**अपूर्व पुरुषके आराधन बिना दूसरे किस प्रकारसे जीवको प्राप्त हो,...**'

कि उसमें दूसरे किसी भी प्रकारसे (प्राप्त) नहीं होता।

`यह विचार करते हुए यही सिद्धांत फलित होता है कि ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाका आराधन, यह सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय है;...'** देखो ! सम्यक्‌दर्शन नहीं लिया यहाँ पर ! **`सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठा उपाय है;...' (ऐसा कहा है।) यदि तू एक दफ़ा ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाके आराधनमें आ गया, तो तुझे अपूर्व विचार आयेगा, तुझे अपूर्व ज्ञान होगा और तू सिद्धपद तक पहुँच जायेगा। इस जगतका ये सर्वोत्कृष्ट और सबसे बड़ा काम है और इसकी चर्चा चल रही है। सब्जी-तरकारीकी चर्चा नहीं चलती है कि चलो ! (आज्ञाको हम) Lightly ले लें। ठीक है ! जैसे `वे तो ज्ञानी हैं, सो कहते रहते हैं। ज्ञानी ऐसा कहते हैं, हम भी प्रयत्न तो करते रहेंगे... करते रहेंगे... करते-करते कुछ हो जायेगा शायद।' (लेकिन ऐसा) बिलकुल नहीं चलेगा। इसकी Sincerity (गंभीरता) पूरी-पूरी आनी ही चाहिये। Most Sincere हो जाना पड़ेगा।

अभी खुद मनुष्य पर्यायमें है, यह परिस्थिति पर्वतकी चोटी पर लटक रहा है और नीचे खाई है, ऐसी है। हाथ छूट गया तो खाईमें जा गिरेगा। ऐसी चारगतिकी खाई है नीचे और खुद लटक रहा है। अब ये जो लटक रहा है वह पुरुषार्थ करके ऊपर नहीं चढ़ गया तो निश्चितरूपसे नीचे गिरनेवाला ही है। कब तक लटकता रहेगा ? हाथ थक जायेंगे। लटकता हुआ कब तक रहेगा ? हाथका बल तो मर्यादित है। उस बलका उपयोग करके ऊपर चढ़कर निकल गया तो निकल गया, वरना समझो गया खाईमें ! चारगतिके दुःख आमंत्रण दे रहे हैं। और इसमें भी खास करके जिसकी उम्र ५०-६० सालकी हो गई हो उन सबको तो नज़दीकी आमंत्रण है। चारगतिके दुःख आमंत्रण भेज रहे हैं। अगर जीव समझ जाये तो अच्छा है-(दोषोंसे) पीछे हट जाये तो अच्छी बात है। (वरना आयु पूरी होनेके पश्चात्) बहुत भयानक स्थिति है !! भयंकर परिभ्रमणमें फँस जाये

ऐसा बड़ा तूफ़ान - Cyclone चल रहा है। कहाँ मरता है तो कहाँ जन्म लेता है ! कहाँ जन्मे और कहाँ मरे ! कोई ठिकाना नहीं है किसीका।

`ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाका आराधन, यह सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय है; और यह बात जब जीवको मान्य होती है,...'** देखो! आज्ञाका आराधनकी बात जीव जबसे मान्य करता है, तबसे - यानी कि आज्ञाको मानने लगा तबसे - **`तभीसे दूसरे दोषोंका उपशमन और निवर्तन शुरू होता है।' वरना कब कौनसा दोष पर्यायमें उत्पन्न हो जायेगा, उसका खुदको भान नहीं रहेगा। पीछे से मालूम पड़े उसका कोई अर्थ नहीं है। दूसरे दोषोंका सहज (उपशमन शुरू होता है)। जीव एक निश्चयमें आ गया कि, मुझे आज्ञाका आराधन करना ही है और इस भूमिकामें चाहे कैसे भी मुझे दर्शनमोहको मंद करना ही है। इसलिये जहाँ-जहाँ खुदको दर्शनमोह होता हो, वहाँ-वहाँ उसे पकड़नेमें एकदम जागृत हो जाये, चौकन्ना हो जाये कि मेरे घरमें (परिणमनमें) ये सब कुत्तें - बिल्लीयाँ (दोष) कहाँसे आने लगे ! मैं चौकीदार बनकर बैठा हूँ न ! (ऐसे तो) नहीं चलेगा। इस तरह (दोषको - दर्शनमोहको) पकड़ने लगे। बस ! (इस एक निश्चयमें आने पर) दूसरे दोषोंका उपशमन - निवर्तन सहज-सहज होने लगेगा। एक आज्ञाका आराधनमें आकर काम शुरू करे कि, अंदर से पूरा भवन (जीवन) पलट जायेगा। अंदरका पूरा भवन ही पलट जायेगा। वरना क्या होगा ? स्वाध्याय स्वाध्यायकी ज़गह (होता रहेगा) और शेष जिंदगी दूसरे (जीवोंकी माफ़िक पूरी हो जायेगी)। दोनोंको कुछ लेना या देना ! कोई संबंध नहीं रहेगा। स्वाध्यायकी बात विस्मृत हो जायेगी और जिंदगी यूँ ही चली जायेगी !

अतः इस एक बातको आखिरमें सारांशरूप कहाँ ले गये ? कि (किसी भी धर्मसाधनको) अपनी मनमानीसे नहीं करके, ज्ञानीकी आज्ञासे करें - यह एक ही मुद्दा है। तो अपूर्व ऐसा आत्मज्ञान होगा,

और वही सिद्धपदका उपाय है, दूसरा कोई सिद्धपदका उपाय नहीं है। वैसे देखा जाये तो उन्होंने इतनी बातमें सारा Total मार दिया है। पत्रका पूरा सारांश दे दिया है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! १४७ पत्रांकमें ऐसा कहा है कि, आज्ञामें ही एकतान हुए बिना परमार्थ मार्गमें टिकना बहुत ही असुलभ है। एकतान होना भी बहुत असुलभ है। इसमें Continuation में `एकतान' शब्द दो बार इस्तेमाल हुआ तो उसमें क्या लेना ?

पूज्य भाईश्री :- आराधन करना यानी कि एकतान होकर आराधन करना, ऐसा कहते हैं। वहाँ पत्रांक - १४७ में कृपालुदेवको ऐसा कहना है कि, आराधन करना माने एकतान होकर आराधन करना, एक लयसे आराधन करना, एकनिष्ठासे आराधन करना, एक लक्ष्यसे आराधन करना और पूरी शक्तिसे आराधन करना। ऐसे ही ऊपर-ऊपरसे ढीला छोड़कर बिलकुल नहीं, ऐसा (कहना चाहते हैं।)

अब (आज्ञामें) एकतान होना असुलभ है इसका क्या कारण ? कि दूसरी ओर सब मोहके प्रकार खड़े हैं। संसारके मोहके सभी प्रकार वैसे के वैसे मौजूद हैं। अब अगर यहाँ (आज्ञामें) एकतान होना हो तो वहाँसे उठ जाना पड़ेगा। ये मोहकी Seat खाली करनी पड़ेगी, इसलिये असुलभ है। उसे (मोहके सामने) लड़ना होगा और उस वक्त जो भीतरमें Friction (घर्षण) चलता है, लड़ाई चलती है, वह एक दफ़ा अच्छी-खासी चलती है। उसमें अगर जीत गया तो हमेशाके लिये जीत गया, वरना अनंतकालसे हारता तो आया ही है, ऐसा है - इसलिये असुलभ है। एक बार तो लड़ना पड़ता है। खुदके ही मोहके सामने खुदको लड़ना पड़ता है। क्योंकि इस मोहने अनंत शक्तिशाली ऐसे अपने परमेश्वरको दबा दिया है। उसके ऊपर चढ़ बैठा है - दबाकर छाती पर चढ़ बैठा है हिलने नहीं देता है। अनंत शक्ति अंदर भरी है फिर भी छाती पर चढ़ बैठा है। ऐसी खराब परिस्थिति है। इसलिये उसे कैसे (मंद) करना और कमज़ोर

करना, यह बात जो प्रयत्न करता है, उसे ऐसा मालूम होता है कि बात थोड़ी मुश्किल तो है। बात कठिन है। परंतु जिसने निर्धार किया है कि किसी भी कीमत पर करना ही है, उसे इतना कठिन नहीं लगता और लगे तो भी एक बार वह जीत जायेगा। क्योंकि उसका निर्धार बलवान है।

देखो ! वहाँ पत्रांक - १२८ में क्या कहा है ? `**ऐसा दृढ़त्व आत्मामें प्रकाशित होता है।**' रागमेंसे प्रकाशित नहीं होता। आत्मकल्याणकी भावना रागसे की है या आत्मामेंसे की है ? बस! इतना ही सवाल है ! अगर आत्मामेंसे उत्पन्न हुई होगी, तब तो दिक्कत नहीं है। वह आत्माका सत्त्व है। (अगर) रागसे की होगी तो गया (संसारमें) ! इसलिये `आत्मामेंसे प्रकाशित होता है' ऐसा लिखा है। अंतरसे कहो, चाहे आत्मामेंसे कहो, एक ही बात है। इस तरह काम होता है। यह बात बहुत स्पष्ट है (कि), काम स्पष्टरूपसे होना चाहिये। बात जितनी स्पष्ट है, ऐसा ही काम स्पष्ट होना चाहिये।

हमारे घरमें कामवाली बाई रखते हैं। हररोज़ कपड़े मैले छोड़ दे और बरतन जूठे रख दे, तो हम क्या करते हैं, २-४ बार बता देते हैं कि `देख ! इसमें क्या है ? कपड़े वैसेके वैसे मैले हैं। तुने सिर्फ पानीमें डूबोकर निकाल दिया होगा, ऐसा लगता है ! कोई मेहनत ही नहीं की, और बरतन भी कोई बराबर साफ नहीं किये हैं, वरना ये सब साफ नहीं हो जाता क्या ? जूठन ऐसाका ऐसा बरतनमें लगा हुआ है।' ऐसा एक बार, दो बार, पाँच बार, सात बार, दस बार कहेंगे, फिर क्या करेंगे ? उसे कामसे निकाल ही देना पड़े। क्या होगा ? कामवाली बाईको छुट्टी ही देनी पड़ेगी न ? काम करके न आये तो क्या करना होगा ? यहाँ भी ऐसा है। काम इतना ही साफ करना चाहिये। जैसी आज्ञा है ठीक वैसा ही साफ काम होना चाहिये। थोड़ा देर-सबेर हो, कोई बात नहीं परंतु Sincere Attempt (गंभीर प्रयास) होना चाहिये। एकदम गंभीर

प्रयत्न (होना चाहिए) ! फिर दिक्कत नहीं होगी। यहाँ तक रखते हैं।

ज्ञान, ध्यान, जप, तप आदि किसी भी क्रिया संबंधी ज्ञानीपुरुषका मार्गदर्शन आत्मार्थी जीवके लिए परम फलका कारण है। - ऐसा निश्चय होना चाहिये - दृढ़ निश्चय उस प्रकारसे होना चाहिये, कि जिससे ज्ञानीपुरुषका वचन शिरोधार्य होनेमें पीछेसे भी बुद्धि मचक नहीं खा जाय। लोकसंज्ञाके कारण भी उन वचनोंकी गौणता नहीं हो। शास्त्रसंज्ञासे भी उन वचनोंके प्रति शिथिलता नहीं आ जाय। अगर लोकसंज्ञा या शास्त्रसंज्ञा संबंधित कोई विकल्प हो तो भी वह निश्चयसे भ्रांति है - ऐसा लक्षमें रहे, वैसी धीरजसे ज्ञानीपुरुषकी वचनरूप आज्ञाका अवधारण करने योग्य है। वैसी योग्यता प्राप्त होने पर ज्ञानीपुरुष द्वारा मार्गका रहस्य संप्राप्त होता है। जिसका फल - परम फल है। ऐसा सत्पुरुषोंका परम निश्चय है।

-पूज्य भाईश्री

(अनुभव संजीवनी-५८३)

ॐ

`श्रीमद् राजचंद्र'

पत्रांक - ५६०

बंबई, पौष, १९५१

ॐ

यदि ज्ञानीपुरुषके दृढ़ाश्रयसे सर्वोत्कृष्ट मोक्षपद सुलभ है, तो फिर क्षण क्षणमें आत्मोपयोगको स्थिर करना योग्य है, ऐसा जो कठिन मार्ग वह ज्ञानीपुरुषके दृढ़ आश्रयसे प्राप्त होना क्यों सुलभ न हो ? क्योंकि उस उपयोगकी एकाग्रताके बिना तो मोक्षपदकी उत्पत्ति है नहीं। ज्ञानीपुरुषके वचनका दृढ़ आश्रय जिसे हो उसे सर्व साधन सलभ हो जायें, ऐसा अखंड निश्चय सत्पुरुषोंने किया है। तो फिर हम कहते हैं कि इन वृत्तियोंका जय करना योग्य है, उन वृत्तियोंका जय क्यों न हो सके ? इतना सत्य है कि इस दुषमकालमें सत्संगकी समीपता या दृढ़ आश्रय विशेष चाहिये और असत्संगसे अत्यन्त निवृत्ति चाहिये, तो भी मुमुक्षुके लिये तो यही योग्य है कि वह कठिनसे कठिन आत्मसाधनकी प्रथम इच्छा करे कि जिससे सर्व साधन अल्पकालमें फलीभूत हो।

श्री तीर्थंकरने तो यहाँ तक कहा है कि जिन ज्ञानीपुरुषकी दशा संसारपरिक्षीण हुई है उन ज्ञानीपुरुषको परंपरा कर्मबंध सम्भवित नहीं है, तो भी पुरुषार्थको मुख्य

रखना चाहिये कि जो दूसरे जीवके लिये भी आत्मसाधन-परिणामका हेतु हो।

`समसयसार'मेंसे जो काव्य लिखा है, उसके लिये तथा दूसरे सिद्धांतोंके लिये समागममें समाधान करना सुगम होगा।

ज्ञानीपुरुषको आत्मप्रतिबंधरूपसे संसारसेवा नहीं होती परंतु प्रारब्धप्रतिबंधरूपसे होती है। ऐसा होने पर भी उससे निवृत्तिरूप परिणामको प्राप्त करे, ऐसी ज्ञानीकी रीति होती है; जिस रीतिका आश्रय करते हुए आज तीन वर्षोंसे विशेषत: वैसा किया है और उसमें अवश्य आत्मदशाको भुलाने जैसा सम्भव रहे, वैसे उदयको भी यथाशक्ति समपरिणामसे सहन किया है। यद्यपि उस सहन करनेके कालमें सर्वसंगनिवृत्ति किसी तरह हो तो अच्छा, ऐसा सूझता रहा है; तो भी सर्वसंगनिवृत्तिमें जो दशा रहनी चाहिये वह दशा उदयमें रहे तो अल्पकालमें विशेष कर्मकी निवृत्ति हो, ऐसा समझकर यथाशक्य उस प्रकारसे किया है। परंतु अब मनमें ऐसा रहा करता है कि इस प्रसंगसे अर्थात् सकल गृहवाससे दूर न हुआ जा सके तो भी व्यापारादि प्रसंगसे निवृत्त, दूर हुआ जाये तो अच्छा। क्योंकि आत्मभावमें परिणत होनेके लिये जो दशा ज्ञानीकी होना चाहिये वह दशा इस व्यापार-व्यवहारसे मुमुक्षुजीवको दिखायी नहीं देती। यह प्रकार जो लिखा है उस विषयमें अब कभी कभी विशेष विचारका उदय होता है। उसका जो परिणाम आये सो ठीक। यह प्रसंग लिखा है, उसे अभी लोगोंमें प्रगट होने देना योग्य नहीं है। माघ सुदी दूजको उस तरफ आनेकी सम्भावना रहती है। यही विनती।

आ. स्वा. प्रणाम

प्रवचन - ९
'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-५६०
दि. २१-०२-१९९९ - भावनगर

(श्रीमद् राजचंद्र) पत्रांक - ५६० है। ``**यदि ज्ञानीपुरुषके दृढ़ाश्रयसे सर्वोत्कृष्ट मोक्षपद सुलभ है, तो फिर क्षण क्षणमें आत्मोपयोगको स्थिर करना योग्य है, ऐसा जो कठिन मार्ग है वह ज्ञानीपुरुषके दृढ़ आश्रयसे प्राप्त होना क्यों सुलभ न हो ?**'' क्या कहते हैं ? कि यदि जीव दृढ़पने ज्ञानीपुरुषका आश्रय करे (तो), आश्रय करना माने क्या ? कि दृढ़तापूर्वक आज्ञांकित रहनेका पुरुषार्थ करे उसका नाम दृढ़ाश्रय है। (उसमें भाव ऐसा रहता है कि) उनकी आज्ञामें रहना है। बिलकुल भी उनकी आज्ञासे बाहर जाना नहीं है। और उस आज्ञामें रहते हुए मुझे जो कुछ छोड़ना पड़े वह छोड़नेके लिये मैं तैयार हूँ।

जैसे किसीकी प्रकृत्ति उतावली है। (तो) उसको धीरज रखना और अधीरतामें नहीं आना चाहिये, फिर चाहे कोई भी परिस्थिति सहन करनेके लिये तैयार रहे लेकिन धीरज ही रखे। (उसको ऐसा लगता है कि) मुझे आज्ञा दी गई है। धीरज रखना, शांति रखना - ऐसी मुझे आज्ञा है। आज्ञाका उल्लंघन मुझसे नहीं होगा। इस तरह जितनी-जितनी खुदको लागू पड़े ऐसी बात हो, भले ही सीधी नहीं कही हो; सत्संगमें (समष्टिगतरूपसे) बात चली हो, सामूहिक उपदेशमें बात चली हो, फिर भी उसको आज्ञाके रूपमें अवधारण कर ले। (यदि इस प्रकारमें आ जाये तो) सिर्फ स्वरूपमें उपयोग स्थिर हो जाये, इतना ही नहीं परंतु मोक्ष होना भी सुलभ है, ऐसा कहते हैं। मोक्ष होना भी सुलभ है क्योंकि ज्ञानीकी आज्ञा किसी भी स्तर पर

जीवको अटकने नहीं देती, सब प्रकारकी पर्याय-दृष्टिका निषेध है।

किस पर्यायका अहम् करना है ? अहंकार किस पर्यायका करना है ? तेरे स्वरूपकी ओर देख न ! एक समयकी केवलज्ञानकी पर्याय भी (जिसके आगे) कुछ नहीं है। (स्वरूपके आगे केवलज्ञानकी पर्याय) अनंतवें भागमें (है) इसका अर्थ क्या हुआ ? एक प्रतिशत या एक प्रतिशतके हज़ारवें भागका अर्थ क्या ? अरे ! एक प्रतिशतका एक अरबवाँ भाग भी नहीं हुआ। मूल स्वरूपके एक प्रतिशताका एक अरबवाँ भाग भी नहीं, उसका नाम अनंतवाँ भाग है। वस्तु(स्वरूप), आत्मस्वरूप, परमात्मस्वरूप, परमपद इतना महान है, कि, किस पर्यायका तुझे अहंकार करना है ? तेरे स्वरूपके आगे तो केवलज्ञानकी पर्यायकी ये हालत है तो दूसरी विकारी पर्याय, अधूरी पर्याय, बुद्धिकी पर्याय, होशियारीकी पर्याय, किस पर्यायका अहंकार करना है तुझे ? कोई स्थान ही नहीं है। ऐसी द्रव्यदृष्टि प्रगट करनेकी ज्ञानीपुरुषकी आज्ञा है। किसी भी दोषमें रहने ही नहीं देवे। किसी भी स्तरमें, किसी भी दोषमें खड़ा नहीं रहने दे। उपदेशकी शृंखला ही ऐसी है। इससे मोक्षपद भी सुलभ है। जब तक पूर्ण शुद्धि नहीं हो तब तक दोषमें रहने ही न दे।

यदि मोक्षपद सुलभ है ``**...तो फिर क्षण क्षणमें आत्मोपयोगको स्थिर करना योग्य है, ऐसा जो कठिन मार्ग...**'' मुनिदशामें क्षण-क्षणमें स्वरूप लीनता होती है। ``**...वह ज्ञानीपुरुषके दृढ़ आश्रयसे प्राप्त होना क्यों सुलभ न हो ?**'' सुलभ (ही) हो। वह दशा भी सुलभ हो तो नीचेकी दशा कैसे सुलभ नहीं होगी ? अवश्य होगी, उसमें प्रश्न ही नहीं रहता।

``**...क्योंकि उस उपयोगकी एकाग्रताके बिना तो मोक्षपदकी उत्पत्ति है नहीं।**'' क्षण क्षण में उपयोग स्थिर होना यह तो फिर भी अस्थिरताको सूचित करती है। धारावाहीरूपसे एकाग्रता रहे वह स्थिरताको सूचित करती है। और उस स्थिरताके फलस्वरूप मोक्षपदकी

उत्पत्ति है। अतः ज्ञानीपुरुषके आश्रयसे आत्माका परम कल्याण सुलभ है, तो नीचेके स्तरके सभी Stage जो है, वे तो सुलभ ही हैं।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! दृढ़ आश्रयकी पूर्वभूमिकामें परिणमनमें क्या होना चाहिये ?

पूज्य भाईश्री :- आत्मकल्याणकी उत्कृष्ट भावना (होनी चाहिये) आत्मकल्याणकी उत्कृष्ट भावना (ऐसी होती) है कि, अगर ज्ञानीपुरुषके दृढ़ आश्रयसे मेरा परमकल्याण सहज मात्रमें सधता हो तो मुझे दृढ़ आश्रयमें रहना ही चाहिये। उसमें दूसरा कोई विकल्प हो सकता है क्या ?

लाइसेन्स पद्धतिमें लाइसेन्स जिसके पास होगा वही इसकी इन्डस्ट्री लगा सकता है, ऐसा होता है न ? (जब) सरकार लाइसेन्स देती न हो। आवेदनपत्र तो सब देते हैं कि हमें लाइसेन्स दो। उसे मालूम होता है कि, सरकारकी लाइसेन्स देनेकी नीति कैसी होती है ? बीचमें ऐसा ही था न ! नयी गाड़ी बनानेका लायसेन्स नहीं मिलता था इसलिये फीयाट गाड़ी बेटीका जन्म हो तब लिखाने पर उसकी डिलवरी बेटीकी शादीके वक्त मिलती है। फीयाट गाड़ीकी ये दशा थी। और दुगने-तीनगने पैसेका ओन चलता था। अब मान लो ऐसा Monopolized business का लाइसेन्स देनेके लिये मिनिस्टरने आपको दिल्ही सामनेसे बुलाया हो; Signing authority जो भी प्रधान हो उस मिनिस्टरको लायसेन्स पर Sign करनेकी Authority होती है। - ऐसी परिस्थितिमें आपको सामनेसे आमंत्रित किया गया हो। (तो) जब उसकी ऑफिस पर आप जाओ तब उसका चपरासी अगर ऐसा कहे `आप बैठिये, मैं कहूँ बादमें अंदर जाना।' जब कि साहबको भी टाइम कम हो, आपको भी कहा हो कि टाइम पर आ जाना, बादमें मैं दूसरे काममें व्यस्त हूँ, समय कम रह गया हो (तब) क्या करेंगे चपरासीको ? चपरासी जैसे राजी होगा (ऐसा करेंगे)। मिनिस्टर तो नहीं उसका चपरासी राजी हो जाये ऐसा करेंगे कि नहीं ?

(ऐसा कहेंगे) ये लो ५,०००, ये लो ५०,०००। क्योंकि आपको (नये कारखानेसे) करोड़ों कमाने हैं। फिर वह साइन करनेवाला चाहे ढेढ़-भंगी कुरसी पर बैठा हो (तो भी आजिजी करेंगे।) अभी तो बिठा देते हैं न Schedule cast वालेको ! तो उसे भी सलाम करके बैठोगे (और कहोगे) `साहब ! मेरे लायक कोई काम हो तो आधी रातको मुझे बुला लेना, मद्राससे दिल्ही आनेमें मुझे देर नहीं लगेगी।' क्या कहेगा ? जब लाभ बड़ा होनेवाला हो तब जीव कितना गरज़वान होता है ! (दृष्टांत कहनेके पीछे) हेतु क्या है ? कि जब लाभ बड़ा होनेवाला हो तब जीवको कितनी गरज होती है ! बड़ा सेठ हो तो भी उस भंगीके आगे पूँछ हिलायेगा। कुत्ता जैसे, पिल्ला जैसे पूँछ हिलाता है न ! वैसे पूँछ हिलायेगा। कुत्ता होता है वैसा करेगा। गरज़की Feeling ऐसी होती है। जैसे कुत्तेको रोटीका एक टुकड़ा डालने पर वह कैसे पूँछ हिलाता है, वैसे लाइसेन्सरूपी रोटीका टुकड़ा डालने पर वैसे ही पूँछ हिलायेगा। तो फिर जिनके आश्रयसे केवलज्ञान प्रगट हो, जिनकी आज्ञासे केवलज्ञान प्रगट हो, उनकी कितनी गरज़ होगी ? हमारी समझमें इसका कोई हिसाब-किताब है कि नहीं ? ऐसा कहना चाहते हैं।

आत्मकल्याण क्या चीज़ है ? और सहजमात्रमें सुगमतासे कैसे साधा जाये ? और कैसे सधता है ? यह समझमें आने पर दृढ़ आश्रय होता है, वरना नहीं होता। जिसे Total surrendership कही जाती है। कैसी ? Total, Partly नहीं। Partly surrendership नहीं बल्कि Total surrendership - सम्पूर्ण शरणागति।

``**ज्ञानीपुरुषके वचनका दृढ़ आश्रय जिसे हो...**'' यानी कि उस भूमिकामें जो जीव आ गया (उसको ऐसा लगेगा कि) मुझे कोई बाधा नहीं है। ``**...उसे सर्व साधन सुलभ हो जायें, ऐसा अखण्ड निश्चय सत्पुरुषोंने किया है।**'' उसे कोई भी साधन कठिन लगता ही नहीं। उसे कोई बात कठिन लगती ही नहीं फिर क्या ! चाहे

कैसा भी प्रयोग क्यों न दे ज्ञानी ! उसकी परिस्थिति देखकर ज्ञानी प्रयोग देते हैं, फिर उसे कुछ मुश्किल लगता ही नहीं। क्यों ? क्योंकि मेरे परम कल्याणका (उपाय) ये मुझे दिखा रहे हैं। मुझे तो यही देखना है। इसमें तो कुछ (मुश्किली) है ही नहीं। मेरे लिये तो कोई भी बात कठिन है ही नहीं। कोई बात मुश्किल है ही नहीं। नहीं होनेका प्रश्न ही नहीं है। वे जो भी कहें वह अवश्य हो सकता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानीके आश्रयमें आये तो उसे प्रकृत्ति दोष भी बाधा नहीं करते ?

पूज्य भाईश्री :- प्रकृतिका समर्पण कर देता है। प्रकृति है सो आत्मा बन गई है। अज्ञानदशामें प्रकृति ही आत्मा बन चुकी है। प्राण और प्रकृति साथ-साथ छूटते हैं ऐसा क्यों कहा जाता है ? क्योंकि प्राण छोड़ सकता है लेकिन प्रकृति नहीं छोड़ सकता। (ऐसा लगता है कि) `मर जाऊँ तो बेहतर है, लेकिन ऐसे तो बिलकुल नहीं चलाऊँगा।' `मर जाऊँ तो बेहतर है लेकिन वैसे नहीं होने दूँगा' - ऐसा कहेगा। ये प्रकृतिकी आवाज़ है। (वह) आत्माके साथ एकमेक हो चुका हुआ भाव है। (आज्ञांकित जीव) उसे भी सहजमात्रमें चुटकी बजानेकी तरह छोड़ देगा। मेरे लिये आज्ञा मतलब आज्ञा, बात पूरी हो गई।

`आज्ञा ही धर्म है' इसलिये ऐसा सूत्र है। जैन शासनमें ऐसा सूत्र है। `**आणाये धम्मो**' आज्ञा ही धर्म है। `आणाये धम्मो' और जैसे कठिन तपस्या हो तो कहेगा `**आणाये तवो**' आज्ञा ही मेरे लिये तपश्चर्या है। और कुछ मैं नहीं समझता। बहुतसे ऐसे लौकिकमें दृष्टांत बन चुके हैं। ये गुरुगोविंदसिंहका दृष्टांत है।

मुसलिम बादशाह हिन्दुस्तानकी बस्तीको - सबको मुसलिम बना रहे थे। एक हाथमें कुरान रखते थे तो दूसरे हाथमें तलवार रखते थे। कुरान हाथमें लेकर कहते थे, या तो मुसलिम बनो या तलवारसे

गरदन उड़ा दी जायेगी। इस तरह हज़ारो लोग मुसलिम बन गये। जयपूरके राजाकी बहनके साथ अकबरने शादी की। क्षत्रियाणीकी बेटी मुसलिमके घर गई। वे लोग तो बहुत स्त्रीयाँ रखते हैं। क्षत्रियोंकी बेटीयोंको - राजाओंकी बहनें-बेटीयोंकी शादी कर दी हैं। ये तो इतिहास बोलता है। राजा मानसिंहकी अस्पताल है न ! सवाई मानसिंहकी जो अस्पताल है जयपूरमें उस मानसिंहकी बहन अकबरके घर गई। उन लोगोंने इतने जुल्म किये थे। गुरुगोविंदसिंहके लिये ऐसा कहा जाता है कि पंजाबमें वे अगर नहीं होते तो `सुन्नत होत सबकी' सब मुसलमान ही होते। हिन्दुस्तानमें एक भी हिन्दु बचा नहीं होता, सब मुसलमान होते।

जेलम नदी है। उसकी एक तरफ़ मुगलोंके सैन्यका पड़ाव है और दूसरी ओर मुठ्ठीभर सिख लोग हैं। वे लोग तो बहुत बड़ा सैन्य लेकर आते थे। सुबह उनलोगोंसे अगर युद्ध करने जाये तो इन सबको मुसलमान होना पड़े। ऐसेमें (गुरुगोविंदसिंहने) रातको बारह बजे सबको छावनीमें बुलाया और पूछा, सर उतारकर देनेके लिये कौन तैयार है ? ये मुझे कहिये। मैं यदि ऐसा कहूँ कि मुझे आपका सिर चाहिये, तो अपनी ही तलवारसे काटकर चोटली पकड़कर दे दें, कि लिजीये ये मेरा सिर ! जो लोग ऐसे हो वे यहाँ रहे बाकीके (सब यहाँसे चले जाये।) - वैसे लोग इस सैन्यमें मुझे नहीं चाहिये। तो कुछ एक लोग ऐसे निकले - यानी कि १००-२०० आदमी ऐसे निकले कि जैसे अगर आप कहेंगे तो अभी सर काटकर देनेके लिये तैयार हैं। (तब गोविंदसिंहने कहा) `अब दिक्कत नहीं आयेगी, इतने लोग काफी हैं। फिर कहा अभी ही आपलोग इस नदीमें कुदकर बिना आवाज़ किये तिरकर सामनेके किनारे पर पहुँच जाओ। ये (मुग़ल) लोग सो रहे हैं उसके ऊपर टूट पड़ो। सबको काट दिया। नींदमें ही सबको काट डाला।' मुसलमान बादशाह वह लड़ाई हार गया और हिन्दुस्तान मुसलमान होते-होते बच गया, ऐसा कहा जाता

है। जब देशकी ख़ातिर लोगोंको अपना सिर देनेकी तैयारी होती है तो अनंत जन्म-मरणसे बचनेके लिये अभिप्रायकी कितनी तैयारी होनी चाहिये ?! ये बात है।

इसलिये ऐसा कहते हैं कि, `**उसे सर्व साधन सुलभ हो जायें, ऐसा अखंड निश्चय सत्पुरुषोंने किया है।**' जो भी सत्पुरुष हुए, वे इसी प्रकार सत्पुरुष हुए हैं। वे भी किसी ज्ञानीके आश्रयसे सत्पुरुष हुए हैं और खुदके अनुभवसे उन्होंने ये अखंड निश्चय किया है। यह सिद्धांत - यह निश्चय खंडित नहीं हो सकता, ऐसा कहना चाहते हैं।

`**तो फिर हम कहते हैं कि इन वृत्तियोंका जय करना योग्य है, उन वृत्तियोंका जय क्यों न हो सके ?**' अगर (ज्ञानीपुरुषके) वचनका दृढ़ आश्रय हो तो सवाल ही पैदा नहीं होता। कोई भी वृत्तिका जय हो सकता है। क्रोध, मान, माया, लोभ कोई भी क्यों न हो ! (जय) हो सकता है। - नहीं होनेका प्रश्न ही नहीं रहता। दूसरा कुछ मत देख, सिर्फ इतना देख कि इससे तुझे क्या मिलनेवाला है ? मैं मेरी वृत्तिको मर्यादामें लाऊँ या मेरी वृत्तिकी पकड़ छोड़ दूँ, तो इसके बदलेमें मुझे क्या मिलता है ? सिर्फ इतना ही देखना है। यदि मुझे मेरा परमेश्वरपद मिलता हो तो इन (वृत्तियोंको छोड़नेकी बात तो) इसके आगे कुछ नहीं है। जगतके पदार्थ तो कुछ नहीं हैं। और कोई भी वृत्ति हो, सब दुःखदायी हैं। जो भी सांसारिक वृत्तियाँ हैं, वे तो सब आकुलताजनक और दुःखदायी हैं, मलिन हैं। इसका समर्पण करनेमें क्या दिक्कत (है) ? वृत्ति - संसारवृत्ति खुद मलिनभाव है। तो उस मलिनवृत्तिका समर्पण करनेमें क्या दिक्कत होगी ? उसमें ऐसा तो क्या है ? पकड़ रखे ऐसा क्या है ? कि जिसको पकड़ रखनेसे जीवकी अधोगति होती है। स्वलक्ष्यी यथार्थ समझ होने पर एकदम सुगम बात है - बहुत ही सुगम बात है।

`**इतना सत्य है कि इस दुषमकालमें सत्संगकी समीपता**

या दृढ़ आश्रय विशेष चाहिये...' ऐसा यह काल है। काल ऐसा है मतलब अभी ऐसे हीन परिणामी जीव हैं कि जिनका संग करनेसे परिणाम बिगड़े, बिगड़े और अवश्य बिगड़े ही। अतः विशेषरूपसे दृढ़तासे आश्रय होना चाहिये।

मुमुक्षु :- आप लाभकी बात जो करते हो वह अनुभवमें नहीं आता है तो क्या आड़े आता है ?

पूज्य भाईश्री :- समझ स्वलक्ष्यी नहीं है वरना गणित तो बिलकुल स्पष्ट ही है। एक मृत्युसे बचनेके लिये आप कितना खर्च करेंगे? कहिये तो सही ! सब दे देंगे। कोई ऐसा कहे कि, ये संजीवनी जड़ीबूटी है। सुँघनेसे आप मरेंगे नहीं। सिर्फ एकबार सुँघ लो, तो आपकी मृत्यु नहीं होगी, आपको अमरत्वकी प्राप्ति हो जायेगी, बोलिये ! क्या देंगे आप उसे ? आप जो कहेंगे (दे देंगे) ! `सिर सलामत तो पघड़ीयाँ बहुत' जो दे दिया उसे तो आप जैसे कैसे भी वापिस पा लेंगे। जिंदा रहेंगे तो (कमाई कर लेंगे।)

मुमुक्षु :- भाईश्री ! सामने मृत्यु हो तब तो वैसा डर भी लगता है, लेकिन अभी तो वह डर भी नहीं लगता। मृत्यु सामने आ जाये और कोई ऐसा कहे, बोल अब तुझे क्या करना है ? तब इस जीवको डर लगे ऐसा है, ऐसा लगता है।

पूज्य भाईश्री :- यानी इसका अर्थ क्या हुआ ? कि ये मार्ग जन्म-मरणसे मुक्त होनेका मार्ग है, यह बात समझमें अभी नहीं आयी। जैसे एक ५००रु. की नोट है। अभी करन्सीमें सबसे बड़ी नोट ५००रु. की है न ! और आंबाचौककी एक दुकानमें १ रुपयेमें ५००की १० नोट मिलती हैं। कितनी ? रुपयेमें नकली ५००-५०० की १० नोट देंगे। बच्चोंको खेलनेके लिये होती हैं न ! १ रूपयेमें १० देंगे, परंतु मालूम है उस पर ५०० रु. लिखा है, गवर्मेन्ट ऑफ इन्डिया, ५०० रुपया, I promise to pay, यह सब लिखा है; परंतु आपको मालूम है कि ये तो रुपयेकी दसवाली है।

यानी कि १० पैसेकी एक है। दस पैसेका एक कागज़का टुकड़ा है। दस पैसेका कागज़ ही तो है। वैसे आपको तीर्थंकरके वचन भी ऐसे लगते हैं। कैसे ? कागज़ जैसे। ये कागज़ (शास्त्र) लिखा है इसमें क्या हो गया ? वैसे। जब कि वास्तवमें सही वस्तु है। वहाँ गलत वस्तु गलत दिखती है। यहाँ ये सही वस्तु गलत दिखती है। ऐसा होता है। और इसका कारण है खुदका वर्तमान परिस्थिति परका मोह। वर्तमान परिस्थिति पर जो मोह है वह सही देखने नहीं देता। ज्ञानको भ्रमित करता है। बुद्धिमें भ्रम पैदा करता है। सुख नहीं है वहाँ सुख दिखता है। जिसका आधार मिल नहीं सकता, उसका आधार दिखता है। जो खुदका नहीं है वह खुदका दिखता है। जहाँ खुदका अस्तित्व नहीं है वहाँ अपनत्व लगता है। जो नहीं कर सकता है, उसको लगता है मैं करता हूँ। जो भोग नहीं सकता, उसको लगता है मैं भोग रहा हूँ। बुद्धिके भ्रममेंसे ये सब भाव उत्पन्न हुए। अतः सारा आधार यथार्थ समझ पर है, और इसके लिये सत्संगकी समीपता ली है।

यथार्थ समझ नहीं आयेगी तो इस मार्गका मूल्य नहीं आयेगा। कीमत नहीं आयेगी तब तक उसे महिमा नहीं आयेगी, वहाँ तक उसे Sincerity नहीं आयेगी, ऐसा है।

मुमुक्षु :- यथार्थ समझ कैसे हो ?

पूज्य भाईश्री :- स्वयं अपने आपको Involve (शामिल) करना चाहिये। अपने आपको बराबर Involve करना चाहिये। जगतमें तिर्यंचगतिको नज़रके सामने दिखती है। वे सब भी जीव हैं और मैं भी जीव हूँ। क्या उसके दुःख नज़रके सामने नहीं (दिखते हैं)? क्या तिर्यंचगतिके दुःख नज़रके सामने नहीं हैं ? मन रहित प्राणी होते हैं। चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, एकन्द्रिय जीव होते हैं। क्योंकि जब उसे मन यानी विचारशक्ति मिली; मनसे विचार करता है न ! उस वक्त उसने यथार्थ प्रकारसे समझ नहीं की इसलिये

मन गँवानेकी बारी आयी। वे प्राणी मन रहित क्यों हुए ? क्योंकि जब मन मिला तब अपने आत्मकल्याणकी उपेक्षापूर्वक रहा, इसलिये वे मन रहित हो गये। इस तरह (अपने आपको शामिल करना) होगा।

अतः बारह भावना और बीस दोहेका विषय बारम्बार लेना चाहिये। जब तक अपने आत्मा पर उसका असर न हो तब तक उस विषयमें विचार चलने चाहिये। विषयांतर नहीं करना चाहिये। उपदेशकी हज़ारों बातें आती हैं, मेरे कामकी बात कौनसी है ? मुझे किस बातका असर नहीं होता है ? क्यों नहीं होता है ? किस वज़हसे नहीं होता है ? इस तरह पीछे लग जाना चाहिये। पीछे लग जाना चाहिये। फिर (असर) नहीं हो, ऐसा नहीं बनेगा।

`**...इस दुषमकालमें सत्संगकी समीपता या दृढ़ आश्रय विशेष चाहिये और असत्संगसे अत्यंत निवृत्ति चाहिये;...**' देखो ! असत्संगसे तो बहुत दूर ही रहना। बिलकुल असत्संग नहीं चलेगा। एक तो मेरा ठिकाना है नहीं, सत्संगका असर मुझे होता नहीं है, जितना होना चाहिये इतने प्रमाणमें (असर नहीं हो रहा है), ऐसी स्थितिमें असत्संगका सेवन होगा तो मेरी हालत क्या होगी ? असत्संग तो बड़ा दुश्मन ही दिखना चाहिये। या बड़ा अजगर दिखना चाहिये, उसका डर लगना चाहिये। असत्संग नहीं चाहिये, मुझे असत्संग नहीं चाहिये।

`**तो भी मुमुक्षुके लिये तो यही योग्य है कि वह कठिनसे कठिन आत्मसाधनकी प्रथम इच्छा करे...**' इसका अर्थ क्या ? ऐसा लगता है न ! कि भाई ये कठिन है, ऐसा होना कठिन है। मेरे लिये ये कठिन है। ये प्रयोग मुझे कठिन पड़ता है, तो उसकी प्रथम इच्छा करना। जो प्रयोग कठिन लगे उसकी प्रथम इच्छा करना - वह तो सबसे पहले करना है। और इसका सिवा मेरा छुटकारा नहीं होगा। मेरे परिणाममें फ़र्क नहीं पड़ेगा। अतः स्वयंके जो परिणाम जिस तरह उलटे चलते हो, इसके सामने जेहाद जगानी चाहिये -

ऐसा इसका अर्थ हुआ। क्या करना ? जेहाद जगाना। ये परिस्थिति तो मुझे तोड़नी ही होगी। मुझे ये भव गँवाना नहीं है। मुझे ये भव मेरा आत्मकल्याण करनेके लिये ही मिला है। दूसरा कुछ करनेके लिये मिला ही नहीं है, ऐसा लगना चाहिये। वरना मनुष्य आयु जो है वह पानीके बुदबुदेके समान है। कैसा है ? Air bubble (जैसा है) पानीका बुदबुदा कब फुट जायेगा, कह नहीं सकते। अतः `**मुमुक्षुके लिये तो यही योग्य है कि वह कठिनसे कठिन आत्मसाधनकी प्रथम इच्छा करे कि जिससे सर्व साधन अल्पकालमें फलीभूत हो।**' फिर कोई भी साधन करेंगे उसका फल तुरंत ही आयेगा। क्योंकि फिर तो प्रयोग पद्धत्ति हाथ लग जाती है।

एक बार कठिनसे कठिन प्रयोग करनेके पश्चात् सब प्रयोग सरल लगेंगे। और उसका फल भी तुरंत मिलेगा - प्रयोगका फल तत्काल मिलेगा।

`**श्री तीर्थंकरने तो यहाँ तक कहा है कि जिन ज्ञानीपुरुषोंकी दशा संसारपरिक्षीण हुई है उन ज्ञानीपुरुषको परम्परा कर्मबंध सम्भवित नहीं है, तो भी पुरुषार्थको मुख्य रखना चाहिये...**' शास्त्रमें ज्ञानीको अबद्ध परिणामी कहे हैं। अब उन्हें कोई लंबा-चौड़ा संसार नहीं है। फिर भी उन्हें पुरुषार्थ तो अवश्य करना - मुख्य रखना चाहिये। सम्यक्दर्शन हो गया इसलिये अब कोई बाधा नहीं है, ऐसा ज्ञानीपुरुषको नहीं होता।

पूज्य बहिनश्रीने तो बहुत अच्छी बात कही है कि, चक्रवर्तीको जब पुण्यप्रकृतिका उदय आता है तब उसे अपने पुण्यके योग अनुसार जो भी साधन उत्पन्न होते हैं, उसमें उसकी आयूधशालामें चक्ररत्नकी उत्पत्ति होती है। जैसे ही उनको मालूम पड़े; आयूधशालाका जो सुपरिन्टेन्डेन्ट होता है वह आकर बात करता है कि `महाराज ! महान चक्रकी उत्पत्ति हुई है, देव आकर दे गये हैं, आपको यह शुभसमाचार देने आया हूँ।' फिर वह ठंडा होकर बैठा नहीं रहता

कि अब चलो कोई बात नहीं चक्र हाथमें आ गया न ! अब कभी भी लड़ लेंगे। परंतु मालूम होते ही वह हुकम करता है कि `चलो तैयारी करो सब ! पूरी सेना तैयार हो जाये ! छः खंड जीतनेके लिये चलना शुरू करें ! वैसे सम्यक्दर्शनरूपी सुदर्शन चक्र प्राप्त होने पर वह मोक्ष लेनेके लिए निकल पड़ता है। हाथ पे हाथ धरकर बैठा नहीं रहता। वह पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। उसका पुरुषार्थ अवश्य चलता है। बहिनश्रीने ऐसा एक दृष्टांत दिया है। सम्यक्दर्शन हुआ कि मुक्तिके पुरुषार्थमें जुड़ेगा। पहले मुनिदशाके (पुरुषार्थमें) जुड़ेगा। मुनिदशाके बाद मुक्तिके पुरुषार्थणें जुड़ेगा। तब तो पूर्णताका लक्ष्य कहा जायेगा वरना पूर्णताका लक्ष्य कहाँ रहा ? बीचमें अटक जाये तो (पूर्णताका लक्ष्य कहाँ रहा ?)

`श्री तीर्थंकरने तो यहाँ तक कहा है कि जिन ज्ञानीपुरुषकी दशा संसारपरिक्षीण हुई है उन ज्ञानीपुरुषको परंपरा कर्मबंध सम्भवित नहीं है, तो भी पुरुषार्थको मुख्य रखना चाहिये कि जो दूसरे जीवके लिये भी आत्मसाधन - परिणामका हेतु हो। उन ज्ञानीका पुरुषार्थ देखकर दूसरे जीव भी पुरुषार्थमें लगते हैं कि, अहो ! वे खुद इतना पुरुषार्थ करते हैं ! ज्ञानी होकर इतना पुरुषार्थ करते हैं ! चलो हम भी करें। इसमें प्रमाद बिलकुल नहीं चलेगा। हमारा तो इसमें बेदरकार रहना बिलकुल ठीक नहीं है। वैसे जो आत्मकल्याण साधता है, वह दूसरेको भी आत्मकल्याण साधनमें निमित्त होता है। हेतु अर्थात् निमित्त होता है। ऐसा यह एक स्व-पर हितकारक मार्ग है। अपना अहित करनेवाला दूसरेके अहितमें निमित्त होता है और अपना हित साधे तो दूसरेके हितमें निमित्त होता है। ऐसी ही कोई परिस्थिति है। (यहाँ तक रखते हैं।)

ॐ

`श्रीमद् राजचंद्र'

पत्रांक - ८१९

बंबई, मार्गशीर्ष सुदी ५, १९५४

ॐ

खेद न करते हुए शूरवीरता ग्रहण करके ज्ञानीके मार्गपर चलनेसे मोक्षपट्टन सुलभ ही है। विषयकषाय आदि विशेष विकार कर डालें, उस समय विचारवानको अपनी निर्वीर्यता देखकर बहुत ही खेद होता है, और वह आत्माकी वारंवार निंदा करता है, पुनः पुनः तिरस्कार-वृत्तिसे देखकर, पुनः महापुरुषके चरित्र और वाक्यका अवलंबन ग्रहण कर, आत्मामें शौर्य उत्पन्न कर, उन विषयादिके विरुद्ध अति हठ करके उन्हें हटाता है; तब तक हिम्मत हारकर बैठ नहीं जाता, और केवल खेद करके रुक नहीं जाता। इसी वृत्तिका अवलंबन आत्मार्थी जीवोंने लिया है; और इसीसे अंतमें विजय पाई है। यह बात सभी मुमुक्षुओंको मुखाग्र करके हृदयमें स्थिर करना योग्य है।

प्रवचन - १०
'श्रीमद् राजचंद्र' पत्रांक-८१९
दि. २५-०८-१९९६ - भावनगर

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत पत्रांक - ८१९। अंबालालभाई पर पत्र लिखा है। अंबालालभाई बहुत समयसे परिचयमें आये हैं, भक्तिवंत हैं। मुमुक्षुदशामें स्वयंकी विशेष दशा नहीं होती होगी, इसलिये इसका खेद चलता होगा। लंबे समय तक विकास न हो तो मुमुक्षुको खेद होना संभवित है। (कृपालुदेव)को ३१ वाँ वर्ष (चल रहा है, इसलिये उनके परिचयमें आये हुए) सात-आठ साल हो चुके हैं। २३ वें वर्षमें परिचयमें आये हैं। इसलिये करीब आठ साल हो चुके हैं। काफी समय बीत जानेके कारण अपनी दशा संबंधित खेद चलता होगा। तत्संबंधित मार्गदर्शन दिया है।

`**खेद न करते हुए शूरवीरता ग्रहण करके ज्ञानीके मार्गपर चलनेसे मोक्षपट्टन सुलभ ही है।**' (ऐसा कहकर) प्रेरणा दी है। उत्साहसे, उमंगसे, वीर्योल्लाससे; `शूरवीरता' माने क्या ? उल्लाससे, उल्लासित वीर्यसे ज्ञानीके मार्ग पर चलना। (मुमुक्षुको) खेद होगा लेकिन इतना खेद नहीं करना चाहिये कि, जिससे एकदम Depression में आ जाये। बिलकुल खेद न हो, वह भी योग्य नहीं है। खुद दशामें आगे न बढ़े फिर भी बिलकुल खेद न हो, वह भी योग्य नहीं है। (लेकिन) उसे इतना खेद हो जाये, बहुत खेद हो जाये कि, एकदमसे खुद Depression में आ जाये और पुरुषार्थ उठानेके लिये ऐसे अभिप्रायमें आ जाये कि, मेरेसे कुछ काम नहीं होगा तो ? Depression में आ जाने पर क्या होता है ? कि, अब मेरेसे कैसे काम होगा ? मैं कैसे आगे बढ़ुँगा ? नहीं बढ़ सका तो ? ऐसे अभिप्रायमें आ

जाये, तो ऐसा प्रकार होना भी उचित नहीं है। ऐसा प्रकार होना भी ठीक नहीं है।

किसीको खेद कम होता है तो किसीको ज्यादा होता है। ठीक है, वह तो होना जरूरी है। आगे न बढ़ पाये तो होना भी चाहिये। किसीको कम होता है तो किसीको ज्यादा भी होता है। इसका कोई नाप नहीं है। परंतु इसकी आखरी हद इतनी है कि, ऐसे अभिप्रायमें न आ जाये कि, अब मेरेसे पुरुषार्थ नहीं उठ सका तो ? मैं पुरुषार्थ नहीं कर सकता हूँ और अब नहीं कर पाया तो ? ऐसी खुदके विषयमें खुदको शंका हो जाये, इतनी हद तक खेद नहीं होना चाहिये। यानी कि सिर्फ `**खेद न करते हुए...**' (अर्थात्) वह सिर्फ खेद ही किये जाये, खेद ही किये जाये, फिर एक वैसा प्रकार चालू हो जाता है, तो वैसा तो नहीं (होना चाहिये)।

`**...शूरवीरता ग्रहण करके...**' यानी उल्लासित वीर्यसे `**...ज्ञानीके मार्गपर चलनेसे...**' ज्ञानीके मार्गपर माने क्या ? कि, ज्ञानी जो क्रम बताये, उस क्रम पर चलनेसे। वह ज्ञानीका मार्ग है। चौदह गुणस्थानमें, चतुर्थ गुणस्थानसे मोक्षमार्ग शुरू होता है। यह बात तो प्रसिद्ध है कि, किसीको भी प्रथम चतुर्थ गुणस्थान आता है - इसके पहले पाँचवा या छठा-सातवाँ या ऊपरका कोई भी गुणस्थान नहीं आता। बादमें ऊपरी-ऊपरी गुणस्थान चढ़ता है, यह मोक्षमार्ग तो नियत है। तीनोंकाल नियत है - निश्चित है। जो कुछ विड़ंबना है वह मुमुक्षुकी भूमिकामें है। चतुर्थ गुणस्थानमें अपना स्वरूप देख लिया - प्रत्यक्ष तौरसे अनुभव किया और अनुभवकी पद्धति भी खुदने अंगीकार कर ली इसलिये अब निजघरसे अनभिज्ञ नहीं रहा और निजघरके रास्तेसे भी अनभिज्ञ नहीं रहा। इसलिये उसको इतनी विडंबना नहीं है। क्योंकि फिर तो आत्मगुण प्रगट हो चुके हैं, शक्ति बढ़ती जाती है। लेकिन जो भी तकलीफ है, विडंबना है, उलझन है - ये मुमुक्षुकी भूमिकामें है। ज्ञानदशा प्रगट होनेके बाद मोक्ष होनेमें अनंतकाल नहीं लगेगा।

परंतु ज्ञानदशा प्राप्त होनेके पहले अनेक प्रकारके विध-विध धर्मसाधन करने पर भी अनंतकाल से मोक्षमार्गको प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिये जो भी तकलीफ है, विडंबना है - यह मुमुक्षुको है। अब ज्ञानियोंने मुमुक्षुके लिये (भी) मार्ग निश्चित किया है। जिसे ज्ञानदशाको वे प्राप्त हुए और जिस क्रमसे प्राप्त हुए, उसे निश्चित किया है।

विषय थोड़ा विस्तारवाला इसलिये होता है कि, मुमुक्षुकी योग्यता अनेक प्रकारकी हैं। मुमुक्षुकी योग्यता एक प्रकारकी नहीं होती - अनेक प्रकारकी होती हैं। अतः वह मुमुक्षु कहाँ खड़ा है ? कहाँ अटका है ? किस तरह अटका है ? क्या भूल करता है ? किस प्रकारकी भूल करता है ? और उसे किस तरह आगे ले जाना - इसका ज्ञान ज्ञानीपुरुषको होता है। अतः अंधेरेमेंसे वे उजालेकी ओर ले जाते हैं। मुमुक्षुजीव अंधेरेमें खड़ा है, उसे वे उजालेकी ओर ले आते हैं।

ये जो योग और ध्यानके प्रयोग करते हैं न ? इसमें कईयोंको उलटा पड़ जाता है, जबकि कोई पागल हो जाते हैं। अगर उसे जिस पद्धतिसे कहा गया वैसे नहीं करे और कुछ अपनी मनमानी करने जाये तो गड़बड़ हो जाती है। यहाँ भी वैसा ही है कि, अगर ज्ञानीके मार्ग पर न चले और थोड़ा भी स्वच्छंदसे चलने जाये तो कहाँ से कहाँ तक दूर निकल जाता है, ऐसा विषय है।

पत्रांक - ७८३ में सोभागभाईके लिये ऐसा लिखते हैं, श्री सोभागका ज्ञानीके मार्ग पर चलनेका अद्‌भुत निश्चय, '**ज्ञानीके मार्गके प्रति उनका अद्‌भुत निश्चय वारंवार स्मृतिमें आया करता है।**' उसप्रकारकी विशिष्ट योग्यता सोभाग्यभाईमें थी, जिसकी उन्होंने प्रशंसा की है। और अगर कोई मुमुक्षु इतनी (बातको) मजबूतीसे पकड़ रखे कि 'मैं कुछ नहीं जानता, मैं कुछ नहीं समझता, मुझे तो जो आज्ञा मिले उसके अनुरूप मुझे चलना है और आज्ञाके बाहर बिलकुल नहीं जाना है।' ऐसा अगर मजबूतीसे पकड़कर चले, तो वह मोक्षमार्गकी

प्राप्ति तक सुगमतासे पहुँच सकता है। वह Safe guard हो जाता है। ज्ञानीके कारण वह सहीसलामतरूपसे मार्ग तक - मार्गकी प्राप्ति तक पहुँच सकता है।

मुमुक्षु :- ये इसका Base उसे नक्की करना चाहिये।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, यह इसकी नीव होनी चाहिये।

'...**ज्ञानीके मार्गपर चलनेसे मोक्षपट्टन सुलभ ही है।**' और अपनी मनमानीसे चलते हुए अनंतकालसे भटका। क्यों भटका ? अपनी मनमानी करके चला इसलिये। ये बात २०० नंबरकी वचनावलीमें ली है, देखो ! चौदह वचन लिये हैं न ! इसमें चौथे नंबरका वचनामृत है।

'**जो ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करता है, उसे ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना चाहिये, ऐसा जिनागम आदि सभी शास्त्र कहते हैं।**' मैं कहता हूँ ऐसे नहीं, सब शास्त्र भी यही कहते हैं। '**अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है।**' ये भूल की है। Heart-Disease - हृदयरोग हो जाये तो इसके जो Heart specialist कहे वैसे करना पड़े कि नहीं ? कि इसमें खुदका डेढ़-डहापन चलेगा ? कि, आपने ये लाल गोली क्यों लिख दी ? मुझे पीली गोली क्यों नहीं लिख दी ? Heart की तो बहुत सी दवाई आती हैं - मैंने इसकी पुस्तक पढ़ी है। आप ये दवाई ही क्यों दे रहे हो ? दूसरी क्यों नहीं देते ? (डॉक्टर क्या कहेगा कि), वह तेरा काम नहीं है।

हमारे साथ ऐसी एक घटना घटी थी। गुरुदेवश्रीको Blood cancer था न ! फिर इसके जो (तजज्ञ) होते हैं, उन्हें Haematologist कहते हैं। Blood expert जो होते हैं उन्हें Haematologist कहते हैं। बंबईके एक बड़े Haematologist के पास हम गये थे। काफी प्रश्नोंकी Query लेकर गये थे। चार-पाँच आदमीका Delegation गया था। और हमलोग सब प्रश्न पूछते थे। डॉक्टर तो समझते थे कि, (गुरुदेवश्री) एक

महापुरुष हैं इसलिये ये बड़े-बड़े लोग भी चार-पाँच आदमी इकट्ठे होकर आये हैं। उन्होंने सब प्रश्न देखकर क्या कहा मालूम है ? कि, `ये विषयको समझनेमें मुझे १५ साल लगे हैं। कितने ? १५ साल लगे हैं ! आप लोग १५ मिनटमें ये बात समझना चाहते हो शायद, लेकिन आप समझ नहीं सकेंगे। आप भले ही मुझे कितने भी प्रश्न पूछ लें। आपको जब ये कह दिया कि, ये रोग है, फिर उसमें कोई शंकाको स्थान नहीं है, आप चाहे किसीसे भी पूछ लीजिये।' हमलोग बंबईके तीनों बड़े Haematologist को मिले थे। जो लोग International fame वाले थे ऐसे (तीनोंको मिले थे)। जिसमेंसे एक Tata के Haematologist थे। Tata Blood cancer की हास्पिटल के थे। जब कि दूसरे दो General practitioner थे। एक जसलॉक (Hospital) के थे और एक General practitioner थे, खुदका Clinic था। तीनोंका एक ही मत निकला कि, ऐसा ही है। परंतु हमलोगने थोड़ी गहराईमें जानेकी चेष्टा की इसलिये उन्होंने कह दिया कि, `भाई ! ये आपका काम नहीं है। एकदम Technical subject है। इसमें काफी बातें सोचनी पड़ती हैं। हमें पढ़ते-पढ़ते १५ साल निकल गये और आपको १५ मिनटमें ये (कैसे समझाऊँ) ? आप तो इस विषयमें Layman हैं। क्या हैं ? कैसे हैं ? बिलकुल Layman हैं। आपका ये विषय नहीं है। १५ मिनटमें आपकी समझमें कुछ नहीं आयेगा। ये समझाना मेरे लिये मुश्किल है। आपको जो कह दिया सो बराबर है।' लेकिन अब करना क्या ? No drug - No treatment - cancer की कोई Drug है नहीं, इसकी कोई Treatment है नहीं। लेकिन हमें संतोष होता नहीं था कि, `नहीं, ठीक तो होना ही चाहिये, ठीक करना ही चाहिये।'

वैसे ये मार्ग इससे भी अधिक सूक्ष्म मार्ग है। ये जगतकी विद्याओं जैसा स्थूल मार्ग नहीं है। ये बहुत सूक्ष्म मार्ग है। इसलिये ज्ञानीके मार्ग पर चलना, यही एक मात्र सहीसलामत उपाय है। इसमें न

समझे और अपने आप कुछ करने जाये कि, `मैं समझता हूँ तो ऐसा तो अनंतबार किया है और अनंतबार भटका भी है। लेकिन (ज्ञानीके मार्ग पर चले) तो मोक्ष पर्यंत पहुँचना सुलभ है, तो सम्यक्‌दर्शन तो हो (ही) जायेगा, मोक्षकी प्राप्ति हो जायेगी।

(यहाँ कहते हैं) `**विषयकषाय आदि विशेष विकार कर डालें, उस समय विचारवानको अपनी निर्वीर्यता देखकर बहुत ही खेद होता है, और वह आत्माकी वारंवार निंदा करता है, पुनः पुनः तिरस्कार-वृत्तिसे देखकर पुनः महापुरुषके चरित्र और वाक्यका अवलंबन ग्रहण कर, आत्मामें शौर्य उत्पन्न कर, उन विषयादिके विरुद्ध अति हठ करके उन्हें हटाता है; तब तक हिम्मत हारकर बैठ नहीं जाता, और केवल खेद करके रुक नहीं जाता।**' क्या कहा ? कि, मुमुक्षुजीवको जब अपने परिणाम गिर जाये; विषयकषाय आदि ज़ोर कर जाये तब क्या होता है ? कि, कभी खुदके परिणाम गिर जाते हैं, तब `...**अपनी निर्वीर्यता...**' अर्थात् खुदका पुरुषार्थ न चला और खुद हार गया, उदयके आगे खुद हार गया, यह `...**देखकर बहुत ही खेद होता है,...**' और होना स्वाभाविक है। मुमुक्षुको ऐसा खेद होना स्वाभाविक है।

`**और वह आत्माकी वारंवार निंदा करता है,...**' कि, अरे... आत्मा ! तेरा पुरुषार्थ क्यों आगे न बढ़ा ? तू पुरुषार्थमें क्यों टिक न सका ? तू पुरुषार्थमें क्यों न टिका ? तेरा बल चला क्यों नहीं ? `**पुनः पुनः तिरस्कार-वृत्तिसे देखकर...**' (अर्थात्) उसे अपने ऊपर (तिरस्कार) हो आता है। और वह क्या करता है ? `...**पुनः महापुरुषके चरित्र और वाक्यका अवलंबन ग्रहण कर,...**' ऐसे उदय प्रसंगोंमें (भी) महान पुरुषों अपने आत्माके श्रद्धा-ज्ञानके पुरुषार्थमें से विचलित नहीं हुए हैं। और पुरुषार्थप्रेरक उनके जो वचन, उसे ग्रहण करता है। वचन सिर्फ पढ़ लेता है वैसे नहीं, वचनोंको ग्रहण करता है। इसलिये इसका असर आता है। आत्मा पर उन वचनोंका असर आता

है।

मुमुक्षु :- महानपुरुषोंके वचनोंको कैसे ग्रहण करें ?

पूज्य भाईश्री :- महान पुरुषोंके वचन अर्थात् उनके जो उपदेश वचन हैं, इसका खुद असर लेता है। उनका चरित्र देखता है, उनका आचरण देखता है और उन्होंने उसवक्त अपना पुरुषार्थ जगाया, इसे देखकर स्वयं भी तत्संबंधित उनके जो वचन हैं, इसका असर अपने आत्मामें ग्रहण करता है। इसलिये उसे वचन ग्रहण किये - ऐसा कहनेमें आता है।

`**आत्मामें शौर्य उत्पन्न कर,...**' देखो ! खेद करके Depression में नहीं आये। आत्मामें शौर्य उत्पन्न कर, माने तब पुरुषार्थ उठाया। खुद पुरुषार्थ उठाकर `**उन विषयादिके विरुद्ध अति हठ करके उन्हें हटाता है;...**' भीतरमें बराबर लड़ता है, ऐसा कहते हैं। अविवेकमल्ल और विवेकमल्ल दोनोंकी लड़ाई चलती है।

मुमुक्षु :- सच्चा खेद हो, स्वाभाविक खेद हो, तो क्या वह खुद एक लड़ाई नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह भी लड़ाई है।

मुमुक्षु :- खेदकी मात्रा कैसे नक्की करनी कि, ये आखरी हदकी मात्रा है ? थोड़ा खेद होने पर मान लेना क्या कि, ये आखरी हद आ गयी ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, वैसे नहीं। (परंतु) खुदके विषयमें ही शंकामें आ जाये कि, अब मैं पुरुषार्थ नहीं कर पाऊँगा तो ? मेरा पुरुषार्थ ही न चला तो ? ऐसी शंकामें आ जाये, इतनी हद तक खेद नहीं होना चाहिये। इसलिये वह चर्चा हमने पहले की। खेद ज्यादा हो इसका हरज़ा नहीं, थोड़ा हो इसका भी हरज़ा नहीं है परंतु उस खेदके अंतमें पुरुषार्थ उठना चाहिये। खेदके अंतमें पुरुषार्थहीन हो जाये, तो वह खेद बराबर नहीं है। अंतमें क्या होना चाहिये ? पुरुषार्थ जागृत होना चाहिये, तो वह खेद यथार्थ है, यथास्थानमें है। लेकिन

एकदम खुद शंकामें आ जाये, कोई ऐसे अभिप्रायमें आ जाये कि, `अब मुझसे कुछ नहीं हो सकेगा, मैं बारबार हार जाता हूँ, मुझसे कुछ नहीं हो सकता' तो वह खेद यथार्थ नहीं है। इसमें दो प्रकार बनते हैं। जिसको खेद आता है उसमें दो प्रकार बनते हैं। हताशामें या निराशामें आना नहीं चाहिये। खेद होगा, होना चाहिये, होना जरूरी है, नहीं हो तो वह भी उचित नहीं है। और इतना हो जाये कि, निराशामें आ जाये तो वह भी बराबर नहीं है।

मुमुक्षु :- हमारा प्राणप्रश्न तो खेद नहीं होनेका है ।

पूज्य भाईश्री :- ये पत्र तो व्यक्तिगत् है। अंबालालभाईको बहुत खेद हुआ होगा और तब कृपालुदेवको ऐसा लगा होगा कि, ये कहीं निराशामें न आ जाये। ये मुमुक्षु कहीं निराशामें (न आ जाये।) सात-आठ सालसे खुदने जो प्रगति करनी चाही हो, उतनी प्रगति न कर सके होंगे, जिसके कारण खेद होता होगा, तो वे कहीं निराशामें न आ जाये, इसलिये उन्हें पुरुषार्थकी प्रेरणा देते हैं, ऐसा है।

मुमुक्षु :- खेद नहीं होगा तो प्रतिपक्षमें क्या होगा ?

पूज्य भाईश्री :- स्वच्छंद होगा। खेद नहीं होगा तो स्वच्छंद होगा। प्रतिपक्षमें स्वच्छंद (होगा)।

मुमुक्षु :- यहाँ अब Balance की बात आ गई। खेद होना भी चाहिये, लेकिन Depression में नहीं आना है, ये भी एक संतुलनकी बात आयी।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, इसमें तो ऐसा है कि, सभी काममें Balance तो रहना ही चाहिये। हमलोग हररोज़ खाते हैं न ! तो उसमें भी Balance रखना पड़ता है। ज्यादा खा लेनेसे भी अशक्ति आयेगी और कम खानेसे भी अशक्ति आयेगी। खानेसे शक्ति मिलती है, क्या बोला जाता है ? कि, आदमी अन्न खाये तो शक्ति बनी रहे, परंतु जरूरतसे ज्यादा ही अन्न खा ले तो भी अशक्ति आयेगी और अगर जरूरतसे आधा भी न खाये तो भी अशक्ति आयेगी - दोनों बात

हैं। (अतः) हरएक काममें Balance तो रखना ही पड़ता है। इसकी दोनों तरफ Range होती है, उस Range की मर्यादामें चलना पड़ता है, इसीका नाम यथार्थता - ऐसी बात है। हरएक काममें ऐसा है।

मुमुक्षु :- 'अति हठ करके' ऐसा शब्दप्रयोग किया है। इसमें दृढ़ताकी बात करनी है ?

पूज्य भईश्री :- हाँ, दृढ़ताकी बात है। मतलब कि, भीतरकी जो लड़ाई है उसमें बराबर ज़ोर रखना, ऐसा कहते हैं। उसमें हार मत जाना। (ये तो) भीतरी लड़ाई है। विवेकमल्ल और अविवेकमल्ल दोनों लड़ते हैं। जो बलवान होता है, वह सामनेवालेको गिराता है। विवेक बलवान होगा तो अविवेकको गिरायेगा। अविवेक बलवान होगा तो विवेकको गिरायेगा - ऐसा है।

मुमुक्षु :- हठका मतलब ज़िद तो नहीं ?

पूज्य भाईश्री :- नहीं, यहाँ ज़िदकी बात नहीं है। हठ करके माने ज़ोर करके, पुरुषार्थमें आकर।

जब तक उसे हटाये नहीं, गिराये नहीं '**तब तक हिम्मत हारकर बैठ नहीं जाता,...**' बातको छोड़ नहीं देता। 'हिम्मत हारकर बैठ नहीं जाता' - मतबल बातको छोड़ नहीं देता।

मुमुक्षु :- ये संतुलन समझकर सही ढंगसे करना है, कृत्रिमता नहीं करनी है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, समझपूर्वक बराबर व्यवस्थितरूपसे आगे बढ़ना है। इस मार्गमें समझपूर्वक व्यवस्थितरूपसे आगे बढ़ना है। मुमुक्षुको हरएक भूमिकामें जिस प्रकारकी प्रकृति होती है, वह ज़ोर कर जाती है। क्रोधकी प्रकृति होगी तो गुस्सा हो जायेगा, मानकी प्रकृति होगी तो मन चढ़ जायेगा, मायाकी प्रकृति होगी तो माया हो जायेगी, लोभकी प्रकृति होगी तो लोभ हो जायेगा। ये प्रकृति ज़ोर करे उस वक्त लड़ना पड़ता है। इसके सामने लड़ना पड़ता है कि, 'अब मैं तेरी नहीं चलने दूँगा। अब मैं ऐसे किसी धनी (श्रीगुरु) की छत्रछायामें

आ गया हूँ, और इनके कारण मुझे बल प्राप्त है। वे मेरा Backing है। अब मैं तुझे जितने नहीं दूँगा और अब मैं हारनेवाला नहीं हूँ।'

मुमुक्षु :- ५६० पत्रमें ऐसी बात ली है।

पूज्य भाईश्री :- ५६० पत्र देखें। सोभाग्यभाई पर लिखा गया पत्र है। पन्ना है - ४५४ '**यदि ज्ञानीपुरुषके दृढ़ाश्रयसे सर्वोत्कृष्ट मोक्षपद सुलभ है, तो फिर क्षण-क्षणमें आत्मोपयोगको स्थिर करना योग्य है, ऐसा जो कठिन मार्ग है वह ज्ञानीपुरुषके दृढ़ आश्रयसे प्राप्त होना क्यों सुलभ न हो** ?' मोक्ष मिलता हो तो उसमें तो कायम स्थिरता रहती है तो फिर अल्प स्थिरता क्यों न आये ? '**क्योंकि उस उपयोगकी एकाग्रताके बिना तो मोक्षपदकी उत्पत्ति है नहीं। ज्ञानीपुरुषके वचनका दृढ़ आश्रय जिसे हो उसे सर्व साधन सुलभ हो जायें, ऐसा अखंड निश्चय सत्पुरुषोंने किया है।**' देखो ! कितनी स्पष्ट बात ली है। अपने अनुभवकी सब बातें लिखी हैं। '**ज्ञानीपुरुषके वचनका दृढ़ आश्रय जिसे हो उसे सर्व साधन...**' (अर्थात्) धर्मके सर्व साधन '...**सुलभ हो जायें,...**' यानी सफल हो जायें। '**ऐसा अखण्ड निश्चय....**' मतलब इसमें कोई गड़बड़ नहीं। '**अखण्ड निश्चय सत्पुरुषोंने किया है। तो फिर हम कहते हैं कि इन वृत्तियोंका जय करना योग्य है, उन वृत्तियोंका जय क्यों न हो सके** ?' प्रकृति चाहे कितनी भी ज़ोर करती हो, उसे जीता जा सकता है। अवश्य जीता जा सकता है, ऐसा कहते हैं।

ऐसे प्रकार बने हैं, ऐसे प्रकार बनते हैं कि, मुमुक्षुका पूरा जीवन बदल जाये ! आपने उसे कुछ साल पहले देखा हो, थोड़े समय पहले देखा हो और बादमें उसने जो पलटा खाया हो और दृढ़तापूर्वक ज्ञानीकी आज्ञाका अनुसरण करने पर प्रकृतिको तो चूर-चूर कर देता हो ! और कहीं थोड़ी - बहुत पछाड़ खा जाये, तो फिर से खड़ा होकर ज़ोर करता है। लेकिन पहले और बादमें तो बहुत बड़ा फर्क

दिखता है। जैसे पूरा आदमी बदल गया न हो ऐसा लगता है।

मुमुक्षु :- दौड़ता हो, वह कभी गिरे उसे माफ किया जाये परंतु जो दौड़े ही नहीं उसे कौन माफ करेगा ?

पूज्य भाईश्री :- वह तो ठीक है। पुरुषार्थ तो करना ही चाहिये। `**इतना सत्य है कि इस दुषमकालमें सत्संगकी समीपता या दृढ़ आश्रय विशेष चाहिये...**' इस कालमें बाहरमें असत्संग आदिकी परिस्थिति ऐसी है - ऐसी परिस्थिति है कि इसमें सत्संग विशेष चाहिये और दृढ़तासे आश्रय करना चाहिये। `**और असत्संगसे अत्यंत निवृत्ति चाहिये;...**' अर्थात् दूर ही रहना। असत्संगके प्रसंगोंसे तो दूर ही रहना।

`**तो भी मुमुक्षुके लिये तो यही योग्य है कि वह कठिनसे कठिन आत्मसाधनकी प्रथम इच्छा करे...**' इतना शौर्य उसे आना चाहिये, उल्लास आना चाहिये कि, चाहे कैसे भी उदयमें, मैं अब हारनेवाला नहीं हूँ। `**कि जिससे सर्व साधन अल्पकालमें फलीभूत हो।**'

`**श्री तीर्थंकरने तो यहाँ तक कहा है कि जिन ज्ञानीपुरुषकी दशा संसारपरिक्षीण हुई है उन ज्ञानीपुरुषको परंपरा कर्मबंध सम्भवित नहीं है, तो भी पुरुषार्थको मुख्य रखना चाहिए...**' ज्ञानीको भी पुरुषार्थकी मुख्यता रखनी है ! `**कि जो दूसरे जीवके लिये भी आत्मसाधन - परिणामका हेतु हो।**' उनका पुरुषार्थ देखकर दूसरे जीवको भी पुरुषार्थकी प्रेरणा मिले (पत्रकी) शुरूआतमें ये बात ली है।

यहाँ ८१९ में ऐसा कहते हैं कि, `...**तब तक हिम्मत हारकर बैठ नहीं जाता, और केवल खेद करके रुक नहीं जाता।**' सिर्फ खेद करके अटक नहीं जाता। पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। पुरुषार्थ चालू ही रखता है। `**इसी वृत्तिका अवलंबन आत्मार्थी जीवोंने लिया है;...**' यानी यहाँ पर पुरुषार्थकी वृत्ति लेना। `**इसी वृत्तिका...**' माने पुरुषार्थकी वृत्तिका अवलंबन आत्मार्थी जीवोंने लिया है। आत्मार्थी जीव पुरुषार्थ करते हैं।

हमारे यहाँ जब भावनाका विषय चलता है, तब भावना और रागमें क्या अंतर है ? अथवा भावना और इच्छामें क्या फर्क है ? ये प्रश्नकी चर्चा हमारे यहाँ चलती है। तो जो पुरुषार्थ सहित हो वह भावना (है)। पुरुषार्थ रहित (सिर्फ) विकल्प आना, वह भावना नहीं, वह इच्छा है - विकल्प है, ऐसे लेना। अतः जो आत्मार्थी है, उसने तो पुरुषार्थका अवलंबन लिया है।

`**और इसीसे अंतमें विजय पाई है।**' अर्थात् पुरुषार्थ करे, और उसकी विजय न हो, ऐसा नहीं बनता। जो पुरुषार्थ करे वह विजय पाता है, पाता है और जरूर पाता ही है। ये Guaranteed (बात है)। `**यह बात सभी मुमुक्षुओंको मुखाग्र करके हृदयमें स्थिर करना योग्य है।**' इस बातको मुख्य करना और मुख्यता देकर हृदयमें स्थान देना।

मुमुक्षु :- ८१३ पत्र भी अंबालालभाईको लिखा है, उसमें भी ऐसी ही बात है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह भी अंबालालभाई पर लिखा हुआ पत्र है। `**ऊपरकी भूमिकाओंमें भी अवकाश मिलनेपर अनादि वासनाका संक्रमण हो आता है,...**' वासना अर्थात् यहाँ संस्कार लेना। `**और आत्माको वारंवार आकुल-व्याकुल कर देता है।**' ऊपरकी भूमिकाओंमें भी मतलब मुमुक्षु आगे बढ़ा हो इसकी बात करते हैं। सामान्य मुमुक्षुकी बात नहीं करते। थोड़ा आगे बढ़ा हो, ऊपरकी भूमिकामें चढ़ा हो, ऐसे मुमुक्षुको भी पूर्व संस्कारवश पछाड़ खानेकी बारी आती है। `**आकुल-व्याकुल कर देता है।**' यानी कि बहुत बार पछाड़ खा जाता है।

`**वारंवार यों हुआ करता है कि अब ऊपरकी भूमिकाकी प्राप्ति होना दुर्लभ ही है,...**' अब आगे नहीं बढ़ा जायेगा, (ऐसा

लगता है।) ऐसी पछाड़ खा जाता है कि, `मर गये ! ये गलत हो गया ! इस जगह क्रोध नहीं करना था और मुझसे गुस्सा हो गया।' और एकदमसे परिणाम गिर जाये। परिणामकी जो धारा चलती हो मुमुक्षुकी भूमिकामें वह एक बार तो एकदम Disturb हो जाये। क्या हो जाये ? Disturb हो जाये, ऐसा बनता है। कभी तो बात छोटी हो, लेकिन प्रकृति ज़ोर कर जानेसे बात बड़ी हो जाती है। उसे नुकसान बड़ा हो जाता है। छोटी बातमें नुकसान बड़ा हो जाता है। और ऐसा लगता है कि, अब आगे नहीं बढ़ा जायेगा।

`और वर्तमान भूमिकामें स्थिति भी पुनः होना दुर्लभ है।'** वारंवार पछाड़ खाता है। वर्तमान भूमिकामें भी स्थिर नहीं रह सकता। **`ऐसे असंख्य अंतराय-परिणाम ऊपरकी भूमिकामें भी होते हैं,...' ऐसे असंख्य परिणाम मुमुक्षुकी ऊपरकी भूमिकामें भी बनते हैं। **`तो फिर शुभेच्छादि भूमिकामें वैसा हो, यह कुछ आश्चर्यकारक नहीं है।'** अतः जघन्य भूमिकामें ऐसा बने (ये कुछ आश्चर्यकारक नहीं है)। शुभेच्छा माने क्या ? कि, खुदको भावना हुई हो कि, मुझे आत्मकल्याण कर लेना है, परंतु अभी इतना आगे न बढ़ा हो; तो उसे ऐसे अंतराय परिणाम हो जाना, यह स्वाभाविक है। उदयमें वह बह जाये, यह स्वाभाविक है। ऐसे ये कोई आश्चर्यकारक नहीं है।

`वैसे अतंरायसे खिन्न न होते हुए आत्मार्थी जीव पुरुषार्थदृष्टि रखे, शूरवीरता रखे,...' वही बात ली है। ८१३ पत्र आसोज वदी ७, को लिखा है और ८१९ मार्गशीर्ष सुदी ५ के दिन लिखा है। कार्तिक और मार्गशीर्ष - ऐसे दो महिनेके अंतरालमें उनके ऊपर दो पत्र लिखे हैं। इन दोनोंमें एक ही विषय लिया है। ८१४ और ८१६ भी अंबालालभाई ऊपर लिखे हैं। परंतु ८१३ और ८१९ में दोनोंमें विषय करीब-करीब एक सा है। ८१४ और ८१६ में अलग-अलग विषय लिया है। इतनी बात है।

`तो फिर शुभेच्छादि भूमिकामें वैसा हो, यह कुछ आश्चर्यकारक

नहीं है। वैसे अंतरायसे खिन्न न होते हुए...' (अर्थात्) ऐसे परिणाम कभी हो जाये तो इसका खेद न करके **`आत्मार्थी जीव पुरुषार्थदृष्टि रखे,...'** अब यहाँ **`खिन्न न होते हुए...'** माने क्या ? निराशामें नहीं आ जाना, ऐसे लेना है। बिलकुल खेद नहीं हो, वैसा तो नहीं बनता। खेद तो होता है, हो आता है। परंतु फिरसे पुरुषार्थको जागृत करना, तब तो वह खेद हुआ यथास्थानमें है। और यदि पुरुषार्थ न उठे तो वह खेद यथास्थानमें नहीं हुआ, या तो पर्याप्त मात्रामें नहीं हुआ, या तो कुछ ज्यादा ही हो गया है - ऐसा है। ये दोनों बराबर नहीं है।

देखो ! मार्गदर्शनकी जरूरत कहाँ पड़ती है ? यहाँ मार्गदर्शनकी जरूरत पड़ती है। अपने आप उसे खयाल नहीं आता कि, इसमें अब क्या भूल रह गई ? कैसे हुआ ? कैसे नहीं हुआ ? निराश हो गया हो, लेकिन उसे खयाल नहीं आता कि, मैं क्यों निराश हो जाता हूँ ? और मान लो, खेद हुआ लेकिन पुरुषार्थ न चला तो वह खेद हुआ क्या कामका ? अधूरा हुआ हो, चाहे ज्यादा ही हुआ हो - परंतु पुरुषार्थ कैसे जागृत हो ? ये उसे ज्ञानीके सत्संग बिना आगे बढ़ना मुश्किल पड़ता है। ये इसके जैसा है कि, डॉकटरकी दवाई तो ले लेकिन लागू न पड़े तो फिरसे जाना पड़े कि नहीं जाना पड़े ? (वहाँ जाकर क्या कहेगा ?) कि, `साहब ! आपने हफ़्तेका Course दिया था। दवाई पूरी-पूरी ले ली लेकिन मुझे अभी कुछ फायदा नहीं हुआ है।' फिरसे उसे डॉकटरको Consult करना ही होगा। और क्या कर सकता है ? दवाई लेनेके बावजूद भी अगर फायदा न हो तो क्या करें ? फिर से जाना होगा। (डॉकटरको कहेगा कि), `आप कुछ फिर से विचार करें, कुछ रह जाता है, (ट्रीटमेन्ट) में कुछ रह जाता है। मेरा Case सीधा-सादा नहीं है कि, आपकी दवाई खानेसे तुरंत मिट जाये।' फिर डॉकटरने दूसरे संभवित Complications क्या-क्या हो सकते हैं, इसका विचार करके फिर से

नयी Treatment शुरू करनी पड़े, ऐसा इसमें है। Under strict medical supervision treatment लेनी पड़ती है। हठीले रोग हो इसमें क्या होगा ? ऐसे जो जल्दी नहीं मिटनेवाले रोग होते हैं, जिसे दुःसाध्य कहते हैं, कैसे ? दुःसाध्य हो, तब उसे सब तरहसे पूछताछ करते हैं कि, ऐसा कुछ खा तो नहीं लिया था ? क्या-क्या हुआ ? मैंने जो आपको कहा था उस परहेजकी मर्यादामें रहे थे ? या कोई गड़बड़ की है ? ऐसी पूरी जाँच भी करनी पड़ती है।

मुमुक्षु :- यानी इसका मतलब ऐसा हुआ कि, जो Reaction आया उसमें खेदका दोष नहीं है परंतु गुरुगमका अभावका दोष है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, ठीक बात है। इसमें क्या है कि जैसे-जैसे (मुमुक्षु) ऊपरकी भूमिकामें जाता है, वैसे मार्ग सँकरा होता जाता है। सँकरा होना माने क्या ? कि, कभी-कभी छोटा दोष भी उसे बड़ा नुकसान कर देता है। उसे ऐसा लगे कि, इसमें क्या हो गया ? परंतु तब वैसे नहीं चलता। उसकी पूरी Line disturb हो जाती है। इसलिये एकदम उसे परहेजमें चलना पड़े। ज्ञानी जैसे कहे (वैसे ही चलना पड़े), बिलकुल इधर-उधर पैर न रखे। बराबर Line पर चलता रहे, जब तो दिक्कत नहीं आती - इसका नाम गुरुगम है।

मुमुक्षु :- इसमें क्या हो गया ? यह कितना बड़ा स्वच्छंद है, ये उसे नहीं पता। कितना बड़ा स्वच्छंद हो जाता है और साथमें दोषकी अनुमोदना भी हो गई, ये दूसरी बात।

पूज्य भाईश्री :- हाँ (इसमें) दोषकी अनुमोदना हो जाती है। अथवा अगर दोषका बचाव हो गया तो समझना अभिप्रायकी भूल हो गई। भले ही दोष छोटा हो, परंतु अगर उसका बचाव हो गया तो वहाँ अभिप्रायकी भूल हो गई। इसलिये उसे खेद बराबर होना चाहिये, क्योंकि अभिप्राय विरुद्ध परिणाम हुए, इसलिये खेद तो होना चाहिये। परंतु निराशामें न आ जाये, वैसा प्रकार होना चाहिये। और खेदकी फलश्रुति पुरुषार्थ उठना चाहिये। फिरसे बराबर लड़े, बहादुरीसे

आगे बढ़े - ऐसा है।

(यहाँ ८१३ में आगे कहते हैं), `**वैसे अंतरायसे खिन्न न होते हुए आत्मार्थी जीव पुरुषार्थदृष्टि रखे, शूरवीरता रखे, हितकारी द्रव्य, क्षेत्र आदि योगका अनुसंधान करे,...**' यानी कि सत्संग आदि (योगका अनुसंधान करना)। `**सत्शास्त्रका विशेष परिचय रखकर, वारंवार हठ करके...**' हठ करके माने ज़ोर करके `**भी मनको सद्विचारमें लगाये....**' परंतु इधर-उधर नहीं भटकने देना। `**और मनके दौरात्म्यसे आकुल-व्याकुल न होते हुए धैर्यसे सद्विचारपथपर जानेका उद्यम करते हुए जय पाकर ऊपरकी भूमिकाको प्राप्त करता है...**' जरूर प्राप्त होता है। `**मनके दौरात्म्यसे...**' यानी आत्मासे दूर जाये ऐसी मनकी प्रवृत्तिमें विशेष आकुल-व्याकुल न होकर अर्थात् निराशामें न आकर `**धैर्यसे सद्विचारपथपर जानेका...**' (अर्थात्) आत्मकल्याणके विचार सहित धीरजपूर्वक जानेका पुरुषार्थ करते हुए, `**उद्यम**' माने पुरुषार्थ करने पर जरूर विजय प्राप्त होती है।

`**ऊपरकी भूमिकाको प्राप्त करता है और अविक्षिप्तता प्राप्त करता है।**' ऐसे जीवको अविक्षिप्तता प्राप्त होती है। जो Disturbance हुआ था वह छूट जाता है। फिर से परिणाम शांत होकर लाईन पर आगे बढ़ने लगते हैं। प्रकृति ज़ोर खाने पर जो विक्षेप हो गया था, खुदकी (परिणामकी) Line में विक्षेप हुआ था ऐसा कहो या अंतराय हुआ था ऐसा कहो (सब एकार्थ हैं)। वह फिरसे पुरुषार्थ करने पर अनुसंधान हो जाता है। बालक चलना सीखे तब दो-चार बार गिर भी जाये लेकिन फिर भी चलनेका प्रयत्न चालू रखे तो (एक दिन) दौड़ने लगता है। लेकिन अगर डर जाये कि, `मैं गिर जाता हूँ इसलिये अब नहीं चलूँगा' तो (क्या होगा) ? तो चलना नहीं सीखेगा। उसे उत्साहपूर्वक फिरसे चलना शुरू करना चाहिये। भले ही गिर जाये, संभव है गिरनेका, पैरोंमें इतनी शक्ति नहीं आयी और अभी

उतनी Practice नहीं है तो गिरेगा भी, परंतु उसे उत्साहपूर्वक चलनेका प्रयत्न चालू रखना चाहिये। **`योगदृष्टिसमुच्चय' वारंवार अनुप्रेक्षा करने योग्य है।**' देखो ! ऐसे समयमें उन्हें ये ग्रंथ पढ़नेकी जरूरत है। ये हरिभद्राचार्यका ग्रंथ है। अध्यात्मका अच्छा ग्रंथ है। इसलिये कृपालुदेवने सत्श्रुतमें `योगदृष्टिसमुच्चय' का नाम दिया है। क्योंकि अमुक मूल बातें ली हो - इसलिये अमुक भूमिकाके लिये ऐसी अच्छी बातें आती हैं। उसकी अनुप्रेक्षा माने उसका अभ्यास करनेके लिये - वारंवार पढ़नेके लिये सलाह दी है। यहाँ तक रखते हैं।

जिज्ञासा :- आत्मकल्याणको सुलभतासे प्राप्त करनेके लिए ज्ञानीपुरुषकी आज्ञामें एकतान होना आवश्यक है, परन्तु तथारूप एकतान होना सुलभ नहीं है, बहुत ही असुलभ है, ऐसा क्यों ?

समाधान :- आज्ञामें एकतान होनेमें अवरोधरूप परिणामोंमें - स्वच्छंद, प्रतिबंध एवं प्रकृतिके उदयमें जुड़ान होना इत्यादि परिणाम होते हैं। इसके अलावा पूर्वग्रह, प्रमाद, रसगारवताके परिणाम भी अवरोध करते हैं। परन्तु आज्ञाके अवलंबनसे व आश्रयभक्तिपूर्वक परम प्रेमसे प्रयास करने पर सहजमात्रमें ये सब अवरोध दूर हो सकते हैं।

-पूज्य भाईश्री

(अनुभव संजीवनी-१४८४)

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

	ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१	जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
०२	द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग - पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्त्वचर्चा)	३०-००
०३	दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०४	दंसणमूलो धम्मो (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
०५	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
०६	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत)	
०७	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
०८	मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
०९	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृतोंका संकलन)	१०-००
१०	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
११	तत्त्वानुशीलन (भाग १-२-३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
१२	अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	
१३	ज्ञानामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत)	
१४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	
१५	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट निवासभूत छ: पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
१६	आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-५६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
१७	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
१८	अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन)	१५०-००
१९	धन्य आराधना (श्रीमद् राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	
२०	सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय	२५.००
२१	कुटुम्ब प्रतिबंध	२५.००

વીતરાગ સત્સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ

ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

	ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧	ગુરુગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૦૨	જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૦૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત)	૦૨-૦૦
૦૪	દ્રવ્યદૃષ્ટિપ્રકાશ ભાગ-૩ (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૦૫	દસલક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂ. ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૦૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૦૭	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૦૮	પરમાત્મપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૦૯	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત)	૧૧-૨૫
૧૦	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૧ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૧૧	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૨ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૧૨	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૩ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૧૩	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૪ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૧૪	પ્રવચન પ્રસાદ ભાગ-૧-૨ (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૧૫	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૧૬	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૧૭	ભગવાન આત્મા (દ્રવ્યદૃષ્ટિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૧૮	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૧૯	સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૨૦	આધ્યાત્મિક પત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૨૧	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	પ્રેસમાં
૨૨	જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો)	૦૬-૦૦
૨૩	બીજું કાંઈ શોધ મા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૨૪	મુમુક્ષુતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૫	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભુત છ પદનો અમૃત પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૨૬	આત્મયોગ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૬૯, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૭	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૮	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા લિખિત વચનામૃતોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૨૯	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦ ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦
૩૦	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमागमसरा (हिन्दी)	४०००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००
३०	निर्भ्रांत दर्शननी केडीए (गुजराती)	४५००
३१	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००

३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	१५००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजराती)	२०००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२०००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२०००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	२०००
६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	१५००